नागरी लिपि और परिवर्तित हिन्दी भाषा

(Nagari Script and Converted Hindi Language)

दिग्पाल सिंह

नागरी लिपि और परिवर्तित हिंदी भाषा

नागरी लिपि और परिवर्तित हिन्दी भाषा

(Nagari Script and Converted Hindi Language)

दिग्पाल सिंह

भाषा प्रकाशन
नई दिल्ली - 110002

© प्रकाशक

I.S.B.N. : 978-81-323-6459-7

प्रथम संस्करण : 2022

भाषा प्रकाशन

22, प्रकाशदीप बिल्डिंग, अंसारी रोड,
दरियागंज, नई दिल्ली - 110002

द्वारा वर्ल्ड टेक्नोलॉजीज नई दिल्ली के सहयोग से प्रकाशित

प्रस्तावना

नागरी लिपि से ही देवनागरी, नंदिनागरी आदि लिपियों का विकास हुआ है। इसका पहले प्राकृत और संस्कृत भाषा को लिखने में उपयोग किया जाता था। कई बार 'नागरी लिपि' का अर्थ 'देवनागरी लिपि' भी लगाया जाता है।

नागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। कुछ अनुसन्धानों से पता चला है कि नागरी लिपि का विकास प्राचीन भारत में पहली से चौथी शताब्दी में गुजरात में हुआ था। सातवीं शताब्दी में यह लिपि आमतौर पर उपयोग की जाती थी और कई शताब्दियों के पश्चात् इसके स्थान पर देवनागरी और नंदिनागरी का उपयोग होने लगा।

अधिकतर भाषाओं की तरह देवनागरी भी बायें से दायें लिखी जाती है। प्रत्येक शब्द के ऊपर एक रेखा खिंची होती है (कुछ वर्णों के ऊपर रेखा नहीं होती है) जिसे शिरोरेखा कहते हैं। देवनागरी का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है, जो प्रचलित लिपियों (रोमन, अरबी, चीनी आदि) में सबसे अधिक वैज्ञानिक है। इससे वैज्ञानिक और व्यापक लिपि शायद केवल अध्वव लिपि है। भारत की कई लिपियाँ देवनागरी से बहुत अधिक मिलती-जुलती हैं, जैसे–बांग्ला, गुजराती, गुरुमुखी आदि। कम्प्यूटर प्रोग्रामों की सहायता से भारतीय लिपियों को परस्पर परिवर्तन बहुत आसान हो गया है।

वर्तमान परिदृश्य में हिन्दी समूचे विश्व के आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही है। विश्व के लगभग 140 प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में हिन्दी का

पठन-पाठन होना एक शुभ संकेत है। आज बाजार में अपना पाँव पसारे कई टी. वी. चैनलों को लगने लगा है कि हमें अगर भारत में लोकप्रियता अर्जित करनी है और पैसा कमाना है तो यह हिन्दी के बिना संभव नहीं। डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिकल चैनल एवं बच्चों के लोकप्रिय चैनल पोगो को अन्ततः अपने प्रसारण का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत करना ही पड़ा।

पुस्तक लेखन में कई लिखित व अलिखित स्रोतों से मदद ली गई है; मैं उन सभी विज्ञ लेखकों के प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ। आशा करता हूँ कि पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

–लेखक

अनुक्रम

	प्रस्तावना	*v*
1.	**नागरी लिपि**	**1**
	'नागरी' शब्द का इतिहास	2
	देवनागरी लिपि का नामकरण	4
	मध्यकाल में देवनागरी	8
	18वीं, 19वीं और 20वीं शताब्दी में देवनागरी	10
	देवनागरी लिपि की विशेषता	13
	भाषा विज्ञान की दृष्टि से देवनागरी	14
	देवनागरी लिपि के दोष	17
	भारत के लिये देवनागरी का महत्त्व	17
	विश्व लिपि के रूप में देवनागरी	18
	देवनागरी लिपि की भूमिका	21
	देवनागरी लिपि में सुधार	26
2.	**हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास**	**28**
	नामोत्पत्ति	29
	भाषायी उत्पत्ति और इतिहास	30
	हिंदी भाषा का इतिहास	31
	राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी	44

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी का विकास 45
भारत के बाहर हिंदी का विकास 46
3. हिन्दी की बोलियाँ 50
भाषा और बोली 51
भारोपीय भाषा परिवार 53
पश्चिमी हिंदी 54
द्रविड़ भाषा परिवार 56
तिब्बत-चीनी भाषा परिवार 56
पश्चिमी और पूर्वी हिंदी 58
खड़ी बोली 61
बघेली 65
गढ़वाली 65
गढ़वाली की बोलियाँ 66
कुमांऊँनी 69
कुमाऊँनी भाषा का लुप्त होता स्वरूप 70
मगही 74
भौगोलिक वर्गीकरण 75
मेवाती 79
छत्तीसगढ़ी की प्राचीनता 82
भौगोलिक विस्तार 83
ब्रज और ब्रजभाषा 84
विकास यात्रा 85
ब्रजभाषा का अन्य भाषाओं से सह-अस्तित्व 89
सिन्ध और पंजाब 90
हरियाणवी 92
बुंदेली 92
4. बदलते परिदृश्य में हिन्दी भाषा का स्वरूप 100
हिन्दी भाषा के विविध रूप 106
बदलते परिदृश्य में हिन्दी भाषा की स्वीकार्यता 109
बदलती-बिगड़ती और बिखरती हिंदी 114
मीडिया और वेब पर हिंदी 124
5. सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का महत्त्व 127

संपर्क भाषा का अर्थ 128
सम्पर्क भाषा की परिभाषा एवं सामान्य परिचय 133
बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय 134
सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी 136
हिन्दी संपर्क के माध्यम 138
6. हिंदी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप 154
हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास 155
हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण 155
हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग–भारतेन्दु युग 157
भारतेन्दु के बाद 158
आधुनिक युग 161
1990 के बाद 163
साहित्यिक पत्रकारिता 164
मीडिया के क्षेत्र में हिंदी का स्थान 182
मीडिया में हिंदी की सार्थकता 188
विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक माध्यम एवं हिन्दी पत्रकारिता 193
डिजिटल युग में हिन्दी पत्रकारिता 195
सोशल मीडिया एवं हिंदी 199
7. हिंदी साहित्य का बदलता स्वरूप 202
हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न काल 203
आदिकाल (1050 ई. से 1375 ई.) 204
बीसवीं शताब्दी 209
हिन्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ 212
हालावाद तथा मांसलवाद 214
आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास 217
भारतेंदु पूर्व युग 218
भारतेंदु युग 219
शुक्लोत्तर युग 221
आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास 222
प्रगतिवादी युग की कविता (1936) 224
हिन्दी साहित्य और सामासिक संस्कृति 226

1

नागरी लिपि

नागरी लिपि से ही देवनागरी, नंदिनागरी आदि लिपियों का विकास हुआ है। इसका पहले प्राकृत और संस्कृत भाषा को लिखने में उपयोग किया जाता था। कई बार 'नागरी लिपि' का अर्थ 'देवनागरी लिपि' भी लगाया जाता है।

नागरी लिपि का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। कुछ अनुसन्धानों से पता चला है कि नागरी लिपि का विकास प्राचीन भारत में पहली से चौथी शताब्दी में गुजरात में हुआ था। सातवीं शताब्दी में यह लिपि आमतौर पर उपयोग की जाती थी और कई शताब्दियों के पश्चात् इसके स्थान पर देवनागरी और नंदिनागरी का उपयोग होने लगा।

अधिकतर भाषाओं की तरह देवनागरी भी बायें से दायें लिखी जाती है। प्रत्येक शब्द के ऊपर एक रेखा खिंची होती है (कुछ वर्णों के ऊपर रेखा नहीं होती है) जिसे शिरोरेखा कहते हैं। देवनागरी का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। यह एक ध्वन्यात्मक लिपि है, जो प्रचलित लिपियों (रोमन, अरबी, चीनी आदि) में सबसे अधिक वैज्ञानिक है। इससे वैज्ञानिक और व्यापक लिपि शायद केवल अध्वव लिपि है। भारत की कई लिपियाँ देवनागरी से बहुत अधिक मिलती-जुलती हैं, जैसे–बांग्ला, गुजराती, गुरुमुखी आदि। कम्प्यूटर प्रोग्रामों की सहायता से भारतीय लिपियों को परस्पर परिवर्तन बहुत आसान हो गया है।

भारतीय भाषाओं के किसी भी शब्द या ध्वनि को देवनागरी लिपि में ज्यों का त्यों लिखा जा सकता है और फिर लिखे पाठ को लगभग 'हू-ब-हू'

उच्चारण किया जा सकता है, जो कि रोमन लिपि और अन्य कई लिपियों में सम्भव नहीं है, जब तक कि उनका विशेष मानकीकरण न किया जाये, जैसे आइट्रांस या IASTA

इसमें कुल 52 अक्षर हैं, जिसमें 14 स्वर और 38 व्यंजन हैं। अक्षरों की क्रम व्यवस्था (विन्यास) भी बहुत ही वैज्ञानिक है। स्वर-व्यंजन, कोमल-कठोर, अल्पप्राण-महाप्राण, अनुनासिक्य-अन्तस्थ-उष्म इत्यादि वर्गीकरण भी वैज्ञानिक हैं। एक मत के अनुसार देवनगर (काशी) में प्रचलन के कारण इसका नाम देवनागरी पड़ा।

भारत तथा एशिया की अनेक लिपियों के संकेत देवनागरी से अलग हैं, परन्तु उच्चारण व वर्ण-क्रम आदि देवनागरी के ही समान हैं, क्योंकि वे सभी ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न हुई हैं (उर्दू को छोड़कर)। इसलिए इन लिपियों को परस्पर आसानी से लिप्यान्तरित किया जा सकता है। देवनागरी लेखन की दृष्टि से सरल, सौन्दर्य की दृष्टि से सुन्दर और वाचन की दृष्टि से सुपाठ्य है।

'नागरी' शब्द का इतिहास

'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है। कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके पीछा छुड़ाते हैं। बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्रह्मणों के कारण यह नाम पड़ा। गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खण्ड का प्रमाण देते हैं। नागर खंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है। उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर'। गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनन्दपुर) को ही 'नगर' और अपना स्थान बतलाते हैं। अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहीं से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए। गुजरात में दूसरी और सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं, जो ब्राह्मी और दक्षिणी शैली की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं। गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी अक्षर भी हैं, गुर्जरवंशी राजा जयभट्ट (तृतीय) का कलचुरि (चेदि) संवत् 456 (ई. स. 399) का ताम्रपत्र हैं। यह ताम्रशासन अधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्ती मम श्री

जयभटस्य) उतरी भारत की लिपि में हैं, जो नागरी से मिलती-जुलती है। एक बात और भी है। गुजरात में जितने दानपत्र उत्तरी भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुण्ड्रवर्धन आदि से लिए हुए ब्राह्मणों को ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उत्तरी भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवह्रत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी। सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

'नागरी लिपि' का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह 'ब्राह्मी' ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि 'नगर' या 'नागर' ब्राह्मणों से 'नागरी' का संबंध मान लिया जाय तो आधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ 'ललितविस्तार' में जो उन 64 लिपियों के नाम गिनाए गए हैं, जो बुद्ध को सिखाई गईं, उनमें 'नागरी लिपि' नाम नहीं है, 'ब्राह्मी लिपि' नाम हैं। 'ललितविस्तार' का चीनी भाषा में अनुवाद ई. स. 308 में हुआ था। जैनों के 'पन्नवणा सूत्र' और 'समवायांग सूत्र' में 18 लिपियों के नाम दिए गये हैं जिनमें पहला नाम बंभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगवतीसूत्र का आरंभ 'नमो बंभीए लिबिए' (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है। नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है, जो जैन विद्वानों के अनुसार 453 ई. के पहले का बना है। 'नित्यासोडशिकार्णव' के भाष्य में भास्करानंद 'नागर लिपि' का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि' में 'ए' का रूप त्रिकोण है। यह बात प्रकट ही है कि अशोक लिपि में 'ए' का आकार एक त्रिकोण है जिसमें फेरफार होते-होते आजकल की नागरी का 'ए' बना है। शेष कृष्ण नामक पंडित ने, जिन्हें साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए 'नागर' भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है, जो सिन्ध नदी के पार के प्रदेशों (गांधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक तो नेपाल की तराई में 'पिप्रवा' नामक स्थान में शाक्य जातिवालों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे से पात्र पर एक ही पंक्ति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख

के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अतंर इतना ही है कि इनमें दीर्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा अजमेर से कुछ दूर बड़ली नामक ग्राम में मिला है, महावीर संवत् 84 (= ई. स. पूर्व 443) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें 'वीराब' में जो दीर्घ 'ई' की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ 'ई' की मात्रा से बिलकुल निराली और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यो या ब्राह्मणों की निकाली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनों के 'प्रज्ञापना सूत्र' में लिखा है कि 'अर्धमागधी' भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है'। अर्धमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अत: ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमश: उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आदित्यसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मगधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में लगती है। किस प्रकार आशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमश: रूपांतरित होते-होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'प्राचीन लिपिमाला' पुस्तक में और एक नकशे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है।

मि. शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र 'देवनगर' कहलाते थे। उन 'देवनगरों' के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम 'देवनागरी' पड़ा'।

देवनागरी लिपि का नामकरण

नागरी लिपि के आठवीं, नौवीं शताब्दी के रूप को 'प्राचीन नागरी' नाम दिया गया है। दक्षिण भारत के विजय नगर के राजाओं के दान-पात्रों पर लिखी हुई नागरी लिपि का नाम 'नंदिनागरी' दिया गया है। भाषाविज्ञानियों द्वारा देवनागरी लिपि के नामकरण के निम्नलिखित मत सामने आते हैं-

डॉ. धीरेंद्र वर्मा के मतानुसार मध्ययुग में स्थापत्य कला की एक शैली थी-नागर। इसमें सभी चिन्ह किसी न किसी रूप में चतुर्भुज से मिलते-जुलते

हैं। इस प्रकार के प, म, ग, भ,–आदि चिन्हों की शैली विशेष 'नागर' आधार पर इसे नागरी नाम दिया गया है।

डॉ. वर्मा के द्वितीय मतानुसार प्राचीन समय में उत्तर भारत की विभिन्न राजधानियों में 'नगर' किसी प्रसिद्ध राजधनी का नाम रहा होगा और इसी राजधानी के आधार पर इस लिपि का नाम 'नागरी' पड़ा है। डॉ. वर्मा जी का प्रथम मत जहाँ कुछ ही चिन्हों पर आधारित है तो दूसरा मत पूर्ण काल्पनिक होने से स्वीकार्य नहीं है।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि प्राचीन काल में काशी को 'देव नगर' नाम से जाना जाता था। इस नगर में इस लिपि के उद्‌भव होने से इसे देवनागरी कहा गया है। यह मत तर्कसंगत नहीं लगता, क्योंकि काशी के निकट से प्राप्त प्रमाणों से प्राचीन प्रमाण अन्यत्र से मिले हैं। भारत के विभिन्न स्थानों से इस लिपि के प्रयोग के प्रमाण मिलने से यह मत भी वैज्ञानिक नहीं सिद्ध होता है।

विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि शिक्षा का केंद्र 'नगर' रहा है। इसलिए लिपि का उद्‌भव नगर में हुआ। 'नगर' में उद्‌भव होने के कारण इसका नाम 'नागरी' लिपि पड़ा है। इस मत को भी पूर्णतः तर्कसंगत नहीं मान सकते हैं, क्योंकि प्राचीन काल में, भारतवर्ष में गुरुकुलीय शिक्षा का प्रचलन था, जिसका केंद्र प्रायः नगर से दूर वनस्थली में होता था। नगरों में शिक्षा केंद्र होने से भी इसे आधार नहीं बना सकते हैं।

संस्कृत भाषा को 'देववाणी' भी कहते हैं। संस्कृत भी नागरी में लिखी जाती है। इसलिए नागरी में 'देव' जोड़ कर 'देवनागरी' नाम दिया गया है।

कुछ भाषाविद् बुद्ध के 'ललित विस्तार' में आए नाम 'नागलिपि' से संबंधित बतलाते हुए नागरी नामकरण स्वीकार करते हैं।

विद्वानों के एक वर्ग का मत है कि बिहार में स्थित पटना का नाम कुछ समय पूर्व पाटलिपुत्र और प्राचीन समय में 'नगर' था, वहाँ के राजा चंद्रगुप्त को आदर से 'देव' नाम से पुकारा जाता था। गुप्त काल में पटना में इस लिपि के प्रचलन के आधार पर चंद्रगुप्त नाम 'देव' और पटना नाम 'नगर' के संयुक्त नाम देवनगर से देवनागरी नाम बताया गया है। प्राचीन काल में नागरी के प्रयोग का केंद्र पटना ही रहा हो, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है। यह नामकरण कुछ तर्कपूर्ण लगता है, किंतु वैज्ञानिकता सिद्ध नहीं होती है।

कुछ विद्वानों की मान्यता है कि इस लिपि का प्रारंभिक प्रयोग गुजरात के नागर ब्राह्मणों द्वारा किया गया है, जिसके नाम के आधार पर नागरी नाम दिया गया है। कल्पना के आधार पर नाम विश्लेषण वैज्ञानिक नहीं है।

कुछ विद्वानों द्वारा इसे 'हिंदी लिपि' नाम दिया जाता है। यह नाम पूर्ण भ्रामक है, क्योंकि नागरी मात्र हिंदी की ही लिपि नहीं है वरन् संस्कृत, मराठी और नेपाली आदि भाषाओं की भी लिपि है। हिंदी भाषा और देवनागरी का पारस्परिक संबंध है, किंतु दोनों एक नहीं हैं। यह नाम पूर्णतः अवैज्ञानिक है।

श्री आर. शाम शास्त्री के मतानुसार भारतवर्ष धर्म प्रधान देश है। देवों के इन प्रतीक समूह को एकत्र कर देने पर 'देवनगर' की संज्ञा दी जाती थी। इसी आधार पर चिन्हों का चयन कर विकसित लिपि का नाम 'देवनागरी' रखा गया है।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि देवनागरी लिपि का नामकरण किस प्रकार हुआ, यह अनिर्णीत है। आचार्य विनोबा भावे ने नागरी के लिए 'लोक नागरी' नाम दिया है। आचार्य ने इस लिपि को विशेष महत्त्व देने के लिए यह नाम दिया है। उनकी मान्यता रही है, यह लिपि किसी जाति, संप्रदाय, वर्ग या धर्म-विशेष की नहीं वरन् समस्त भारतीयों की लिपि है। उन्होंने इसे राष्ट्र लिपि के रूप में स्वीकार कर कहा था कि विभिन्न भाषा-भाषियों को अपनी लिपि के साथ नागरी लिपि का भी प्रयोग करना चाहिए।

वर्तमान समय में देश के विभिन्न क्षेत्रों, धार्मिकों, प्रांतवासियों आदि के द्वारा यदि यह लिपि अपना ली जाए, तो संपर्क लिपि के रूप में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाएगी। यह नाम तर्क-संगत है, किंतु इसे पूर्णरूपेण अपनाया नहीं गया है।

नागरी लिपि का उद्‌भव और विकास

लगभग ई. 350 के बाद ब्राह्मी की दो शाखाएँ लेखन शैली के अनुसार मानी गई हैं। विंध्य से उत्तर की शैली उत्तरी तथा दक्षिण की (बहुधा) दक्षिणी शैली।

(1) उत्तरी शैली के प्रथम रूप का नाम "गुप्तलिपि" है। गुप्तवंशीय राजाओं के लेखों में इसका प्रचार था। इसका काल ईसवी चौथी पाँचवीं शती है।

(2) कुटिल लिपि का विकास "गुप्तलिपि" से हुआ और छठी से नवीं शती तक इसका प्रचलन मिलता है। आकृतिगत कुटिलता के कारण यह

नामकरण किया गया। इसी लिपि से नागरी का विकास नवीं शती के अंतिम चरण के आस-पास माना जाता है।

राष्ट्रकूट राजा "दंतदुर्ग" के एक ताम्रपत्र के आधार पर दक्षिण में "नागरी" का प्रचलन संवत् 675 (754 ई.) में था। वहाँ इसे "नंदिनागरी" कहते थे। राजवंशों के लेखों के आधार पर दक्षिण में 16वीं शती के बाद तक इसका अस्तित्व मिलता है। देवनागरी (या नागरी) से ही "कैथी", "महाजनी", "राजस्थानी" और "गुजराती" आदि लिपियों का विकास हुआ। प्राचीन नागरी की पूर्वी शाखा से दसवीं शती के आस-पास "बँगला" का आविर्भाव हुआ। 11वीं शताब्दी के बाद की "नेपाली" तथा वर्तमान "बँगला", "मैथिली", एवं "उड़िया", लिपियाँ इसी से विकसित हुई। भारतवर्ष के उत्तर पश्चिमी भागों में (जिसे सामान्यत: आज कश्मीर और पंजाब कहते हैं) ई. 8वीं शती तक "कुटिललिपि" प्रचलित थी। कालांतर में ई. 10वीं शताब्दी के आस-पास "कुटिल लिपि" से ही "शारदा लिपि" का विकास हुआ। वर्तमान कश्मीरी, टाकरी (और गुरुमुखी के अनेक वर्णसंकेत) उसी लिपि के परवर्ती विकास हैं।

दक्षिणी शैली की लिपियाँ प्राचीन ब्राह्मी लिपि के उस परिवर्तित रूप से निकली है, जो क्षत्रप और आंध्रवंशी राजाओं के समय के लेखों में, तथा उनसे कुछ पीछे के दक्षिण की नासिक, कार्ली आदि गुफाओं के लेखों में पाया जाता है। (भारतीय प्राचीन लिपिमाला)।

इस प्रकार निम्नलिखित बातें सामने आती हैं–

(1) मूल रूप में "देवनागरी" का आदिस्रोत ब्राह्मी लिपि है।

(2) यह ब्राह्मी की उत्तरी शैली वाली धारा की एक शाखा है।

(3) गुप्त लिपि के उद्‌भव के पूर्व भी अशोक ब्राह्मी में थोड़ी बहुत अनेक छोटी मोटी भिन्नताएँ कलिंग शैली, हाथीगुंफा शैली, शुंगशैली आदि के रूप में मिलती हैं।

(4) गुप्त लिपि की भी पश्चिमी और पूर्वी शैली के स्वरूप में अंतर है। पूर्वी शैली के अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा दिखाई पड़ने लगती है। इसे सिद्ध मात्रिका कहा गया है।

(5) उत्तरी शाखा में गुप्त लिपि के अनन्तर कुटिल लिपि आती है। मंदसोर, मधुवन, जोधपुर आदि के "कुटिल लिपि" कालीन अक्षर "देवनागरी" से काफी मिलते-जुलते हैं।

(6) कुटिल लिपि से ही "देवनागरी" से काफी मिलते-जुलते हैं।
(7) "देवनागरी" के आद्यरूपों का निरन्तर थोड़ा बहुत रूपांतर होता गया जिसके फलस्वरूप आज का रूप सामने आया।

मध्यकाल में देवनागरी

देवनागरी लिपि मुस्लिम शासन के दौरान भी इस्तेमाल होती रही है। भारत की प्रचलित अतिप्राचीन लिपि देवनागरी ही रही है। विभिन्न मूर्ति-अभिलेखों, शिखालेखों, ताम्रपत्रों आदि में भी देवनागरी लिपि के सहस्राधिक अभिलेख प्राप्य हैं, जिनका काल खंड सन 1008 ई. के आस-पास है। इसके पूर्व सारनाथ में स्थित अशोक स्तम्भ के धर्मचक्र के निम्न भाग देवनागरी लिपि में भारत का राष्ट्रीय वचन 'सत्यमेव जयते' उत्कीर्ण है। इस स्तम्भ का निर्माण सम्राट अशोक ने लगभग 250 ई. पूर्व में कराया था। मुसलमानों के भारत आगमन के पूर्व से, भारत की देशभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी या उसका रूपान्तरित स्वरूप था, जिसके द्वारा सभी कार्य सम्पादित किए जाते थे।

मुसलमानों के राजत्व काल के प्रारम्भ (सन 1200 ई) से सम्राट अकबर के राजत्व काल (1556 ई.-1605ई.) के मध्य तक राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि का प्रचलन था। भारतवासियों की फारसी भाषा से अनभिज्ञता के बावजूद उक्त काल में, दीवानी और फौजदारी कचहरियों में फारसी भाषा और उसकी लिपि का ही व्यवहार था। यह मुस्लिम शासकों की मातृभाषा थी।

भारत में इस्लाम के आगमन के पश्चात् संस्कृत का गौरवपूर्ण स्थान फारसी को प्राप्त हो गया। देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भारतीय शिष्टों की शिष्ट भाषा और धर्मभाषा के रूप में तब कुंठित हो गई। किन्तु मुस्लिम शासक देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा की पूर्ण उपेक्षा नहीं कर सके। महमूद गजनवी ने अपने राज्य के सिक्कों पर देवनागरी लिपि में लिखित संस्कृत भाषा को स्थान दिया था।

औरंगजेब के शासन काल (1658 ई.–1707 ई.) में अदालती भाषा में परिवर्तन नहीं हुआ, राजस्व विभाग में हिंदी भाषा और देवनागरी लिपि ही प्रचलित रही। फारसी किबाले, पट्टे रेहन्नामे आदि का हिन्दी अनुवाद अनिवार्य ही रहा औरंगजेब राजत्व काल औरंगजेब परवर्ती मुसलमानी राजत्व काल (1707 ई से प्रारंभ) एवं ब्रिटिश राज्यारम्भ काल (23 जून 1757 ई. से प्रारंभ) में यह

अनिवार्यता सुरक्षित रही। औरंगजेब परवर्ती काल में पूर्वकालीन हिन्दी नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। ईस्ट इंडिया कम्पनी शासन के उत्तरार्ध में उक्त हिन्दी अनुवाद की प्रथा का उन्मूलन अदालत के अमलों की स्वार्थ-सिद्धि के कारण हो गया और ब्रिटिश शासकों ने इस ओर ध्यान दिया। फारसी किबाले, पट्टे, रेहन्नामे आदि के हिन्दी अनुवाद का उन्मूलन किसी राजाज्ञा के द्वारा नहीं, सरकार की उदासीनता और कचहरी के कर्मचारियों के फारसी मोह के कारण हुआ। इस मोह में उनका स्वार्थ संचित था। सामान्य जनता फारसी भाषा से अपरिचित थी। बहुसंख्यक मुकदमेबाज मुवक्किल भी फारसी से अनभिज्ञ ही थे। फारसी भाषा के द्वारा ही कचहरी के कर्मचारीगण अपना उल्लू सीधा करते थे।

शेरशाह सूरी ने अपनी राजमुद्राओं पर देवनागरी लिपि को समुचित स्थान दिया था। शुद्धता के लिए उसके फारसी के फरमान फारसी और देवनागरी लिपियों में समान रूप से लिखे जाते थे। देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी परिपत्र सम्राट अकबर (शासन काल 1556 ई.–1605ई.) के दरबार से निर्गत-प्रचारित किये जाते थे, जिनके माध्यम से देश के अधिकारियों, न्यायाधीशों, गुप्तचरों, व्यापारियों, सैनिकों और प्रजाजनों को विभिन्न प्रकार के आदेश-अनुदेश प्रदान किए जाते थे। इस प्रकार के चौदह पत्र राजस्थान राज्य अभिलेखागार, बीकानेर में सुरक्षित हैं, औरंगजेब परवर्ती मुगल सम्राटों के राज्यकार्य से सम्बद्ध देवनागरी लिपि में हस्तलिखित बहुसंख्यक प्रलेख उक्त अभिलेखागार में द्रष्टव्य हैं, जिनके विषय तत्कालीन व्यवस्था-विधि, नीति, पुरस्कार, दंड, प्रशंसा-पत्र, जागीर, उपाधि, सहायता, दान, क्षमा, कारावास, गुरुगोविंद सिंह, कार्यभार ग्रहण, अनुदान, सम्राट की यात्रा, सम्राट औरंगजेब की मृत्यु सूचना, युद्ध सेना-प्रयाण, पदाधिकारियों को सम्बोधित आदेश-अनुदेश, पदाधिकारियों के स्थानान्तरण-पदस्थानपन आदि हैं।

मुगल बादशाह हिन्दी के विरोधी नहीं, प्रेमी थे। अकबर (शासन काल 1556 ई.–1605 ई.), जहांगीर (शासन काल 1605 ई.–1627 ई.), शाहजहां (शासन काल 1627 ई.-1658 ई.) आदि अनेक मुगल बादशाह हिन्दी के अच्छे कवि थे।

मुगल राजकुमारों को हिन्दी की भी शिक्षा दी जाती थी। शाहजहां ने स्वयं दाराशिकोह और शुजा को संकट के क्षणों में हिंदी भाषा और हिन्दी अक्षरों में पत्र लिखा था, जो औरंगजेब के कारण उन तक नहीं पहुंच सका। आलमगीरी शासन में भी हिन्दी को महत्त्व प्राप्त था। औरंगजेब ने शासन और राज्य-प्रबंध

की दृष्टि से हिन्दी-शिक्षा की ओर ध्यान दिया और उसका सुपुत्र आजमशाह हिन्दी का श्रेष्ठ कवि था। मोजमशाह, शाहआलम, बहादुर शाह जफर (शासन काल 1707 ई.-1712 ई.) का देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी काव्य प्रसिद्ध है। मुगल बादशाहों और मुगल दरबार का हिन्दी कविताओं की प्रथम मुद्रित झांकी 'राग सागरोद्भव संगीत रागकल्पद्रुम' (1842-43ई.), शिवसिंह सरोज आदि में सुरक्षित है।

18वीं, 19वीं और 20वीं शताब्दी में देवनागरी

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल में एक तरफ अंग्रेजों के आधिपत्य के कारण अंग्रेजी के प्रसार-प्रचार का सुव्यवस्थित अभियान चलाया जा रहा था तो दूसरी तरफ राजकीय कामकाज में और कचहरी में उर्दू समादृत थी। धीरे-धीरे उर्दू के फैशन और हिन्दी विरोध के कारण देवनागरी अक्षरों का लोप होने लगा। अदालती और राजकीय कामकाज में उर्दू का बोलबाला होने से उर्दू पढ़े-लिखे लोगों की भाषा बनने लगी। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक उर्दू की व्यापकता थी। खड़ी बोली का अरबी-फारसी रूप ही लिखने-पढ़ने की भाषा होकर सामने आ रहा था। हिन्दी को इससे बड़ा आघात पहुँचा।

कहा जाता है कि हिन्दी वाले भी अपनी पुस्तकें फारसी में लिखने लगे थे, जिसके कारण देवनागरी अक्षरों का भविष्य ही खतरे में पड़ गया था। जैसा कि बालमुकुन्दजी की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है-

जो लोग नागरी अक्षर सीखते थे, वे फारसी अक्षर सीखने पर विवश हुए और हिन्दी भाषा हिन्दी न रहकर उर्दू बन गयी। हिन्दी उस भाषा का नाम रहा जो टूटी-फूटी चाल पर देवनागरी अक्षरों में लिखी जाती थी।

उस समय अनेक विचारक, साहित्यकार और सामाजकर्मी हिन्दी और नागरी के समर्थन में उस समय मैदान में उतरे। यह वह समय था जब हिन्दी गद्य की भाषा का परिष्कार और परिमार्जन नहीं हो सका था अर्थात् हिन्दी गद्य का कोई सुव्यवस्थिति और सुनिश्चित नहीं गढ़ा जा सका था। खड़ी बोली हिन्दी घुटनों के बल ही चल रही थी। वह खड़ी होने की प्रक्रिया में तो थी, मगर नहीं हो पा रही थी।

1674 से 1900 तक—मराठा साम्राज्य के सिक्के देवनागरी लिपि में हैं। मुद्राएँ (मोहरें) भी देवनागरी लिपि में हैं।

सन् 1784–कलकता की एशियाटिक सोसिएसिटी के संस्थापक अध्यक्ष विलियम जोंस के 1784 एक लेख से देवनागरी लिपि के आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। जोंस ने इस लिपि को अन्य लिपियों की अपेक्षा श्रेष्ठ माना था।

01 मई 1793–ईस्ट इंडिया कंपनी शासन का संविधान लागू हुआ, जिसके प्रथम अनुच्छेद की तृतीय धारा में देवनागरी लिपि को सरकारी स्वीकृति प्राप्त हुई।

सन् 1796 ई.–देवनागरी लिपि में मुद्राक्षर आधारित प्राचीनतम मुद्रण (जॉन गिलक्राइस्ट, हिंदूस्तानी भाषा का व्याकरण, कोलकाता)।

सन् 1809–दस्तावेजों से पता चलता है कि सन 1809 में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने सरकारी सिक्कों पर फारसी के साथ-साथ देवनागरी लिपि को भी अंकित किया था। लेकिन उसके मात्र 26 साल बाद सन 1835 के अधिनियम संख्या 17 के तहत देवनागरी लिपि का उन्मूलन कर दिया गया और सिक्कों पर केवल रोमन और फारसी लिपि को ही अंकित किया गया।

1832–फ्रेडरिक जॉन शोर नामक न्यायाधीश ने भाषा और लिपि पर 30 मई 1832 में एक लेख लिखा जिसमें उन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा को न्यायालय की भाषा बनाने की वकालत की। ऐसी अनुशंसा करने वाले वह पहले अंग्रेज अधिकारी थे।

1834–फ्रेडरिक जॉन शोर ने 01 जून 1834 को यह भी कहा कि न्याय की दृष्टि से जनता को यह मांग करने का अधिकार है कि न्यायालयों और देश का कार्य निष्पादन सामान्यत: देश की भाषा और लिपि में ही होना चाहिए।

1836–आधुनिक युग में देवनागरी के प्रथम प्रचारक गौरीदत्त ने देवनागरी और हिन्दी के प्रचार के लिए उन्होंने नौकरी छोड़ दी, अपनी सारी सम्पत्ति देवनागरी के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दी और 'संन्यास' ले लिया। उन्होंने अपना सारा समय देवनागरी के प्रचार-प्रसार के लिए लगाया, अनेक पुस्तकें लिखीं और 'देवनागरी प्रचारक' नामक पत्र निकाला।

19 अप्रैल 1849–अदालतों की समस्त कार्यभाषा फारसी के स्थान पर हिन्दुस्तानी में परिवर्तित करने का स्पष्ट आदेश प्रदान किया गया था।

1859–मोनियर विलियम्स ने यह निष्कर्ष दिया कि "यह लिपि (देवनागरी) प्रत्येक वर्ण के स्तर पर सर्वाधिक पूर्ण और व्यवस्थित है। यदि देवनागरी में कोई दोष है तो वह यह कि यह दोषरहित है।"

1864—डॉ. राजेन्द्र लाल मित्र पहले भारतीय थे जिन्होंने देवनागरी लिपि आन्दोलन में भाग लिया था और 1864 में पहला शोधपूर्ण लेख लिखा था।

सन् 1867—आगरा और अवध राज्यों के कुछ हिन्दुओं ने उर्दू के स्थान पर हिन्दी को राजभाषा बनाये जाने की माँग की।

सन् 1968—बनारस के बाबू शिवप्रसाद ने आरम्भिक मुसलमान शासकों पर भारत के ऊपर फारसी भाषा और लिपि थोपने का आरोप लगाया।

सन् 1881—बिहार में उर्दू के स्थान पर देवनागरी में लिखी हिन्दी को राजभाषा का दर्जा दिया गया।

सन् 1884—प्रयाग में मालवीयजी के प्रयास से हिन्दी हितकारिणी सभा की स्थापना की गई।

सन् 1893 ई.—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना।

सन् 1894—मेरठ के पंडित गौरीदत्त ने न्यायालयों में देवनागरी लिपि के प्रयोग के लिए ज्ञापन दिया जो अस्वीकृत हो गया।

20 अगस्त सन् 1896—राजस्व परिषद ने एक प्रस्ताव पास किया कि सम्मन आदि की भाषा एवं लिपि हिन्दी होगी परन्तु यह व्यवस्था कार्य रूप में परिणीत नहीं हो सकी।

सन् 1897—नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा गठित समिति ने 60, 000 हस्ताक्षरों से युक्त प्रतिवेदन अंग्रेज सरकार को दिया। इसमें विचार व्यक्त किया गया था कि संयुक्त प्रान्त में केवल देवनागरी को ही न्यायालयों की भाषा होने का अधिकार है।

15 अगस्त सन् 1900—शासन ने निर्णय लिया कि उर्दू के अतिरिक्त नागरी लिपि को भी अतिरिक्त भाषा के रूप में व्यवहृत किया जाये।

1905—इस वर्ष में न्यायमूर्ति शारदा चरण मित्र ने एक लिपि विस्तार परिषद की स्थापना की, जिसका उद्देश्य भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि (देवनागरी) को सामान्य लिपि के रूप में प्रचलित करना था। इसी वर्ष अर्थात् 1905 में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने नागरी प्रचारिणी सभा के वार्षिक सम्मेलन में भाषण करते हुए पूरे भारत के लिए समान लिपि के रूप में देवनागरी की वकालत की और कहा कि समान लिपि की समस्या ऐतिहासिक आधार पर नहीं सुलझायी जा सकती। उन्होंने तर्कपूर्ण ढंग से दलील दी कि रोमन लिपि भारतीय भाषाओं के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

1907–इस वर्ष में 'एक लिपि विस्तार परिषद' के लक्ष्य को आन्दोलन का रूप देते हुए शारदा चरण मित्र ने परिषद की ओर से 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला जो बीच में कुछ व्यवधान के बावजूद उनके जीवन पर्यन्त, यानी 1917 तक निकलता रहा। देवनागर में बांग्ला, उर्दू, नेपाली, उड़ीया, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, मलयालम और पंजाबी आदि की रचनाएँ देवनागरी लिपि में लिप्यांतरित होकर छपती थीं।

1933–अमेरिका की Mergenthaler Linotype Company ने देवनागरी लाइनोटाइप (देवनागरी टाइपराइटर) का विकास किया।

1935–इसी वर्ष में काका कालेलकर की अध्यक्षता में नागरी लिपि सुधार समिति बनायी गयी।

1937–सन्1937 में हरि गोविन्द गोविल (1899–1956) देवनागरी के लिए एक नए टाइपफेस का आविष्कार किया जिससे देवनागरी टाइप करने वाले उपकरणों एवं मशीनों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ।

9 सितम्बर 1949–संविधान के अनुच्छेद 343 में भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी निधारित की गयी।

1975–सन् 1975 में आचार्य विनोबा भावे के सत्प्रयासों से नागरी लिपि परिषद्, नई दिल्ली की स्थापना हुई, जो नागरी संगम नामक त्रैमासिक पत्रिका निकालती है।

1986–भारतीय लिपियों को कम्प्यूटर पर लिखने के लिए इंस्क्रिप्ट कुंजीपटल मानकीकृत हुआ। 1988 और 1992 में इसमें कुछ संशोधन किए गए।

1991–भारतीय मानक ब्यूरो ने इस्की मानक स्वीकृत किया।

अक्टूबर 1991–यूनिकोड कॉन्सोर्शियम ने यूनिकोड का प्रथम संस्करण स्वीकार किया जिसमें अन्य कई लिपियों के साथ देवनागरी के लिए भी यूनिकोड निर्धारित किए गए।

जुलाई 2010–में भारतीय रुपए का प्रतीक चिह्न स्वीकार किया गया। बाद में इसके लिए यूनिकोड (U+20B9) भी निर्धारित हुआ।

देवनागरी लिपि की विशेषता

देवनागरी की कुछ और महत्तवपूर्ण विशेषताएं निम्नवत् हैं–

(1) लिपि चिह्नों के नाम ध्वनि के अनुसार–इस लिपि में चिह्नों के द्योतक उसके ध्वनि के अनुसार ही होते हैं और इनका नाम भी उसी के अनुसार

होता है जैसे–अ, आ, ओ, औ, क, ख आदि। किंतु रोमन लिपि चिह्न नाम में आई किसी भी ध्वनि का कार्य करती है, जैसे–H(v) C(क) Y(य) आदि। इसका एक कारण यह हो सकता है कि रोमन लिपि वर्णात्मक है और देवनागरी ध्वन्यात्मक।

(2) लिपि चिह्नों की अधिकता–विश्व के किसी भी लिपि में इतने लिपि प्रतीक नहीं हैं। अंग्रेजी में ध्वनियाँ 40 के ऊपर हैं किंतु केवल 26 लिपि-चिह्नों से काम होता है। 'उर्दू में भी ख, घ, छ, ठ, ढ, ढ़, थ, ध, फ, भ आदि के लिए लिपि चिह्न नहीं है। इनको व्यक्त करने के लिए उर्दू में 'हे' से काम चलाते हैं' इस दृष्टि से ब्राह्मी से उत्पन्न होने वाली अन्य कई भारतीय भाषाओं में लिपियों की संख्याओं की कमी नहीं है। निष्कर्षत: लिपि चिह्नों की पर्याप्तता की दृष्टि से देवनागरी, रोमन और उर्दू से अधिक सम्पन्न है।

(3) स्वरों के लिए स्वतंत्र चिह्न–देवनागरी में हस्व और दीर्घ स्वरों के लिए अलग-अलग चिह्न उपलब्ध हैं और रोमन में एक ही (।) अक्षर से 'अ' और 'आ' दो स्वरों को दिखाया जाता है। देवनागरी के स्वरों में अंतर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

(4) व्यंजनों की आक्षरिकता–इस लिपि के हर व्यंजन के साथ-साथ एक स्वर 'अ' का योग रहता है, जैसे–P+v= p, इस तरह किसी भी लिपि के अक्षर को तोड़ना आक्षरिकता कहलाता है। इस लिपि का यह एक अवगुण भी है किंतु स्थान कम घेरने की दृष्टि से यह विशेषता भी है, जैसे–देवनागरी लिपि में 'कमल' तीन वर्णों के संयोग से लिखा जाता है, जबकि रोमन में छ: वर्णों का प्रयोग किया जाता है!

(5) सुपाठन एवं लेखन की दृष्टि–किसी भी लिपि के लिए अत्यन्त आवश्यक गुण होता है कि उसे आसानी से पढ़ा और लिखा जा सके। इस दृष्टि से देवनागरी लिपि अधिक वैज्ञानिक है। उर्दू की तरह नहीं, जिसमें जूता को जोता, जौता आदि कई रूपों में पढ़ने की गलती अक्सर लोग करते हैं।

भाषा विज्ञान की दृष्टि से देवनागरी

भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से देवनागरी लिपि अक्षरात्मक (सिलेबिक) लिपि मानी जाती है। लिपि के विकास सोपानों की दृष्टि से "चित्रात्मक", "भावात्मक" और "भाव-चित्रात्मक" लिपियों के अनंतर "अक्षरात्मक" स्तर की लिपियों का विकास माना जाता है। पाश्चात्य और अनेक भारतीय भाषा विज्ञानविज्ञों के मत

से लिपि की अक्षरात्मक अवस्था के बाद अल्फाबेटिक (वर्णात्मक) अवस्था का विकास हुआ। सबसे विकसित अवस्था मानी गई है। ध्वन्यात्मक (फोनेटिक) लिपि की। "देवनागरी" को अक्षरात्मक इसलिए कहा जाता है कि इसके वर्ण–अक्षर (सिलेबिल) हैं–स्वर भी और व्यंजन भी। "क", "ख" आदि व्यंजन सस्वर हैं, अकारयुक्त हैं। वे केवल ध्वनियाँ नहीं हैं अपितु सस्वर अक्षर हैं। अत: ग्रीक, रोमन आदि वर्णमालाएँ हैं। परंतु यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि भारत की "ब्राह्मी" या "भारती" वर्णमाला की ध्वनियों में व्यंजनों का "पाणिनि" ने वर्णसमाम्नाय के 14 सूत्रों में जो स्वरूप परिचय दिया है, उसके विषय में "पतंजलि" (द्वितीय शताब्दी ई.पू.) ने यह स्पष्ट बता दिया है कि व्यंजनों में संनियोजित "अकार" स्वर का उपयोग केवल उच्चारण के उद्देश्य से है। वह तत्वत: वर्ण का अंग नहीं है। इस दृष्टि से विचार करते हुए कहा जा सकता है कि इस लिपि की वर्णमाला तत्वत: ध्वन्यात्मक है, अक्षरात्मक नहीं।

देवनागरी लिपि के गुण

(1) भारतीय भाषाओं के लिये वर्णों की पूर्णता एवं सम्पन्नता (52 वर्ण, न बहुत अधिक न बहुत कम)।
(2) एक ध्वनि के लिये एक सांकेतिक चिह्न––जैसा बोलें वैसा लिखें।
(3) लेखन और उच्चारण और में एकरुपता––जैसा लिखें, वैसे पढ़े (वाचें)।
(4) एक सांकेतिक चिह्न द्वारा केवल एक ध्वनि का निरूपण––जैसा लिखें वैसा पढ़ें।

उपरोक्त गुणों के कारण ब्राह्मी लिपि का उपयोग करने वाली सभी भारतीय भाषाएँ 'स्पेलिंग की समस्या' से मुक्त हैं।

स्वर और व्यंजन में तर्कसंगत एवं वैज्ञानिक क्रम-विन्यास–देवनागरी के वर्णों का क्रमविन्यास उनके उच्चारण के स्थान (ओष्ठ्य, दन्त्य, तालव्य, मूर्धन्य आदि) को ध्यान में रखते हुए बनाया गया है। इसके अतिरिक्त वर्ण-क्रम के निर्धारण में भाषा-विज्ञान के कई अन्य पहलुओं का भी ध्यान रखा गया है। देवनागरी की वर्णमाला (वास्तव में, ब्राह्मी से उत्पन्न सभी लिपियों की वर्णमालाएँ) एक अत्यन्त तर्कपूर्ण ध्वन्यात्मक क्रम (phonetic order) में व्यवस्थित है। यह क्रम इतना तर्कपूर्ण है कि अन्तरराष्ट्रीय ध्वन्यात्मक संघ (IPA) ने अन्तर्राष्ट्रीय ध्वन्यात्मक वर्णमाला के निर्माण के लिये मामूली परिवर्तनों के साथ इसी क्रम को अंगीकार कर लिया।

वर्णों का प्रत्याहार रूप में उपयोग–माहेश्वर सूत्र में देवनागरी वर्णों को एक विशिष्ट क्रम में सजाया गया है। इसमें से किसी वर्ण से आरम्भ करके किसी दूसरे वर्ण तक के वर्णसमूह को दो अक्षर का एक छोटा नाम दे दिया जाता है जिसे 'प्रत्याहार' कहते हैं। प्रत्याहार का प्रयोग करते हुए सन्धि आदि के नियम अत्यन्त सरल और संक्षिप्त ढंग से दिए गये हैं (जैसे, आद् गुणः)

देवनागरी लिपि के वर्णों का उपयोग संख्याओं को निरूपित करने के लिये किया जाता रहा है।

मात्राओं की संख्या के आधार पर छन्दों का वर्गीकरण–यह भारतीय लिपियों की अद्‌भुत विशेषता है कि किसी पद्य के लिखित रूप से मात्राओं और उनके क्रम को गिनकर बताया जा सकता है कि कौन सा छन्द है। रोमन, अरबी एवं अन्य में यह गुण अप्राप्य है।

लिपि चिह्नों के नाम और ध्वनि में कोई अन्तर नहीं, जैसे रोमन में अक्षर का नाम "बी" है और ध्वनि "ब" है।

लेखन और मुद्रण में एकरूपता (रोमन, अरबी और फारसी में हस्तलिखित और मुद्रित रूप अलग-अलग हैं)।

देवनागरी, 'स्माल लेटर" और 'कैपिटल लेटर' की अवैज्ञानिक व्यवस्था से मुक्त है।

अर्ध-अक्षर के रूप की सुगमता–खड़ी पाई को हटाकर–दायें से बायें क्रम में लिखकर तथा अर्द्ध अक्षर को ऊपर तथा उसके नीचे पूर्ण अक्षर को लिखकर–ऊपर नीचे क्रम में संयुक्ताक्षर बनाने की दो प्रकार की रीति प्रचलित है।

अन्य–बायें से दायें, शिरोरेखा, संयुक्ताक्षरों का प्रयोग, अधिकांश वर्णों में एक उर्ध्व-रेखा की प्रधानता, अनेक ध्वनियों को निरूपित करने की क्षमता आदि।

भारतवर्ष के साहित्य में कुछ ऐसे रूप विकसित हुए हैं, जो दायें-से-बायें अथवा बाये-से-दायें पढ़ने पर समान रहते हैं। उदाहरणस्वरूप केशवदास का एक सवैया लीजिये–

मां सस मोह सजै बन बीन, नवीन बजै सह मोस समा।
मार लतानि बनावति सारि, रिसाति वनाबनि ताल रमा॥
मानव ही रहि मोरद मोद, दमोदर मोहि रही वनमा।
माल बनी बल केसबदास, सदा बसकेल बनी बलमा॥

इस सवैया की किसी भी पंक्ति को किसी ओर से भी पढ़िये, कोई अंतर नहीं पड़ेगा।

सदा सील तुम सरद के दरस हर तरह खास।
सखा हर तरह सरद के सर सम तुलसीदास।

देवनागरी लिपि के दोष

लेकिन लगभग सभी भारतीय लिपियों में छोटी इ या छोटी ए (ऐ) की मात्रा व्यंजन के पहले ही लगती है।

(1) कुल मिलाकर 403 टाइप होने के कारण टंकण, मुद्रण में कठिनाई। किन्तु आधुनिक प्रिन्टर तकनीक के लिए यह कोई समस्या नहीं है।
(2) कुछ लोग शिरोरेखा का प्रयोग अनावश्यक मानते हैं।
(3) द्विरूप वर्ण (अ, ज्ञ, क्ष, त्र, छ, झ, ण, श) आदि को दो-दो प्रकार से लिखा जाता है।
(4) समरूप वर्ण (ख में ख़ का, घ में ध का, म में भ का भ्रम होना)।
(5) वर्णों के संयुक्त करने की व्यवस्था एकसमान नहीं है।
(6) अनुस्वार एवं अनुनासिक के प्रयोग में एकरूपता का अभाव।
(7) त्वरापूर्ण लेखन नहीं क्योंकि लेखन में हाथ बार-बार उठाना पड़ता है।
(8) वर्णों के संयुक्तीकरण में र के प्रयोग को लेकर अनेक लोगों को भ्रम की स्थिति।
(9) इ की मात्रा ि( ) का लेखन वर्ण के पहले, किन्तु उच्चारण वर्ण के बाद।

भारत के लिये देवनागरी का महत्त्व

बहुत से लोगों का विचार है कि भारत में अनेकों भाषाएँ होना कोई समस्या नहीं है, जबकि उनकी लिपियाँ अलग-अलग होना बहुत बड़ी समस्या है। गांधीजी ने 1940 में गुजराती भाषा की एक पुस्तक को देवनागरी लिपि में छपवाया और इसका उद्देश्य बताया था कि मेरा सपना है कि संस्कृत से निकली हर भाषा की लिपि देवनागरी हो।

इस संस्करण को हिंदी में छापने के दो उद्देश्य हैं। मुख्य उद्देश्य यह है कि मैं जानना चाहता हूँ कि, गुजराती पढ़ने वालों को देवनागरी लिपि में पढ़ना कितना अच्छा लगता है। मैं जब दक्षिण अफ्रीका में था तब से मेरा स्वप्न है कि संस्कृत से निकली हर भाषा की एक लिपि हो और वह देवनागरी हो।

पर यह अभी भी स्वप्न ही है। एक-लिपि के बारे में बातचीत तो खूब होती है, लेकिन वही 'बिल्ली के गले में घंटी कौन बांधे' वाली बात है। कौन पहल करे! गुजराती कहेगा 'हमारी लिपि तो बड़ी सुन्दर सलोनी आसान है, इसे कैसे छोड़ूंगा?' बीच में अभी एक नया पक्ष और निकल के आया है, वह ये, कुछ लोग कहते हैं कि देवनागरी खुद ही अभी अधूरी है, कठिन है, मैं भी यह मानता हूँ कि इसमें सुधार होना चाहिए। लेकिन अगर हम हर चीज के बिलकुल ठीक हो जाने का इंतजार करते रहेंगे तो सब हाथ से जायेगा, न जग के रहोगे न जोगी बनोगे। अब हमें यह नहीं करना चाहिए। इसी आजमाइश के लिए हमने यह देवनागरी संस्करण निकाला है। अगर लोग यह (देवनागरी में गुजराती) पसंद करेंगे तो 'नवजीवन पुस्तक' और भाषाओं को भी देवनागरी में प्रकाशित करने का प्रयत्न करेगा।

इस साहस के पीछे दूसरा उद्देश्य यह है कि हिंदी पढ़ने वाली जनता गुजराती पुस्तक देवनागरी लिपि में पढ़ सके। मेरा अभिप्राय यह है कि अगर देवनागरी लिपि में गुजराती किताब छपेगी तो भाषा को सीखने में आने वाली आधी दिक्कतें तो ऐसे ही कम हो जाएँगी।

इस संस्करण को लोकप्रिय बनाने के लिए इसकी कीमत बहुत कम राखी गयी है, मुझे उम्मीद है कि इस साहस को गुजराती और हिंदी पढ़ने वाले सफल करेंगे।

इसी प्रकार विनोबा भावे का विचार था कि हिन्दुस्तान की एकता के लिये हिन्दी भाषा जितना काम देगी, उससे बहुत अधिक काम देवनागरी लिपि देगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि सभी भाषाएँ देवनागरी में भी लिखी जाएं। सभी लिपियां चलें लेकिन साथ-साथ देवनागरी का भी प्रयोग किया जाये। विनोबा जी "नागरी ही" नहीं "नागरी भी" चाहते थे। उन्हीं की सद्प्रेरणा से 1975 में नागरी लिपि परिषद की स्थापना हुई।

विश्व लिपि के रूप में देवनागरी

बौद्ध संस्कृति से प्रभावित क्षेत्र नागरी के लिए नया नहीं है। चीन और जापान चित्र लिपि का व्यवहार करते हैं। इन चित्रों की संख्या बहुत अधिक होने के कारण भाषा सीखने में बहुत कठिनाई होती है। देववाणी की वाहिका होने के नाते देवनागरी भारत की सीमाओं से बाहर निकलकर चीन और जापान के लिए भी समुचित विकल्प दे सकती है। भारतीय मूल के लोग संसार में जहां-जहां

भी रहते हैं, वे देवनागरी से परिचय रखते हैं, विशेषकर मारीशस, सूरीनाम, फिजी, गुयाना, त्रिनिडाड, टोबैगो आदि के लोग। इस तरह देवनागरी लिपि न केवल भारत के अंदर सारे प्रांतवासियों को प्रेम-बंधन में बांधकर सीमोल्लंघन कर दक्षिण-पूर्व एशिया के पुराने वृहत्तर भारतीय परिवार को भी 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' अनुप्राणित कर सकती है तथा विभिन्न देशों को एक अधिक सुचारू और वैज्ञानिक विकल्प प्रदान कर 'विश्व नागरी' की पदवी का दावा इक्कीसवीं सदी में कर सकती है। उस पर प्रसार लिपिगत साम्राज्यवाद और शोषण का माध्यम न होकर सत्य, अहिंसा, त्याग, संयम जैसे उदात्त मानव मूल्यों का संवाहक होगा, असत् से सत्, तमस् से ज्योति तथा मृत्यु से अमरता की दिशा में। देवनागरी एक भारतीय लिपि है जिसमें अनेक भारतीय भाषाएँ तथा कई विदेशी भाषाएँ लिखी जाती हैं। यह बायें से दायें लिखी जाती है। इसकी पहचान एक क्षैतिज रेखा से है जिसे 'शिरोरेखा' कहते हैं। संस्कृत, पालि, हिन्दी, मराठी, कोङ्कणी, सिन्धी, कश्मीरी, हरियाणवी डोगरी, खस, नेपाल भाषा (तथा अन्य नेपाली भाषाएँ), तमाङ्ग भाषा, गढ़वाली, बोडो, अङ्गिका, मगही, भोजपुरी, नागपुरी, मैथिली, सन्थाली, राजस्थानी बघेली आदि भाषाएँ और स्थानीय बोलियाँ भी देवनागरी में लिखी जाती हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ स्थितियों में गुजराती, पंजाबी, बिष्णुपुरिया मणिपुरी, रोमानी और उर्दू भाषाएँ भी देवनागरी में लिखी जाती हैं। देवनागरी विश्व में सर्वाधिक प्रयुक्त लिपियों में से एक है। यह दक्षिण एशिया की 170 से अधिक भाषाओं को लिखने के लिए प्रयुक्त हो रही है।

लिपि-विहीन भाषाओं के लिये देवनागरी

दुनिया की कई भाषाओं के लिये देवनागरी सबसे अच्छी विकल्प हो सकती है, क्योंकि यह यह बोलने की पूरी आजादी देती है। दुनिया की और किसी भी लिपि में यह नहीं हो सकता है। इन्डोनेशिया, विएतनाम, अफ्रीका आदि के लिये तो यही सबसे सही रहेगी। अष्टाध्यायी को देखकर कोई भी समझ सकता है कि दुनिया में इससे अच्छी कोई भी लिपि नहीं है। अगर दुनिया पक्षपातरहित हो तो देवनागरी ही दुनिया की सर्वमान्य लिपि होगी क्योंकि यह पूर्णतः वैज्ञानिक है। अंग्रेजी भाषा में वर्तनी (स्पेलिंग) की विकराल समस्या के कारगर समाधान के लिये देवनागरी पर आधारित देवग्रीक लिपि प्रस्तावित की गयी है।

देवनागरी लिपि और उसकी वैज्ञानिकता

भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत की लिपि को 'देवनागरी लिपि' कहा जाता है। इस लिपि का प्रयोग वैदिक युग के पूर्व से ही होता आ रहा है। मनुष्य के मुख से जो ध्वनियाँ उच्चरित होती हैं, उनको व्यक्त और व्यवस्थित रखने तथा स्थायित्व देने के लिए ध्वनि-संकेतों के आकार के रूप में लिपि का आविष्कार हुआ और इन संकेतों की रूपरेखा ध्वनि-विशेष के उच्चारण में श्वास के अनुसार बनाई गई, जिसे 'वर्णमाला' कहते हैं। देवनागरी लिपि का प्रारंभिक रूप पहले सीधा-सादा था। सभ्यता के विकास के साथ इसे भी आकर्षक तथा व्यवस्थित करके वर्तमान रूप में लाया गया। 'पाणिनि' के व्याकरण-ग्रंथ 'अष्टाध्यायी' के अनुसार 11 स्वर और 33 व्यंजनों का समावेश हुआ।

व्यंजन में 25 वर्ण स्पर्श, 4 वर्ण अंत:स्थ और 4 वर्ण हैं। यह देवनागरी लिपि का परिवार है। टंकण सुविधा की दृष्टि से वर्तमान में लिपि-संकेतों में आवश्यक परिवर्तन तथा संशोधन भी किया गया है। व्यंजनों में स्वराभाव दिखाने के लिए हलंत लगाना पड़ता है। साथ ही वर्णमाला में सभी संभव ध्वनियों के लिए विशेष संकेत भी नियत किए गए हैं। देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह ध्वनिपरक है और संकेत, लेखन तथा उच्चारण में कोई भेद नहीं रखती है। पाठक को अपनी तरफ से किसी ध्वन्यांश को मिलाने या छोड़ने की जरूरत नहीं पड़ती है। इसकी वर्णमाला के वर्गीकरण में व्याकरण शास्त्र ने उच्चारण-स्थान उच्चारण में श्वास-गति और जिह्वा की स्थितियों का बराबर ध्यान रखा है। इतनी वैज्ञानिकता विश्व की अन्य किसी भी भाषा में अप्राप्य है। अंग्रेजी में लिपियों का उच्चारण शब्दपरक है तथा उच्चारण और लेखन में कोई व्यवस्था नहीं है।

बी यू टी का उच्चारण 'बट' है तो पी यू टी का 'पुट' होता है। एक ही स्वर 'यु' कहीं 'यू' है, 'उ' है तो कहीं 'अ' है। अरबी लिपि में तीन स्वरों से तेरह स्वरों का काम लिया जाता है। देवनागरी लिपि के उच्चारण में परिपूर्ण निर्विलपता के कारण लिखने, पढ़ने और समझने में कठिनाई नहीं होती है।

कई कारणों से देवनागरी वर्णमाला के व्यंजनों के वर्गीकरण में उनके उच्चारण-स्थानों का क्रमिक सामीप्य श्रद्धेय है, साथ ही स्वरों के आधार-निर्धारण में उनके उच्चारण को भी ह्रस्व, दीर्घनुत के रूप में सम्यक् विभाजन किया। देवनागरी लिपि की शिरोरेखा का ध्यान रखने से ही 'ख' और 'रव', 'घ' और

'ध', 'म' और 'भ' और 'स' और अंश 'श' का अंतर समझा जा सकता है।

इस प्रकार देवनागरी लिपि के प्रत्येक वर्ण प्रायः निर्दोष हैं। टंकण की सुविधा को ध्यान में रखते हुए देवनागरी लिपि के स्वर, व्यंजन, संयुक्त अक्षर, पूर्ण विराम आदि के लेखन में जो बदलाव लाए गए हैं, इतना तो मानना ही होगा कि उससे लिपि के आकार-गठन का सौंदर्य कम हो गया है।

साथ ही संयुक्त अक्षरों की उच्चारण-शुद्धि में भी विकार की संभावना बढ़ गई है। अतः इस दिशा में और भी अधिक सावधानी से संशोधन की गुंजाइश है। जो भी हो, नागरी लिपि अपने वर्तमान रूप में निर्दोष है।

देवनागरी लिपि की भूमिका

देवनागरी लिपि का विकास प्राचीन लिपि ब्राह्मी से हुआ। ब्राह्मी लिपि के अभिलेख ईसा पूर्व चतुर्थ शती तक के मिलते हैं। इसके समकालीन एक और लिपि थी जिसको खरोष्ठी कहते हैं। खरोष्ठी दाहिनी ओर से बायीं ओर चलती है, जबकि ब्राह्मी बायीं ओर से दायीं ओर। ये दोनों लिपियां भारत की अपनी लिपियां थीं और इनका विकास और उद्‌गम शुद्ध भारतीय था। कुछ यूरोपीय विद्वानों का मत था कि इनका उद्‌गम अभारतीय प्रभाव पर आधारित है किंतु इसका प्रतिवाद पं. गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने कर दिया था और उनकी उक्ति का खंडन नहीं हो सका। अरबी उर्दू लिपि भी दाहिनी ओर से बायीं ओर चलती है किंतु खरोष्ठी लिपि से इसका कोई संबंध नहीं था। ब्राह्मी और खरोष्ठी के अतिरिक्त सिंधु घाटी में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो में पाए गये अभिलेख प्रायः ईसा पूर्व 2700 वर्ष पुराने हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अंकन पर्वतों की गुफाओं में पाए गए भारतीय आदिवासियो के रचित चित्रों में भी मिलता है। ये चित्र 25000 वर्ष पुराने समझे जाते हैं। इस अंकन का भी कोई संबध उल्लिखित ब्राह्मी और खरोष्ठी लिपियों से नहीं है।

ब्राह्मी के दो रूप उत्तरी और दक्खिनी विकसित हो गए थे। उत्तरी रूप में दूसरों के अतिरिक्त देवनागरी और कुटिल लिपि भी विकसित हुई। आज देवनागरी लिपि संस्कृत, हिन्दी, नेपाली, मराठी लिखने के लिए प्रयुक्त की जाती है। इसमें स्वर और व्यंजन स्पष्ट रूप से अंकित होते हैं। स्वरों का एक संक्षिप्त रूप भी होता है जिसको भाषा कहते हैं जब स्वर किसी व्यंजन के उपरांत आता है तो इसे मात्रा रूप में अंकित करते हैं। उदाहणार्थ–हम लिखते हैं 'ऐसा' और 'कैसा' प्रथम शब्द में 'ऐ' स्वर अपने मूल रूप में है, दूसरे में अपने मात्रा रूप

में। ये मात्राएं व्यंजन से पहले, बाद को, नीचे और ऊपर लिखी जाती हैं–उकार, ऊकार, ऋकार व्यंजन के नीचे और एकार, ऐकार, ओकार और औकार व्यंजन के ऊपर लगते हैं। अकार की मात्रा व्यंजन के बाद रखी जाती है। अकार की मात्रा व्यंजन के रूप में ही शामिल होती है और इसका प्रयोग अन्य स्वररहित व्यंजन रूप में सन्निहित रहता है: जैसे–कथा, रस आदि शब्दों में। वर्तमान देवनागरी लिपि में अंकित वर्णों में कुछ व्यंजन संयोग भी सिखाए जाते हैं और ये हैं क्ष (–+ ष), त्र (त् + र), झ (ज + त्र), इसके अतिरिक्त र के कई रूप हैं, जो आज भी प्रचलित देवनागरी लिपि में मिलते हैं। ब्राह्मी में दो व्यंजनों के संयोग में प्रथम व्यंजन ऊपर तथा दूसरा उसके नीचे लिखा जाता था। यह प्रथा देवनागरी में भी पाई जाती है विशेषकर र के साथ किसी व्यंजन के संयोग में उदाहरणार्थ धर्म, गर्हा, में रेफ म और ह के ऊपर लिखा जाता है। र का प्राचीन रूप था जो हमें प्रेम आदि में अंकित मिलता है। ट वर्ग व्यंजनों तथा अकार के रोके साथ संयोग में र का प्रचलित रूप 'यह है और ट्र वर्ग और अकार अपने पूरे रूप में अंकित किए जाते हैं जिससे भ्रम होता है रकार स्वररहित रूप में अंकित है।

लिपि सुधार की आवश्यकता को देखकर कई समितियों ने समय-समय पर विचार किया था। महात्मा गांधी के निर्देशन पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 1935 में अपने वार्षिक अधिवेशन में लिपि सुधार समिति नियुक्त की थी। फिर 1948 में आचार्य नरेंद्र देव समिति बनी। 1953 में डॉ. संपूर्णानन्द के निर्देश पर विद्वानों की एक समिति ने सुझाए गए सुधारों के प्रस्तावों पर विचार-विमर्श किया था। इसके पूर्व 1948 में भारत सरकार ने हिन्दी आशुलिपि (शार्ट हैंड) और टंकण (टाइप) पर विचार-विमर्श के लिए काका कालेलकर जी की अध्यक्षता में एक समिति बनाई थी। देवनागरी लिपि में प्रचलित लेखन प्रणाली इन सब समितियों के आधार पर विकसित हुई है। सिद्धांत यह है–लिपि में एक ध्वनि को अंकित करने के लिए एक ही वर्ण होना चाहिए। इस सिद्धांत पर देवनागरी लिपि ही भारतीय भाषाओं को अंकित करने में सवर्था समर्थ है और विभ्रम की कोई गुंजाइश प्राय: नहीं ही है। इसके विपरी रोमन में भी तथा अरबी (उर्दू) में यह योग्यता नहीं है।

उदाहरणार्थ– रोमन लिपि का कभी ऐ ध्वनि का (कैन) और कभी अ (फादर) को व्यक्त करता है। न वर्ण कभी अ (बट) और कभी उ (पुट) का उच्चारण देन है। इसी प्रकार उर्दू के ते और तोय 'त' ध्वनि का द्योतन करते हैं,

से, सीन और स्वाद 'स' ध्वनि का तथा जाल, जे और जोय 'ज' ध्वनि को जतलाते हैं। अरबी लिपि में लिखी जाने वाली उर्दू में स्वरों के अंकन का यथेष्ट और असंदिग्ध प्रबंध नहीं है। हमारी देवनागरी लिपि में ये कोई दोष नहीं है। इसमें जो लिखा जाता है वहीं पढ़ा जाता है। इसी दृष्टि से भारतीय भाषाओं को अंकित करने के लिए देवनागरी लिपि सर्वश्रेष्ठ सर्वथा योग्य है। कोई 15 वर्ष पूर्व भारत सरकार के शिक्षा विभाग ने सभी राज्य सरकारों को सिफारिश भेजी थी कि देवनागरी लिपि को सभी राज्य अपनी-अपनी प्रादेशिक लिपि के अतिरिक्त स्वीकार करें किंतु खेद है यह सिफारिश नहीं मानी गई। भाषाओं की विभिन्नता, लिपि भेद से अधिक उपस्थित होती है और लिपि की एकरूपता से भाषाओं की रूप विभिन्नता कम हो जाती है। बंगला, गुजराती आदि संस्कृत से विकसित हुई हैं, हिन्दी मराठी ओर पंजाबी की तरह संस्कृत के बहुत से शब्द तत्सम तथा तत्सम रूप में इन सभी भाषाओं में प्रयुक्त होते हैं। यदि लिपि एक ही तो यह शब्द समानता इन सभी भाषाओं को समझने में सुविधा प्रदान करें। यूरोप की अंग्रेजी, फ्रेंच, पुर्तगाली आदि भाषाएं एक ही रोमन लिपि में लिखी जाती हैं। इसी कारण इन भाषाओं को बोलने वाले लोग इन सभी को आसानी से पढ़ और सीख लेते हैं।

प्रो. सुनीतिकुमार चटर्जी ने रोमन लिपि की इस प्रयोग की सुविधा को समझकर प्रस्ताव किया था कि एक इंडोरोमन लिपि हिन्दी के लिए स्वीकार की जाए और हिन्दी के वर्णों के लिए 26 वर्णों की रोमन लिपि को विशेष चिन्ह लगाकर उपस्थित किया जाए। उनका यह प्रस्ताव पुस्तक में ही रह गया और किसी ने इसे नहीं माना। लिपि के संबंध में एक मोह सा जनता को होता है और उसके ऊपर उठना संभव नहीं होता। यदि देवनागरी लिपि जो उद्‌गम और विकास में सर्वथा भारतीय है और अन्य भारतीय लिपियों से अधिकतर मिलती जुलती है, भारतीय भाषाओं की लिपि स्वीकार कर ली जाए तो भारतीय जनता का बड़ा उपकार होगा। तभी देवनागरी लिपि वास्तविक राष्ट्रलिपि होगी।

राष्ट्रलिपि

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने जिस प्रकार 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' की घोषणा करके राष्ट्र को स्वतंत्रता का मंत्र दिया, उसी प्रकार उन्होंने राष्ट्र लिपि के रूप में नागरी तथा राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की घोषणा काशी नागरी प्रचारिणी सभा में सन 1905 में की थी।

तिलकजी ने यह ऐतिहासिक घोषणा भारतीय कांग्रेस के सन् 1905 के बनारस अधिवेशन के अवसर पर की थी। इस घोषणा के महत्त्व को समझकर देश के नेताओं ने संविधान सभा में हिंदी को राजभाषा के स्थान पर राष्ट्रभाषा और नागरी लिपि को राष्ट्र लिपि स्वीकार किया होता तो वह आज देश की एकता और अखंडता का सक्षम माध्यम होती।

लोकमान्य तिलकजी ने प्राचीन ताम्रपत्र एवं ग्रंथों में हस्तलिखित नागरी लिपि के प्रयोग का उल्लेख करते हुए भाषा शास्त्र की दृष्टि से उसका प्रतिपादन किया था और उन्होंने कहा था कि 'भारत में मापतौल की एक ही पद्धति चलती है। उसी प्रकार हिन्दुस्तान में सर्वत्र एक ही लिपि का प्रचार होना चाहिए।'

1910 में मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री वी कृष्ण स्वामी अय्यर ने विभिन्न लिपियों के व्यवहार से बढ़ने वाली अनेकता और भारतीय भाषाओं के बीच पनपती दूरी पर चिंता व्यक्त करते हुए सहलिपि के रूप में देवनागरी का समर्थन किया। श्री रामानन्द चटर्जी ने 'चतुर्भाषी नामक पत्र निकाला जिसमें बंगला, मराठी, गुजराती और हिंदी की रचनाएं देवनागरी लिपि में छपती थीं। राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ही नहीं, बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय भी देवनागरी लिपि के प्रबल समर्थक थे। विद्यासागर जी चाहते थे कि भारतीय भाषाओं के लिए नागरी लिपि का व्यवहार अतिरिक्त लिपि के रूप में किया जाए, जबकि बंकिम बाबू का मत था कि भारत में केवल देवनागरी लिपि का व्यवहार किया जाना चाहिए।

बहादुरशाह जफर के भतीजे वेदार बख्त ने 'पयाम-ए-आजादी' पत्र साथ-साथ देवनागरी और फारसी लिपि में प्रकाशित किया। महर्षि दयानंद ने अपना सारा वांग्मय देवनागरी में लिखा। उनके प्रभाव से देवनागरी का व्यापक प्रचार हुआ। मेरठ में गौरीदत्त शर्मा ने 1870 के लगभग 'नागरी सभा' का गठन किया और स्वामीजी की प्रेरणा से अनेक लोग नागरी के प्रसार में जी जान से जुट गये। आज मेरठ में देवनागरी कालेज उन्हीं की कृपा से सुफल है। श्री भूदेव मुखोपाध्याय ने बिहार की अदालतों में देवनागरी का प्रयोग आरंभ कराया जिसकी प्रशंसा संस्कृत के उपन्यासकार अंबिकादत्त व्यास ने अपने गीतों में की है। भारतेंदु हरिशचन्द्र, कालाकांकर नरेश, राजा रामपाल सिंह, अलीगढ़ के बाबू तोता राम, बाबू श्यामसुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास और पं. मदनमोहन मालवीय के सत्प्रयत्न रंग लाये और उत्तर प्रदेश के न्यायालयों में देवनागरी के वैकल्पिक प्रयोग का रास्ता साफ हुआ।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी अपनाने के कट्टर हिमायती थे। पं. जवाहर लाल नेहरू सभी भारतीय भाषाओं को जोड़ने वाली मजबूत कड़ी के रूप में देवनागरी लिपि को अपनाने के समर्थक थे। डॉ. राजेंद्र प्रसाद चाहते थे कि भारत की प्रादेशिक भाषाओं का साहित्य देवनागरी के माध्यम से हर भारतीय को आस्वादन के लिए उपलब्ध होना चाहिए। वीर सावरकर नागरी को 'राष्ट्र लिपि' के रूप में मान्यता देने के पक्ष में थे। लाला लाजपतराय राष्ट्रव्यापी मेल और राजनैतिक एकता के लिए सारे भारत में देवनागरी का प्रचार, आवश्यकता मानते थे। 1924 में शहीद भगत सिंह ने लिखा था–'हमारे सामने इस समय मुख्य प्रश्न भारत का एक राष्ट्र बनाने के लिए एक भाषा होना आवश्यक है, परन्तु यह एकदम नहीं हो सकता। उसके लिए कदम-कदम चलना पड़ता है। यदि हम सभी भारत की एक भाषा नहीं बना सकते तो कम से कम लिपि तो एक बना देनी चाहिए।' रेवरेण्ड जॉन डिनी लिखते हैं–'चूंकि लाखों भाषा-भाषी पहले से ही नागरी लिपि जानते हैं, इसलिए मैं महसूस करता हूं कि बिल्कुल नहीं लिपि के प्रचलन की अपेक्षा किंचित संवर्द्धित नागरी लिपि को ही अपनाना अधिक वास्तविक होगा।'

17 मार्च 1967 को सेठ गोविंददास जी ने एक बहुत बड़े समुदाय के सामने प्रस्ताव रखा कि सारी प्रादेशिक भाषाएं देवनागरी लिपि में ही लिखी जाएं। इस देश की एकता को बनाए रखने के लिए और एक-दूसरे के साथ सम्पर्क बढ़ाने के लिए और इस देश की हर भाषा के साहित्य को समझना है तो हमें एक लिपि की आवश्यकता है। वह लिपि देवनागरी लिपि ही हो सकती है।

सहलिपि के रूप में देवनागरी राष्ट्र लिपि का रूप ग्रहण कर सकती है। इससे श्रम, समय और धन की बचत तो होगी ही, राष्ट्रीय भावना और पारस्परिक आत्मीयता की अभिवृद्धि भी होगी। इससे पृथक्तावाद के विषाणुओं का विनाश होगा और अखण्डता की भावना सबल होगी। भारतीय साहित्य के वास्तविक स्वरूप पर परिचय मिलेगा तथा सारी भाषाएं एक-दूसरे के निकट आकर स्नेह-सूत्र में गुम्फित हो जाएंगी। उनके बीच की विभेद की दीवार ढह जाएगी और आसेतु हिमालय सामाजिक समरता परिपुष्ट होगी। यही नहीं, सारी भारतीय भाषाओं को अखिल भारतीय बाजार मिलेगा, उनकी खपत बढ़ेगी और शोध को अखिल भारतीय स्तर प्राप्त होगा। न केवल शब्द-भंडार का साम्य, बल्कि भाव और प्रवृत्तियों का साम्य भी परिलक्षित होगा और एक भाषा बोलने वाला दूसरी भाषा और इसके साहित्य के सौष्ठव तथा वैशिष्ट्य का भरपूर आस्वादन कर

सकेगा। इसीलिए खुशवंत सिंह ने उर्दू साहित्य को देवनागरी में लिखने का समर्थन किया है। देवनागरी में गालिब, मीर, नजीर आदि की पुस्तकें लगभग 1 करोड़ रुपये की बिक चुकी हैं।

आज जनजातियों की बेहद उपेक्षा हुई। उन्हें राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग-थलग कर विदेशी मिशनरियों के आसरे छोड़ दिया गया। उन्हें भारतीय होने का गौरव मध्य क्षेत्र में संथाल, मुण्डा, चकमा आदि तथा दक्षिण क्षेत्र में मिला जहां चेंचू, कांटा, कुरुम्ब जनजातियां रहती हैं। अंडमान-निकोबार द्वीप समूह में ओगो, शोम्पेन आदि जनजातियां पाई जाती हैं। लिपि विहीन जनजातीय बोलियों के लिए देवनागरी सबसे उपयुक्त है। बोडो और जेभी भाषा के लिए नागरी लिपि का प्रयोग होता है। अरुणाचल में भी देवनागरी का व्यवहार जनजातीय बोलियों के लिए किया जा रहा है। जहां पर भी संस्कृत, प्राकृत, पालि और अपभ्रंश का अनुशीलन होता रहा है, वहां देवनागरी लिपि सुपरिचित है। मराठी, नेपाली के बोलने वाले इस लिपि का पहले से ही व्यवहार करते हैं। दक्षिण भारत हो या भारत का कोई भी हिंदीतर क्षेत्र-देववाणी के कारण नागरी अक्षर सर्वत्र प्रचलित है।

देवनागरी लिपि में सुधार

देवनागरी का विकास उस युग में हुआ था जब लेखन हाथ से किया जाता था और लेखन के लिए शिलाएँ, ताड़पत्र, चर्मपत्र, भोजपत्र, ताम्रपत्र आदि का ही प्रयोग होता था। किन्तु लेखन प्रौद्योगिकी ने बहुत अधिक विकास किया और प्रिन्टिंग प्रेस, टाइपराइटर आदि से होते हुए वह कम्प्यूटर युग में पहुँच गयी है जहाँ बोलकर भी लिखना सम्भव हो गया है। जब प्रिंटिंग एवं टाइपिंग का युग आया तो देवनागरी के यंत्रीकरण में कुछ अतिरिक्त समस्याएँ सामने आयीं जो रोमन में नहीं थीं। उदाहरण के लिए रोमन टाइपराइटर में अपेक्षाकृत कम कुंजियों की आवश्यकता पड़ती थी। देवनागरी में संयुक्ताक्षर की अवधारणा होने से भी बहुत अधिक कुंजियों की आवश्यकता पड़ रही थी। ध्यातव्य है कि ये समस्याएँ केवल देवनागरी में नहीं थी बल्कि रोमन और सिरिलिक को छोड़कर लगभग सभी लिपियों में थी। चीनी और उस परिवार की अन्य लिपियों में तो यह समस्या अपने गम्भीरतम रूप में थी।

इन सामयिक समस्याओं को ध्यान में रखते हुए अनेक विद्वानों और मनीषियों ने देवनागरी के सरलीकरण और मानकीकरण पर विचार किया और

अपने सुझाव दिए। इनमें से अनेक सुझावों को क्रियान्वित नहीं किया जा सका या उन्हें अस्वीकार कर दिया गया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि कम्प्यूटर युग आने से (या प्रिंटिंग की नई तकनीकी आने से) देवनागरी से सम्बन्धित सारी समस्याएँ स्वयं समाप्त हों गयीं।

भारत के स्वाधीनता आंदोलनों में हिंदी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होने के बाद लिपि के विकास व मानकीकरण हेतु कई व्यक्तिगत एवं संस्थागत प्रयास हुए। सर्वप्रथम बम्बई के महादेव गोविन्द रानडे ने एक लिपि सुधार समिति का गठन किया। तदनन्तर महाराष्ट्र साहित्य परिषद पुणे ने सुधार योजना तैयार की। सन 1904 में बाल गंगाधर तिलक ने अपने केसरी पत्र में देवनागरी लिपि के सुधार की चर्चा की। परिणामस्वरूप देवनागरी के टाइपों की संख्या 190 निर्धारित की गयी और इन्हें 'केसरी टाइप' कहा गया।

आगे चलकर सावरकर बंधुओं ने 'अ' की बारहखड़ी प्रयोग करने का सुझाव दिया (अर्थात् 'ई' न लिखकर अ पर बड़ी ई की मात्रा लगायी जाय)। डॉ. गोरख प्रसाद ने सुझाव दिया कि मात्राओं को व्यंजन के बाद दाहिने तरफ अलग से रखा जाय। डॉ. श्यामसुन्दर दास ने अनुस्वार के प्रयोग को व्यापक बनाकर देवनागरी के सरलीकरण के प्रयास किये (पंचमाक्षर के बदले अनुस्वार के प्रयोग)। इसी प्रकार श्रीनिवास का सुझाव था कि महाप्राण वर्ण के लिए अल्पप्राण के नीचे * चिह्न लगाया जाय। 1945 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अ की बारहखड़ी और श्रीनिवास के सुझाव को अस्वीकार करने का निर्णय लिया गया।

देवनागरी के विकास में अनेक संस्थागत प्रयासों की भूमिका भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रही है। 1935 में हिंदी साहित्य सम्मेलन ने नागरी लिपि सुधार समिति के माध्यम से 'अ' की बारहखड़ी और शिरोरेखा से संबंधित सुधार सुझाए। इसी प्रकार, 1947 में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में गठित एक समिति ने बारहखड़ी, मात्रा व्यवस्था, अनुस्वार व अनुनासिक से संबंधित महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये। देवनागरी लिपि के विकास हेतु भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय ने कई स्तरों पर प्रयास किये हैं। सन् 1966 में मानक देवनागरी वर्णमाला प्रकाशित की गई और 1967 में 'हिंदी वर्तनी का मानकीकरण' प्रकाशित किया गया। 1983 में 'देवनागरी लिपि तथा हिन्दी की वर्तनी का मानकीकरण' प्रकाशित किया गया।

2

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति एवं विकास

हिन्दी जिसके मानकीकृत रूप को मानक हिंदी कहा जाता है, विश्व की एक प्रमुख भाषा है एवं भारत की एक राजभाषा है। केन्द्रीय स्तर पर भारत में सह-आधिकारिक भाषा अंग्रेजी है। यह हिन्दुस्तानी भाषा की एक मानकीकृत रूप है जिसमें संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है और अरबी-फारसी शब्द कम हैं। हिन्दी संवैधानिक रूप से भारत की राजभाषा और भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, क्योंकि भारत के संविधान में किसी भी भाषा को ऐसा दर्जा नहीं दिया गया है। एथनोलॉग के अनुसार हिन्दी विश्व की तीसरी सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषा है। विश्व आर्थिक मंच की गणना के अनुसार यह विश्व की दस शक्तिशाली भाषाओं में से एक है।

भारत की जनगणना 2011 में 57.1प्रतिशत भारतीय जनसंख्या हिन्दी जानती है जिसमें से 43.63 प्रतिशत भारतीय लोगों ने हिन्दी को अपनी मूल भाषा या मातृभाषा घोषित किया था। इसके अतिरिक्त भारत, पाकिस्तान और अन्य देशों में 14 करोड़ 10 लाख लोगों द्वारा बोली जाने वाली उर्दू, व्याकरण के आधार पर हिन्दी के समान है, एवं दोनों ही हिन्दुस्तानी भाषा की परस्पर-सुबोध्य रूप हैं। एक विशाल संख्या में लोग हिन्दी और उर्दू दोनों को ही समझते हैं। भारत में हिन्दी,

विभिन्न भारतीय राज्यों की 14 आधिकारिक भाषाओं और क्षेत्र की बोलियों का उपयोग करने वाले लगभग 1 अरब लोगों में से अधिकांश की दूसरी भाषा है। हिन्दी भारत में सम्पर्क भाषा का कार्य करती है और कुछ हद तक पूरे भारत में सामान्यत: एक सरल रूप में समझी जानेवाली भाषा है। कभी-कभी 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग नौ भारतीय राज्यों के सन्दर्भ में भी उपयोग किया जाता है, जिनकी आधिकारिक भाषा हिन्दी है और हिन्दी भाषी बहुमत है, अर्थात् बिहार, छत्तीसगढ़, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तराखण्ड, जम्मू और कश्मीर (2020 से) उत्तर प्रदेश और राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली का।

हिन्दी और इसकी बोलियाँ सम्पूर्ण भारत के विविध राज्यों में बोली जाती हैं। भारत और अन्य देशों में भी लोग हिन्दी बोलते, पढ़ते और लिखते हैं। फिजी, मॉरीशस, गयाना, सूरीनाम, नेपाल और संयुक्त अरब अमीरात में भी हिन्दी या इसकी मान्य बोलियों का उपयोग करने वाले लोगों की बड़ी संख्या मौजूद है। फरवरी 2019 में अबू धाबी में हिन्दी को न्यायालय की तीसरी भाषा के रूप में मान्यता मिली।

'देशी', 'भाखा' (भाषा), 'देशना वचन' (विद्यापति), 'हिन्दवी', 'दक्खिनी', 'रेखता', 'आर्यभाषा' (दयानन्द सरस्वती), 'हिन्दुस्तानी', 'खड़ी बोली', 'भारती' आदि हिन्दी के अन्य नाम हैं, जो विभिन्न ऐतिहासिक कालखण्डों में एवं विभिन्न सन्दर्भों में प्रयुक्त हुए हैं। हिन्दी, यूरोपीय भाषा-परिवार के अन्दर आती है। ये हिन्द ईरानी शाखा की हिन्द आर्य उपशाखा के अन्तर्गत वर्गीकृत है।

नामोत्पत्ति

हिन्दी शब्द का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'सिन्धु' से माना जाता है। 'सिन्धु' सिन्धु नदी को कहते थे और उसी आधार पर उसके आस-पास की भूमि को सिन्धु कहने लगे। यह सिन्धु शब्द ईरानी में जाकर 'हिन्दू', हिन्दी और फिर 'हिन्द' हो गया। बाद में ईरानी धीरे-धीरे भारत के अधिक भागों से परिचित होते गए और इस शब्द के अर्थ में विस्तार होता गया तथा हिन्द शब्द पूरे भारत का वाचक हो गया। इसी में ईरानी का ईक प्रत्यय लगने से (हिन्द्ईक) 'हिन्दीक' बना जिसका अर्थ है 'हिन्द का'। यूनानी शब्द 'इण्डिका' या लैटिन 'इण्डेया' या अंग्रेजी शब्द 'इण्डिया' आदि इस 'हिन्दीक' के ही दूसरे रूप हैं। हिन्दी भाषा के लिए इस शब्द का प्राचीनतम प्रयोग शरफुद्दीन यज्दी' के 'जफरनामा'(1424) में मिलता है।

प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने अपने "हिन्दी एवं उर्दू का अद्वैत" शीर्षक आलेख में हिन्दी की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा है कि ईरान की प्राचीन भाषा अवेस्ता में 'स्' ध्वनि नहीं बोली जाती थी बल्कि 'स्' को 'ह' की तरह बोला जाता था। जैसे संस्कृत शब्द 'असुर' का अवेस्ता में सजाति समकक्ष शब्द 'अहुर' था। अफगानिस्तान के बाद सिन्धु नदी के इस पार हिन्दुस्तान के पूरे इलाके को प्राचीन फारसी साहित्य में भी 'हिन्द', 'हिन्दुश' के नामों से पुकारा गया है तथा यहाँ की किसी भी वस्तु, भाषा, विचार को विशेषण के रूप में 'हिन्दीक' कहा गया है जिसका मतलब है 'हिन्द का' या 'हिन्द से'। यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता हुआ ग्रीक में 'इण्डिके', 'इण्डिका', लैटिन में 'इण्डेया' तथा अंग्रेजी में 'इण्डिया' बन गया। अरबी एवं फारसी साहित्य में भारत (हिन्द) में बोली जाने वाली भाषाओं के लिए 'जबान-ए-हिन्दी' पद का उपयोग हुआ है। भारत आने के बाद अरबी-फारसी बोलने वालों ने 'जबान-ए-हिन्दी', 'हिन्दी जबान' अथवा 'हिन्दी' का प्रयोग दिल्ली-आगरा के चारों ओर बोली जाने वाली भाषा के अर्थ में किया।

भाषायी उत्पत्ति और इतिहास

हिन्दी भाषा का इतिहास लगभग एक सहस्र वर्ष पुराना माना गया है। हिन्दी भाषा व साहित्य के जानकार अपभ्रंश की अन्तिम अवस्था 'अवहट्ठ' से हिन्दी का उद्भव स्वीकार करते हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने इसी अवहट्ठ को 'पुरानी हिन्दी' नाम दिया।

अपभ्रंश की समाप्ति और आधुनिक भारतीय भाषाओं के जन्मकाल के समय को संक्रान्ति काल कहा जा सकता है। हिन्दी का स्वरूप शौरसेनी और अर्धमागधी अपभ्रंशों से विकसित हुआ है। 1000 ई. के आस-पास इसकी स्वतन्त्र सत्ता का परिचय मिलने लगा था, जब अपभ्रंश भाषाएँ साहित्यिक सन्दर्भों में प्रयोग में आ रही थीं। यही भाषाएँ बाद में विकसित होकर आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के रूप में अभिहित हुईं। अपभ्रंश का जो भी कथ्य रूप था, वही आधुनिक बोलियों में विकसित हुआ।

अपभ्रंश के सम्बन्ध में 'देशी' शब्द की भी बहुधा चर्चा की जाती है। वास्तव में 'देशी' से देशी शब्द एवं देशी भाषा दोनों का बोध होता है। प्रश्न यह कि देशीय शब्द किस भाषा के थे? भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में उन शब्दों को 'देशी' कहा है 'जो संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव रूपों से भिन्न है। ये 'देशी'

शब्द जनभाषा के प्रचलित शब्द थे, जो स्वभावत: अप्रभंश में भी चले आए थे। जनभाषा व्याकरण के नियमों का अनुसरण नहीं करती, परन्तु व्याकरण को जनभाषा की प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना पड़ता है, प्राकृत-व्याकरणों ने संस्कृत के ढाँचे पर व्याकरण लिखे और संस्कृत को ही प्राकृत आदि की प्रकृति माना। अत: जो शब्द उनके नियमों की पकड़ में न आ सके, उनको देशी संज्ञा दी गयी।

हिंदी भाषा का इतिहास

प्राकृत भाषाएँ ईसवी सन् के कोई आठ-नौ सौ वर्ष तक और अपभ्रंश भाषाएँ ग्यारहवें शतक तक प्रचलित थीं। हेमचंद्र के प्राकृत व्याकरण में हिंदी की प्राचीन कविता के उदाहरण' पाए जाते हैं। जिस भाषा में मूल 'पृथ्वीराजरासो' लिखा गया 'षटभाषा' का मेल है। इस 'काव्य' में हिंदी का पुराना रूप पाया जाता है।' इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हमारी वर्तमान हिंदी का विकास ईसवी सन् की बारहवीं सदी से हुआ है। 'शिवसिंह सरोज' में पुष्य नाम के एक कवि का उल्लेख है, जो भाषा की जड़' कहा गया है और जिसका समय सन् 713 ई. दिया गया है। पर न तो इस कवि की कोई रचना मिली है और न यह अनुमान हो सकता है कि उस समय हिंदी भाषा प्राकृत अथवा अपभ्रंश से पृथक् हो गई थी। बारहवें शतक में भी यह भाषा अधबनी अवस्था में थी, तथापि अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का प्रचार मुसलमानों के भारत प्रवेश के समय से होने लगा था। यह प्रचार यहाँ तक बढ़ा कि पीछे से भाषा के लक्षण में 'पारसी' भी रखी गई।'

विद्वान् लोग हिंदी भाषा और साहित्य के विकास को नीचे लिखे चार भागों में बाँटते हैं–

(1) आदि हिंदी–यह उस हिंदी का नमूना है, जो अपभ्रंश से पृथक् होकर साहित्य कार्य के लिए बन रही थी। यह भाषा दो कालों में बांटी जा सकती है–वीरकाल 1200-1400 और धर्मकाल 1440-1600।

वीरकाल में यह भाषा पूर्ण रूप से विकसित न हुई थी और इसकी कविता का प्रचार अधिकतर राजपूताने में था। इसके बाहर के साहित्य की कोई विशेष उन्नति नहीं हुई। उसी समय महोबे में जगनिक कवि हुआ जिसके किसी ग्रंथ के आधार पर 'आल्हा' की रचना हुई। आजकल इस काव्य की मूल भाषा का ठीक पता नहीं लग सकता, क्योंकि भिन्न-भिन्न प्रांतों के लेखकों और गवैयों ने इसे अपनी बोलियों का रूप दे दिया है। विद्वानों का अनुमान है कि इसकी

मूल भाषा बुंदेलखंडी थी और यह बात कवि की जन्मभूमि बुंदेलखंड में होने से पुष्ट होती है।

प्राचीन हिंदी का समय बतानेवाली दूसरी रचना भक्तों के साहित्य में पाई जाती है, जिसका समय अनुमान से 1400-1600 है। इस काल के जिन-जिन कवियों के ग्रंथ आजकल लोगों में प्रचलित हैं, उनमें बहुतेरे वैष्णव थे और उन्हीं के मार्ग-प्रदर्शन से पुरानी हिंदी के उस रूप में, जिसे ब्रजभाषा कहते हैं, कविता रची गई। वैष्णव सिद्धांत के प्रचार का आरंभ रामानुज से माना जाता है, जो दक्षिण के रहने वाले थे और अनुमान से बारहवीं सदी में हुए हैं। उत्तर भारत में यह धर्म रामानंद स्वामी ने फैलाया, जो इस संप्रदाय के प्रचारक थे। इनका समय सन् 1400 ईसवी के लगभग माना जाता है। इनकी लिखी कुछ कविताएँ सिक्खों के आदिग्रंथ में मिलती हैं और इनके रचे हुए भजन पूर्व में मिथिला तक प्रचलित हैं। रामानंद के चेलों में कबीर थे जिनका समय 1512 ईसवी के लगभग है। उन्होंने कई ग्रंथ लिखे हैं जिनमें 'साखी', 'शब्द', रेख्ता' और 'बीजक' अधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी भाषा में ब्रजभाषा और हिंदी के उस रूपांतर का मेल है, जिसे लल्लू जी लाल ने (सन् 1803 में) खड़ीबोली' नाम दिया है। कबीर ने जो कुछ लिखा है, वह धर्म-सुधारक की दृष्टि से लिखा है, लेखक की दृष्टि से नहीं। इसलिए उनकी भाषा साधारण और सहज है। लगभग इसी समय मीराबाई हुईं, जिन्होंने कृष्ण की भक्ति में बहुत सी कविताएँ कीं। इनकी भाषा कहीं मेवाड़ी और कहीं ब्रजभाषा है। इन्होंने 'राग गोविंद की टीका' आदि ग्रंथ लिखे। सन् 1469 ई. से 1538 तक बाबा नानक का समय है। ये नानकपंथी सम्प्रदाय के प्रचारक और 'आदिग्रंथ' लेखक थे। इस ग्रंथ की भाषा पुरानी पंजाबी होने के बदले पुरानी हिंदी है। शेरशाह 1540 के आश्रय में मलिक मुहम्मद जायसी ने पद्मावत' लिखी जिसमें सुन्तान अलाउद्दीन के चित्तौड़ का किला लेने पर वहाँ के राजा रतनसेन की रानी पद्मावती के आत्मघात की ऐतिहासिक कथा है'। इस पुस्तक की भाषा अवधी है।

वैष्णव धर्म का एक और भेद है जिसमें लोग श्रीकृष्ण को अपना इष्टदेव मानते हैं। इस संप्रदाय के संस्थापक वल्लभ स्वामी थे, जिनके पूर्वज दक्षिण के रहनेवाले थे। वल्लभ स्वामी ने सोलहवीं सदी के आदि में उत्तर भारत में अपने मत का प्रचार किया। इनके आठ शिष्य थे जो 'अष्टछाप' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये आठों कवि ब्रज में रहते थे और ब्रजभाषा में कविता करते थे। इनमें सूरदास मुख्य हैं जिनका समय सन् 1550 ई. के लगभग है। कहते हैं, इन्होंने सवा लाख पद्य लिखे

हैं जिनका संग्रह 'सूरसागर' नामक ग्रंथ में है। इस पंथ के चौरासी गुरुओं का वर्णन 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक ग्रंथ में पाया जाता है, जो ब्रजभाषा के गद्य में लिखा गया है, पर इस ग्रंथ का समय निश्चित नहीं है।

अकबर (1556-1605 ई.) के समय में ब्रजभाषा की कविता की अच्छी उन्नति हुई। अकबर स्वयं ब्रजभाषा में कविता करते थे और उनके दरबार में हिंदू कवियों के समान रहीम, फैजी फहीम आदि मुसलमान कवि भी इस भाषा में रचना करते थे। हिंदू कवियों में टोडरमल, बीरबल, नरहरि, हरिनाथ, करनेश और गंग आदि अधिक प्रसिद्ध थे।

(2) मध्य हिंदी—यह हिंदी कविता के सत्ययुग का नमूना है, जो अनुमान से सन् 1600 से लेकर 1800 ई. तक रहा। इस काल में केवल कविता और भाषा ही की उन्नति नहीं हुई वरन् साहित्य विषय के भी अनेक उत्तम और उपयोगी ग्रंथ लिखे गए। मध्य हिंदी के कवियों में सबसे प्रसिद्ध गोसाईं तुलसीदास जी हुए, जिनका समय सन् 1573 से 1624 ई. तक है। उन्होंने हिंदी में एक महाकाव्य लिखकर भाषा का गौरव बढ़ाया और सर्वसाधारण में वैष्णव धर्म का प्रचार किया। राम के अनन्य भक्त होने पर भी गोसाईं जी ने शिव और राम में भेद नहीं माना और मत मतान्तर का विवाद नहीं बढ़ाया। वैराग्य वृत्ति के कारण उन्होंने श्रीकृष्ण की भक्ति और लीलाओं के विषय में बहुत नहीं लिखा, तथापि 'कृष्ण गीतावली में इन विषयों पर यथेष्ट और मनोहर रचना की है।

तुलसीदास ने ऐसे समय में रामायण की रचना की जब मुगल राज्य दृढ़ हो रहा था और हिंदू समाज के बंधन अनीति के कारण ढीले हो रहे थे। मनुष्य के मानसिक विकारों का जैसा अच्छा चित्र तुलसीदास ने खींचा है, वैसा और कोई नहीं खींच सका। रामायण की भाषा अवधी है, पर वह बैसवाड़ी से विशेष मिलती-जुलती है। गोसाईं जी के और ग्रंथों में अधिकांश ब्रजभाषा है।

इस काल के दूसरे प्रसिद्ध कवि केशवदास, बिहारीलाल, भूषण, मतिराम और नाभादास हैं। केशवदास पहले कवि हैं जिन्होंने साहित्य विषयक ग्रंथ रचे। इस विषय के इनके ग्रंथ 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और रामालकृत मजरी' हैं। 'रामचंद्रिका' और 'विज्ञानगीता' भी इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। इनकी भाषा में संस्कृत शब्दों की बहुतायत है। इनकी योग्यता की तुलना सूरदास और तुलसीदास से की जाती है। इनका मरण काल अनुमान से सन् 1612 ईसवी है। बिहारीलाल ने 1650 ईसवी के लगभग 'सतसई' समाप्त की। इस ग्रंथरत्न में काव्य के प्रायः सब गुण विद्यमान हैं। इसकी भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। 'बिहारी सतसई' पर कई

कवियों ने टीकाएँ लिखी हैं। भूषण ने 1671 ई. में शिवराजभूषण' बनाया और कई अन्य ग्रंथ लिखे। इनके ग्रंथों में देशभक्ति और धर्माभिमान खूब दिखाई देता है। इनकी कुछ कविताएँ खड़ी बोली में भी हैं और अधिकांश कविताएँ वीर रस से भरी हुई हैं। चिंतामणि और मतिराम भूषण के भाई थे, जो भाषा साहित्य के आचार्य माने जाते हैं। नाभादास जाति के डोम थे और तुलसीदास के समकालीन थे। इन्होंने ब्रजभाषा में 'भक्तमाल' नामक पुस्तक लिखी जिसमें अनेक वैष्णव भक्तों का संक्षिप्त वर्णन है।

इस काल के उत्तरार्ध में राज्यक्रांति के कारण कविता की विशेष उन्नति नहीं हुई। इस काल के प्रसिद्ध कवि प्रिया दास, कृष्ण कवि, भिखारी दास, ब्रजवासी दास, सूरति मिश्र आदि हैं। प्रिया दास ने सन् 1712 ईसवी में 'भक्तमाल' पर एक (पद्य) टीका लिखी। कृष्ण कवि ने 'बिहारी सतसई' पर सन् 1720 के लगभग एक टीका रची। भिखारी दास सन् 1723 के लगभग हुए और साहित्य के अच्छे कवि समझे जाते हैं। इनके प्रसिद्ध ग्रंथ छंदोर्णव' और काव्य-निर्णय' हैं। ब्रजवासी दास ने सन् 1770 ई. में 'ब्रजविलास' लिखा, जो विशेष लोकप्रिय है। सूरति मिश्र ने इसी समय में ब्रजभाषा के गद्य में 'बैताल पचीसी' नामक एक ग्रंथ लिखा। यही कवि गद्य के प्रथम लेखक हैं।

(3) आधुनिक हिंदी—यह काल सन् 1800 से 1900 ईसवी तक है। इसमें हिंदी गद्य की उत्पत्ति और उन्नति हुई। ब्रिटिश राज्य की स्थापना और छापे के प्रचार से इस शताब्दी में गद्य और पद्य की अनेक पुस्तकें बनीं और छपीं। साहित्य के सिवा इतिहास, भूगोल, व्याकरण, पदार्थ-विज्ञान और धर्म पर इस काल में कई पुस्तकें लिखी गईं। सन् 1857 ई. के विद्रोह के पीछे देश में शान्ति स्थापना होने पर समाचार पत्र, मासिक पत्र, नाटक, उपन्यास और समालोचना का आरंभ हुआ। हिंदी की उन्नति का एक विशेष चिह्न इस समय यह है कि इसमें खड़ी बोली (बोलचाल की भाषा) की कविता लिखी जाती है। इसके साथ ही हिंदी में संस्कृत शब्दों का निरंकुश प्रयोग भी बढ़ता जाता है। इस काल में शिक्षा के प्रचार से हिंदी की विशेष उन्नति हुई। पादरी गिलक्राइस्ट की प्रेरणा से लल्लू जी लाल ने सन् 1804 ई. में 'प्रेम-सागर' लिखा जो आधुनिक हिंदी गद्य का प्रथम ग्रंथ है। इनके बनाए और प्रसिद्ध ग्रंथ' 'राजनीति' (ब्रजभाषा के गद्य में), सभाविलास', लालचन्द्रिका' (बिहारी सतसई पर टीका), 'सिंहासन पचीसी' हैं। इस काल के प्रसिद्ध कवि पद्याकर 185, श्वाल 185, पजनेश 188, रघुराजसिंह 1844, दीनदयालगिरि 145 और हरिश्चंद्र 1940 हैं।

गद्य लेखकों में लल्लू जी लाल के पश्चात् पादरी लोगों ने कई विषयों की पुस्तकें अंग्रेजी से अनुवाद कराकर छपवाईं। इसी समय से हिंदी में ईसाई धर्म की पुस्तकों का छपना आरंभ हुआ। शिक्षा विभाग के लेखकों में पं. श्रीलाल, पं. वंशीधर वाजपेयी और राजा शिवप्रसाद हैं। शिवप्रसाद ऐसी हिंदी के पक्षपाती थे जिसे हिंदू-मुसलमान दोनों समझ सकें। इनकी रचना प्रायः उर्दू ढंग की होती थी। आर्य समाज की स्थापना से साधारण लोगों में वैदिक विषयों की चर्चा और धर्म संबंधी हिंदी की अच्छी उन्नति हुई। काशी की नागरी प्रचारिणी सभा ने हिंदी की विशेष उन्नति की है। उसने गत अर्धशताब्दी में अनेक विषयों के न्यूनाधिक सौ उत्तम ग्रंथ प्रकाशित किए हैं जिनमें सर्वांगपूर्ण हिंदी कोश और हिंदी व्याकरण मुख्य है। उसने प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों की नियमबद्ध खोज कराकर अनेक दुर्लभ ग्रंथों का भी प्रकाशन किया है। प्रयाग की हिंदी साहित्य सम्मेलन नामक संस्था हिंदी की उच्च परीक्षाओं का प्रबंध और संपूर्ण देश में उसका प्रचार राष्ट्रभाषा के रूप में कर रही है। उसने कई एक उपयोगी पुस्तकें भी प्रकाशित की है।

इस काल के और प्रसिद्ध लेखक राजा लक्ष्मणसिंह, पं. अम्बिकादत्त व्यास, राजा शिवप्रसाद और भारतेंदु हरिश्चंद्र हैं। इन सब में भारतेंदु जी का आसन ऊँचा है। उन्होंने केवल 35 वर्ष की आयु में कई विषयों की अनेक पुस्तकें लिखकर हिंदी का उपकार किया और भावी लेखकों को अपनी मातृभाषा की उन्नति का मार्ग बताया। भारतेंदु के पश्चात् वर्तमान काल में सबसे प्रसिद्ध लेखक और कवि पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं. श्रीधर पाठक, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय और बाबू मैथिलीशरण हैं, जिन्होंने उच्च कोटि के अनेक ग्रंथ लिखकर हिंदी भाषा और साहित्य का गौरव बढ़ाया है। आधुनिक काल के अन्य प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद, पं. सुमित्रानंदन पंत, बाबू जयशंकर प्रसाद, पं. सूर्यकांत त्रिपाठी, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, उपेंद्रनाथ अश्क, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, जैनेंद्रकुमार दिनकर, बच्चन, श्यामसुंदर दास, रामचंद्र शुक्ल और रामचंद्र वर्मा हैं। कवयित्रियों में श्रीमती महादेवी वर्मा और सुभद्राकुमारी चौहान प्रसिद्ध हैं।

(4) हिंदी और उर्दू–'हिंदी' नाम से जो भाषा हिंदुस्तान में प्रसिद्ध और प्रचलित है, उसके नाम, रूप और विस्तार के विषय में विद्वानों का मतभेद है। कई लोगों की राय में हिंदी और उर्दू एक ही भाषा है और कई लोगों की राय में दोनों अलग-अलग दो बोलियाँ हैं। राजा शिवप्रसाद सदृश महाशयों की युक्ति यह है कि शहरों और पाठशालाओं में हिंदू और मुसलमान कुछ सामाजिक तथा धर्मसंबंधी और वैज्ञानिक शब्दों को छोड़कर प्रायः एक ही भाषा में बातचीत करते

हैं और एक-दूसरे के विचार पूर्णतया समझ लेते हैं। इसके विरुद्ध राजा लक्ष्मण सिंह सदृश विद्वानों का पक्ष यह है कि जिन दो जातियों का धर्म, व्यवहार, विचार, सभ्यता और उद्देश्य एक नहीं है, उनकी भाषा पूर्णतया एक कैसे हो सकती है? जो हो, साधारण लोगों में आजकल हिंदुस्तानियों की भाषा हिंदी और मुसलमानों की भाषा उर्दू प्रसिद्ध है। भाषा का मुसलमानी रूपांतर केवल हिंदी में नहीं, वरन् बँगला, गुजराती, आदि भाषाओं में भी पाया जाता है। 'हिंदी भाषा की उत्पत्ति' नामक पुस्तक के अनुसार हिंदी और उर्दू हिंदुस्तानी की शाखाएँ हैं, जो पश्चिमी हिंदी का एक भेद है। इस भाषा का 'हिंदुस्तानी' नाम अंग्रेजों का रखा हुआ है और उससे बहुधा उर्दू का बोध होता है। हिंदू लोग इस शब्द को 'हिंदुस्तानी' कहते हैं और इसे बहुधा 'हिंदी बोलने वाली 'जाति' के अर्थ में प्रयुक्त करते हैं।

हिंदी कई नामों से प्रसिद्ध है, जैसे–भाषा, हिंदवी (हिंदुई), हिंदी, खड़ी बोली और नागरी। इसी प्रकार मुसलमानों की भाषा के भी कई नाम हैं। वह हिंदुस्तानी, उर्दू रेख्ता और दक्खिनी कहलाती है। इनमें से बहुत से नाम दोनों भाषाओं का यथार्थ रूप निश्चित न होने के कारण दिए गए हैं।

हमारी भाषा का सबसे पुराना नाम केवल' भाषा' है। महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी के अनुसार यह नाम भास्वती की टीका में आया है, जिसका समय संवत् 1485 है। तुलसीदास ने रामायण में 'भाषा' शब्द लिखा है, पर अपने फारसी पंचनामे में 'हिंदवी' शब्द का प्रयोग किया है। बहुधा पुस्तकों के नामों में और टीकाओं में यह शब्द आजकल प्रचलित है, जैसे' भाषा भास्कर, भाषा टीका सहित' इत्यादि। पादरी आदम साहब की लिखी और सन् 1837 में दूसरी बार छपी 'उपदेश कथा' में इस भाषा का नाम 'हिंदवी' लिखा है। इन उदाहरणों से जान पड़ता है कि हमारी भाषा का हिंदी नाम आधुनिक है। इसके पहले हिंदू लोग इसे 'भाषा' और मुसलमान लोग 'हिंदुई' या 'हिंदवी' कहते थे। लल्लू जी लाल ने प्रेम-सागर में (सन् 1804 में) इस भाषा का नाम खड़ी बोली' लिखा है, जिसे आजकल कुछ लोग न जाने क्यों 'खरी बोली' कहने लगे हैं। आजकल खड़ी बोली' शब्द केवल कविता की भाषा के लिए आता है, यद्यपि गद्य की भाषा भी खड़ी बोली' है। लल्लू जी लाल ने एक जगह अपनी भाषा का नाम रेख्ते की बोली' भी लिखा है। रेख्ता' शब्द कबीर के एक ग्रंथ में भी आया है, पर वहाँ उसका अर्थ 'भाषा' नहीं है किंतु एक प्रकार का 'छंद' है। जान पड़ता है कि फारसी अरबी शब्द मिलाकर भाषा में जो फारसी शब्द रचे गए उनका

नाम रेख्ता (अर्थात् मिला हुआ) रखा गया और फिर पीछे से यह शब्द मुसलमानों की कविता की बोली के लिए प्रयुक्त होने लगा। यह भी एक अनुमान है कि मुसलमानों में रेख्ता का प्रचार बढ़ने के कारण हिंदुओं की भाषा का नाम 'हिंदुई' (या हिंदवी) रखा गया। इसी 'हिंदवी' में, जिसे आजकल खड़ी बोली' कहते हैं, कबीर, भूषण, नागरीदास आदि कुछ कवियों ने थोड़ी-बहुत कविता की है, पर अधिकांश हिंदू कवियों ने श्रीकृष्ण की उपासना और भाषा की मधुरता के कारण ब्रजभाषा का ही उपयोग किया है।

आरंभ में हिंदुई और रेख्ता में थोड़ा ही अंतर था। अमीर खुसरो, जिनकी मृत्यु सन् 1325 ई. में हुई, मुसलमानों में सर्वप्रथम और प्रधान कवि माने जाते हैं। उनकी भाषा' से जान पड़ता है कि उस समय तक हिंदी में मुसलमानी शब्द और फारसी ढंग की रचना की भरमार न हुई थी और मुसलमान लोग शुद्ध हिंदी पढ़ते-लिखते थे। जब देहली के बाजार में तुर्क, अफगान और फारसवालों का संपर्क हिंदुओं से होने लगा और वे लोग हिंदी शब्दों के बदले अरबी, फारसी के शब्दों को बहुतायत से मिलाने लगे, तब रेख्ता ने दूसरा ही रूप धारण किया और उसका नाम 'उर्दू पड़ा। 'उर्दू शब्द का अर्थ 'लश्कर' है। शाहजहाँ के समय में उर्दू की बहुत उन्नति हुई, जिससे खड़ी बोली' की उन्नति में बाधा पड़ गई।

हिंदी और उर्दू मूल में एक ही भाषा है। उर्दू हिंदी का केवल मुसलमानी रूप है। आज भी कई शतक बीत जाने पर, इन दोनों में विशेष अंतर नहीं, पर इनके अनुयायी लोग इस नाममात्र के अंतर को वृथा ही बढ़ा रहे हैं। यदि हम लोग हिंदी में संस्कृत के और मुसलमान उर्दू में अरबी-फारसी के शब्द कम लिखें तो दोनों भाषाओं में बहुत थोड़ा भेद रह जाय और संभव है, किसी दिन दोनों समुदायों की लिपि और भाषा एक हो जाय। धर्मभेद के कारण पिछली शताब्दी में हिंदी और उर्दू के प्रचारकों में परस्पर खींचातानी शुरू हो गई। मुसलमान हिंदी से घृणा करने लगे और हिंदुओं ने हिंदी के प्रचार पर जोर दिया। परिणाम यह हुआ कि हिंदी में संस्कृत शब्द और उर्दू में अरबी-फारसी के शब्द मिल गए और दोनों भाषाएँ क्लिष्ट हो गईं। इन दिनों कई राजनीतिक कारणों से हिंदी-उर्दू विवाद और भी बढ़ रहा है और 'हिंदुस्तानी' के नाम से एक मिश्रित भाषा की रचना की जा रही है, जो न शुद्ध हिंदी होगी और न शुद्ध उर्दू।

आरंभ से ही उर्दू और हिंदी में कई बातों का अंतर भी रहा है। उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरबी-फारसी शब्दों की विशेष भरमार रहती है। इसकी वाक्य रचना में बहुधा विशेष्य विशेषण के पहले आता

है और (कविता में) फारसी के संबोधन कारक का रूप प्रयुक्त होता है। हिंदी के संबंधवाचक सर्वनाम के बदले उसमें कभी-कभी फारसी का संबंध वाचक सर्वनाम आता है। इनके सिवा रचना में और भी दो-एक बातों का अंतर है। कोई-कोई उर्दू लेखक इन विदेशी शब्दों के लिखने में सीमा के बाहर चले जाते हैं। उर्दू और हिंदी की छंद रचना में भी भेद है। मुसलमान लोग फारसी-अरबी के छंदों का उपयोग करते हैं। फिर उनके साहित्य में मुसलमानी इतिहास और दंतकथाओं के उल्लेख बहुत रहते हैं। शेष बातों में दोनों भाषाएँ प्रायः एक हैं।

कुछ लोग समझते हैं कि वर्तमान हिंदी की उत्पत्ति लल्लू जी लाल ने उर्दू की सहायता से की है। यह भूल है। 'प्रेम-सागर' की भाषा दोआब में पहले ही से बोली जाती थी। उन्होंने उसी भाषा का प्रयोग 'प्रेम-सागर' में किया और आवश्यकतानुसार उसमें संस्कृत के शब्द भी मिलाए। मेरठ के आस-पास और उसके कुछ उत्तर में यह भाषा अब भी अपने विशुद्ध रूप में बोली जाती है। वहाँ इसका वही रूप है, जिसके अनुसार हिंदी का व्याकरण बना है। यद्यपि इस भाषा का नाम 'उर्दू या खड़ी बोली' नया है, तो भी उसका यह रूप नया नहीं, किंतु उतना ही पुराना है, जितने उसके दूसरे रूप ब्रजभाषा, अवधी, बुंदेलखंडी आदि हैं। देहली में मुसलमानों के संयोग से हिंदी भाषा का विकास जरूर हुआ और इसके प्रचार में भी वृद्धि हुई। इस देश में जहाँ-जहाँ मुगल बादशाहों के अधिकारी गए वहाँ-वहाँ वे अपने साथ इस भाषा को भी लेते गए।

कोई-कोई लोग हिंदी भाषा को 'नागरी' कहते हैं। यह नाम अभी हाल का है और देवनागरी लिपि के आधार पर रखा गया जान पड़ता है। इस भाषा के तीन नाम और प्रसिद्ध हैं (1) ठेठ हिंदी, (2) शुद्ध हिंदी और (3) उच्च हिंदी। 'ठेठ हिंदी' हमारी भाषा के उस रूप को कहते हैं, जिसमें 'हिंदवी छुट् और किसी बोली की पुट न मिले।' इसमें बहुधा 'तद्भव' शब्द आते हैं। 'शुद्ध हिंदी' में तद्भव शब्दों के साथ तत्सम शब्दों का भी प्रयोग होता है, पर उसमें विदेशी शब्द नहीं आते। 'उच्च हिंदी' शब्द कई अर्थों का बोधक है। कभी-कभी प्रांतिक भाषाओं से हिंदी का भेद बताने के लिए इस भाषा को 'उच्च हिंदी' कहते हैं। अंग्रेज लोग इस नाम का प्रयोग बहुधा इसी अर्थ में करते हैं। कभी-कभी 'उच्च हिंदी' से वह भाषा समझी जाती है, जिसमें अनावश्यक संस्कृत शब्दों की भरमार की जाती है और कभी-कभी यह नाम केवल 'शुद्ध हिंदी' के पर्याय में आता है।

शैलियाँ

भाषाशास्त्र के अनुसार हिन्दी के चार प्रमुख रूप या शैलियाँ हैं–

(1) मानक हिन्दी–हिन्दी का मानकीकृत रूप, जिसकी लिपि देवनागरी है। इसमें संस्कृत भाषा के कई शब्द हैं, जिन्होंने फारसी और अरबी के कई शब्दों की जगह ले ली है। इसे शुद्ध हिन्दी भी कहते हैं। आजकल इसमें अंग्रेजी के भी कई शब्द आ गये हैं (विशेष तौर पर बोलचाल की भाषा में)। यह खड़ीबोली पर आधारित है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी।

(2) दक्खिनी–उर्दू-हिन्दी का वह रूप जो हैदराबाद और उसके आस-पास की जगहों में बोला जाता है। इसमें फारसी-अरबी के शब्द उर्दू की अपेक्षा कम होते हैं।

(3) रेख्ता–उर्दू का वह रूप जो शायरी में प्रयुक्त होता था।

(4) उर्दू–हिन्दवी का वह रूप जो देवनागरी लिपि के बजाय फारसी-अरबी लिपि में लिखा जाता है। इसमें संस्कृत के शब्द कम होते हैं और फारसी-अरबी के शब्द अधिक। यह भी खड़ी बोली पर ही आधारित है।

हिन्दी और उर्दू दोनों को मिलाकर हिन्दुस्तानी भाषा कहा जाता है। हिन्दुस्तानी मानकीकृत हिन्दी और मानकीकृत उर्दू के बोलचाल की भाषा है। इसमें शुद्ध संस्कृत और शुद्ध फारसी-अरबी दोनों के शब्द कम होते हैं और तद्भव शब्द अधिक। उच्च हिन्दी भारतीय संघ की राजभाषा है (अनुच्छेद 343, भारतीय संविधान)। यह इन भारतीय राज्यों की भी राजभाषा है–उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखण्ड, मध्य प्रदेश, उत्तरांचल, हिमाचल प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, हरियाणा और दिल्ली। इन राज्यों के अतिरिक्त महाराष्ट्र, गुजरात, पश्चिम बंगाल, पंजाब और हिन्दी भाषी राज्यों से लगते अन्य राज्यों में भी हिन्दी बोलने वालों की अच्छी संख्या है। उर्दू पाकिस्तान की और भारतीय राज्य जम्मू और कश्मीर की राजभाषा है, इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, बिहार, तेलंगाना और दिल्ली में द्वितीय राजभाषा है। यह लगभग सभी ऐसे राज्यों की सह-राजभाषा है, जिनकी मुख्य राजभाषा हिन्दी है।

सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी

भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य परस्पर विचार-विनिमय का माध्यम बनने वाली भाषा को सम्पर्क भाषा कहा जाता है। अपने राष्ट्रीय स्वरूप में ही हिन्दी पूरे भारत की सम्पर्क भाषा बनी हुई है। अपने सीमित रूप–प्रशासनिक

भाषा के रूप में हिन्दी व्यवहार में भिन्न भाषा-भाषियों के बीच परस्पर सम्प्रेषण का माध्यम बनी हुई है। सम्पूर्ण भारतवर्ष में बोली और समझी जाने वाली (बॉलीवुड के कारण) देशभाषा हिन्दी है, यह राजभाषा भी है तथा सारे देश को जोड़ने वाली सम्पर्क भाषा भी।

राजभाषा के रूप में हिंदी

संविधान सभा द्वारा लम्बी चर्चा के बाद 14 सितम्बर सन् 1949 को हिन्दी को भारत की राजभाषा स्वीकारा किया गया। इसके बाद संविधान में अनुच्छेद 343 से 351 तक राजभाषा के सम्बन्ध में व्यवस्था की गयी। इसकी स्मृति को ताजा रखने के लिये 14 सितम्बर का दिन प्रतिवर्ष हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। ध्यातव्य है कि भारतीय संविधान में राष्ट्रभाषा का उल्लेख नहीं है।

संविधान की धारा 343(1) के अनुसार भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी एवं लिपि देवनागरी है। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप (अर्थात 1, 2, 3 आदि) है। किन्तु इसके साथ संविधान में यह भी व्यवस्था की गई कि संघ के कार्यकारी, न्यायिक और वैधानिक प्रयोजनों के लिए 1965 तक अंग्रेजी का प्रयोग जारी रहे तथापि यह प्रावधान किया गया था कि उक्त अवधि के दौरान भी राष्ट्रपति कतिपय विशिष्ट प्रयोजनों के लिए हिन्दी के प्रयोग का प्राधिकार दे सकते हैं।

संसद का कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जा सकता है। परन्तु राज्यसभा के सभापति या लोकसभा के अध्यक्ष विशेष परिस्थिति में सदन के किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में सदन को संबोधित करने की अनुमति दे सकते हैं (संविधान का अनुच्छेद 120)। किन प्रयोजनों के लिए केवल हिंदी का प्रयोग किया जाना है, किन के लिए हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का प्रयोग आवश्यक है और किन कार्यों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाना है, यह राजभाषा अधिनियम 1963, राजभाषा नियम 1976 और उनके अन्तर्गत समय-समय पर राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय की ओर से जारी किए गए निर्देशों द्वारा निर्धारित किया गया है।

हिन्दी को राजभाषा के रूप में स्वीकार किये जाने का औचित्य

भारत एक बहुभाषायी देश है। भक्तिकाल में उत्तर से दक्षिण तक, पूरब से पश्चिम तक अनेक सन्तों ने हिन्दी में अपनी रचनाएँ कीं। स्वतंत्रता आन्दोलन

में हिन्दी पत्रकारिता ने महान भूमिका अदा की। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, सुभाष चन्द्र बोस, सुब्रह्मण्य भारती आदि अनेकानेक लोगों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने का सपना देखा था।

महात्मा गांधी ने 1917 में भरूच में गुजरात शैक्षिक सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में राष्ट्रभाषा की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा था कि भारतीय भाषाओं में केवल हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जिसे राष्ट्रभाषा के रूप में अपनाया जा सकता है, क्योंकि यह अधिकांश भारतीयों द्वारा बोली जाती है, यह समस्त भारत में आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक सम्पर्क माध्यम के रूंप में प्रयोग के लिए सक्षम है तथा इसे सारे देश के लिए सीखना आवश्यक है।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'राजभाषा' के निम्नलिखित लक्षण बताए थे–

(1) प्रयोग करने वालों के लिए वह भाषा सरल होनी चाहिए।

(2) उस भाषा के द्वारा भारतवर्ष का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक व्यवहार होना चाहिए।

(3) यह जरूरी है कि भारतवर्ष के बहुत से लोग उस भाषा को बोलते हों।

(4) राष्ट्र के लिए वह भाषा आसान होनी चाहिए।

(5) उस भाषा का विचार करते समय किसी क्षणिक या अल्प स्थायी स्थिति पर जोर नहीं देना चाहिए।

भारत के सन्दर्भ में, इन लक्षणों पर हिन्दी भाषा बिल्कुल खरी उतरती है।

अनुच्छेद 343 संघ की राजभाषा

(1) संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी, संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।

(2) खण्ड (1) में किसी बात के होते हुए भी, इस संविधान के प्रारम्भ से पंद्रह वर्ष की अवधि तक संघ के उन सभी शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग किया जाता रहेगा जिनके लिए उसका ऐसे प्रारम्भ से ठीक पहले प्रयोग किया जा रहा था, परन्तु राष्ट्रपति उक्त अवधि के दौरान, आदेश द्वारा, संघ के शासकीय प्रयोजनों में से किसी के लिए अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त हिंदी भाषा का और भारतीय अंकों के अंतर्राष्ट्रीय रूप के अतिरिक्त देवनागरी रूप का प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(3) इस अनुच्छेद में किसी बात के होते हुए भी, संसद उक्त पन्द्रह वर्ष की अवधि के पश्चात्, विधि द्वारा।

(क) अंग्रेजी भाषा का या

(ख) अंकों के देवनागरी रूप का,

ऐसे प्रयोजनों के लिए प्रयोग उपबंधित कर सकेगी जो ऐसी विधि में विनिर्दिष्ट किए जाएं।

अनुच्छेद 351 हिंदी भाषा के विकास के लिए निर्देश

संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिंदी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्थानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहां आवश्यक या वांछनीय हो वहां उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत से और गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।

राजभाषा अधिनियम

1963 में राजभाषा अधिनियम अधिनियमित किया गया। अधिनियम में यह व्यवस्था भी थी कि केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्यों से पत्राचार में अंग्रेजी के प्रयोग को उसी स्थिति में समाप्त किया जाएगा जबकि सभी अहिंदी भाषी राज्यों के विधान मण्डल इसकी समाप्ति के लिए संकल्प पारित कर दें और उन संकल्पों पर विचार करके संसद के दोनों सदन उसी प्रकार के संकल्प पारित करें। अधिनियम में यह भी व्यवस्था थी कि अन्तराल की अवधि में कुछ विशिष्ट प्रयोजनों के लिए केवल हिंदी का प्रयोग किया जाए और कुछ अन्य प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी और हिंदी दोनों का प्रयोग किया जाए।

सन् 1976 में राजभाषा नियम बनाए गए। इसमें भी 1987, 2007 तथा 2011 में कुछ संशोधन किए गए।

राजभाषा संकल्प, 1968

भारतीय संसद के दोनों सदनों (राज्यसभा और लोकसभा) ने 1968 में 'राजभाषा संकल्प' के नाम से निम्नलिखित संकल्प लिया-

1. संविधान के अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिंदी रहेगी और उसके अनुच्छेद 351 के अनुसार हिंदी भाषा का प्रसार, वृद्धि करना और उसका विकास करना ताकि वह भारत की सामासिक संस्कृति के सब तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम हो सके, संघ का कर्तव्य है–
   यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के प्रसार एंव विकास की गति बढ़ाने हेतु तथा संघ के विभिन्न राजकीय प्रयोजनों के लिए उत्तरोत्तर इसके प्रयोग हेतु भारत सरकार द्वारा एक अधिक गहन एवं व्यापक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा और किए जाने वाले उपायों एवं की जाने वाली प्रगति की विस्तृत वार्षिक मूल्यांकन रिपोर्ट संसद की दोनों सभाओं के पटल पर रखी जाएगी और सब राज्य सरकारों को भेजी जाएगी।
2. संविधान की आठवीं अनुसूची में हिंदी के अतिरिक्त भारत की 22 मुख्य भाषाओं का उल्लेख किया गया है और देश की शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि इन भाषाओं के पूर्ण विकास हेतु सामूहिक उपाए किए जाने चाहिए–
   यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी के साथ-साथ इन सब भाषाओं के समन्वित विकास हेतु भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के सहयोग से एक कार्यक्रम तैयार किया जाएगा और उसे कार्यान्वित किया जाएगा ताकि वे शीघ्र समृद्ध हो और आधुनिक ज्ञान के संचार का प्रभावी माध्यम बनें।
3. एकता की भावना के संवर्धन तथा देश के विभिन्न भागों में जनता में संचार की सुविधा हेतु यह आवश्यक है कि भारत सरकार द्वारा राज्य सरकारों के परामर्श से तैयार किए गए त्रि-भाषा सूत्र को सभी राज्यों में पूर्णत कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी किया जाना चाहिए–
   यह सभा संकल्प करती है कि हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा के, दक्षिण भारत की भाषाओं में से किसी एक को तरजीह देते हुए और अहिंदी भाषी क्षेत्रों में प्रादेशिक भाषाओं एवं अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी के अध्ययन के लिए उस सूत्र के अनुसार प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
4. और जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि संघ की लोक सेवाओं के विषय में देश के विभिन्न भागों के लोगों के न्यायोचित दावों और हितों का पूर्ण परित्राण किया जाए–

यह सभा संकल्प करती है कि–

(क) उन विशेष सेवाओं अथवा पदों को छोड़कर जिनके लिए ऐसी किसी सेवा अथवा पद के कर्त्तव्यों के संतोषजनक निष्पादन हेतु केवल अंग्रेजी अथवा केवल हिंदी अथवा दोनों जैसी स्थिति हो, का उच्च स्तर का ज्ञान आवश्यक समझा जाए, संघ सेवाओं अथवा पदों के लिए भर्ती करने हेतु उम्मीदवारों के चयन के समय हिंदी अथवा अंग्रेजी में से किसी एक का ज्ञान अनिवार्यत होगा और

(ख) परीक्षाओं की भावी योजना, प्रक्रिया संबंधी पहलुओं एवं समय के विषय में संघ लोक सेवा आयोग के विचार जानने के पश्चात् अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओं के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजी को वैकल्पिक माध्यम के रूप में रखने की अनुमति होगी।

राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी

प्रचलित मान्यता के विरुद्ध, हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा नहीं है, यद्यपि राष्ट्रभाषा के विषय में भारतीय संविधान में कुछ भी नहीं कहा गया है, ना ही संविधान में इसका कोई प्रावधान मिलता है। अपितु, स्वतन्त्रता आन्दोलन और स्वतन्त्रता के पश्चात्, हिन्दी भाषा की बड़ी जनसंख्या को देखते हुए, तथा प्रशासनिक सरलता हेतु हिन्दी को भारत की "राष्ट्रभाषा" के रूप में मान्यता प्रदान करने का विचार भी किया गया, एवं इसकी माँग भी उठी। परन्तु भारत की भाषायी विविधता में केवल एक भाषा की बड़ी जनसंख्या के आधार पर ऊँचा स्थान देने को असंवैधानिक और अनुचित माना गया एवं इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया गया। वर्तमान में हिन्दी भाषा संविधान की 8 वीं अनुसूची में अंकित 22 मान्य भाषाओं में से एक है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा कहने के एक हिमायती महात्मा गांधी भी थे, जिन्होंने 29 मार्च 1918 को इन्दौर में आठवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। उस समय उन्होंने अपने सार्वजनिक उद्‌बोधन में पहली बार आह्वान किया था कि हिन्दी को ही भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिये। उन्होंने यह भी कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना राष्ट्र गूँगा है। उन्होंने तो यहाँ तक कहा था

कि हिन्दी भाषा का प्रश्न स्वराज्य का प्रश्न है। आजाद हिन्द फौज का राष्ट्रगान 'शुभ सुख चैन' भी "हिन्दुस्तानी" में था। उनका अभियान गीत 'कदम-कदम बढ़ाए जा' भी इसी भाषा में था, परन्तु सुभाष चन्द्र बोस हिन्दुस्तानी भाषा के संस्कृतकरण के पक्षधर नहीं थे, अतः शुभ सुख चैन को जनगणमन के ही धुन पर, बिना कठिन संस्कृत शब्दावली के बनाया गया था।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी का विकास

पूर्वोत्तर एक अहिन्दी भाषी क्षेत्र है। यहाँ हजारों वर्षों से असमिया भाषा सम्पर्क भाषा रही है। यहाँ असमिया के साथ ही बंगला, नेपाली, मणिपुरी, अंग्रेजी, खासी, गारो, निशी, आदि, मोनपा, वांग्चु, नागामीज, मिजो, कॉकबराक, लेप्चा, भुटिया और गिनते-गिनते इन आठ राज्यों में प्रायः 200 विभिन्न भाषायें एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। अधिकांश भाषा एवं बोलियाँ तिब्बत-बर्मी परिवार की होने के कारण अलग से पहचानी जाती हैं। विविधताओं के कारण इस अंचल को 'भाषाओं की प्रयोगशाला' कहा जाता है।

पूर्वोत्तर भारत में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं जिनकी अपनी-अपनी भाषाएँ तथा बोलियाँ हैं। इनमें बोड़ो, कछारी, जयन्तिया, कोच, त्रिपुरी, गारो, राभा, देउरी, दिमासा, रियांग, लालुंग, नागा, मिजो, त्रिपुरी, जामातिया, खासी, कार्बी, मिसिंग, निशी, आदी, आपातानी, इत्यादि प्रमुख हैं। पूर्वोत्तर की भाषाओं में से केवल असमिया, बोड़ो और मणिपुरी को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान मिला है। सभी राज्यों में हिन्दी भाषा का प्रयोग अधिकांश प्रवासी हिन्दी भाषियों द्वारा आपस में किया जाता है।

पूर्वोत्तर में हिन्दी का औपचारिक रूप से प्रवेश वर्ष 1934 में हुआ, जब महात्मा गांधी 'अखिल भारतीय हरिजन सभा' की स्थापना हेतु असम आये। उस समय गड़मूड़ (माजुली) के सत्राधिकार (वैष्णव धर्मगुरू) एवं स्वतन्त्रता सेनानी श्री श्री पीताम्बर देव गोस्वामी के आग्रह पर गांधी जी सन्तुष्ट होकर 'बाबा राघव दास जी' को हिन्दी प्रचारक के रूप में असम भेजा। वर्ष 1938 में 'असम हिन्दी प्रचार समिति' की स्थापना गुवाहाटी में हुई। यह समिति आगे चलकर 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' बनी। आम लोगों में हिन्दी भाषा तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार करने हेतु-प्रबोध, विशारद, प्रवीण, आदि परीक्षाओं का आयोजन इस समिति के द्वारा होता आ रहा है। पूर्वोत्तर भारत में हिन्दी की स्थिति दिनों-दिन सबल होती जा रही है और यह सही दिशा में आगे बढ़ रहा है। हिन्दी

का प्रचार-प्रसार तथा उसकी लोकप्रियता एवं व्यावहारिकता टी.वी. (धारावाहिक, विज्ञापन), सिनेमा, आकाशवाणी, पत्रकारिता, विद्यालय, महाविद्यालय तथा उच्च शिक्षा में हिन्दी भाषा के प्रयोग द्वारा बढ़ रही है।

भारत के बाहर हिंदी का विकास

सन् 1998 के पूर्व, मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषाओं के जो आँकड़े मिलते थे, उनमें हिन्दी को तीसरा स्थान दिया जाता था। सन् 1997 में 'सैंसस ऑफ इण्डिया' का भारतीय भाषाओं के विश्लेषण का ग्रन्थ प्रकाशित होने तथा संसार की भाषाओं की रिपोर्ट तैयार करने के लिए यूनेस्को द्वारा सन् 1998 में भेजी गई यूनेस्को प्रश्नावली के आधार पर उन्हें भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन द्वारा भेजी गई विस्तृत रिपोर्ट के बाद अब विश्व स्तर पर यह स्वीकृत है कि मातृभाषियों की संख्या की दृष्टि से संसार की भाषाओं में चीनी भाषा के बाद हिन्दी का दूसरा स्थान है। चीनी भाषा के बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषा से अधिक है किन्तु चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा सीमित है। अंग्रेजी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा अधिक है किन्तु मातृभाषियों की संख्या अंग्रेजी भाषियों से अधिक है।

विश्व भाषा बनने के सभी गुण हिन्दी में विद्यमान हैं। बीसवीं सदी के अन्तिम दो दशकों में हिन्दी का अन्तरराष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। हिन्दी एशिया के व्यापारिक जगत् में धीरे-धीरे अपना स्वरूप बिम्बित कर भविष्य की अग्रणी भाषा के रूप में स्वयं को स्थापित कर रही है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिन्दी की माँग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केन्द्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों में 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिन्दी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफ-एम' सहित अनेक देश हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिन्दी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

दिसम्बर 2016 में विश्व आर्थिक मंच ने 10 सर्वाधिक शक्तिशाली भाषाओं की जो सूची जारी की है उसमें हिन्दी भी एक है। इसी प्रकार 'कोर लैंग्वेजेज' नामक साइट ने 'दस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाषाओं' में हिन्दी को स्थान दिया था। के-इण्टरनेशनल ने वर्ष 2017 के लिये सीखने योग्य सर्वाधिक उपयुक्त नौ भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिया है।

हिन्दी का एक अन्तरराष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करने और विश्व हिन्दी सम्मेलनों के आयोजन को संस्थागत व्यवस्था प्रदान करने के उद्देश्य से 11 फरवरी 2008 को विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना की गयी थी। संयुक्त राष्ट्र रेडियो अपना प्रसारण हिन्दी में भी करना आरम्भ किया है। हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा बनाये जाने के लिए भारत सरकार प्रयत्नशील है। अगस्त 2018 से संयुक्त राष्ट्र ने साप्ताहिक हिन्दी समाचार बुलेटिन आरम्भ किया है।

कम्प्यूटर क्रान्ति एवं हिंदी

कम्प्यूटर और इण्टरनेट ने पिछले वर्षों में विश्व में सूचना क्रान्ति ला दी है। आज कोई भी भाषा कम्प्यूटर (तथा कम्प्यूटर सदृश अन्य उपकरणों) से दूर रहकर लोगों से जुड़ी नहीं रह सकती। कम्प्यूटर के विकास के आरम्भिक काल में अंग्रेजी को छोड़कर विश्व की अन्य भाषाओं के कम्प्यूटर पर प्रयोग की दिशा में बहुत कम ध्यान दिया गया जिसके कारण सामान्य लोगों में यह गलत धारणा फैल गयी कि कम्प्यूटर अंग्रेजी के सिवा किसी दूसरी भाषा (लिपि) में काम ही नहीं कर सकता। किन्तु यूनिकोड (Unicode) के पदार्पण के बाद स्थिति बहुत तेजी से बदल गयी। 19 अगस्त 2009 में गूगल ने कहा की हर 5 वर्षों में हिन्दी की सामग्री में 94 प्रतिशत बढ़ोतरी हो रही है।

हिन्दी की इण्टरनेट पर अच्छी उपस्थिति है। गूगल जैसे सर्च इंजन हिन्दी को प्राथमिक भारतीय भाषा के रूप में पहचानते हैं। इसके साथ ही अब अन्य भाषा के चित्र में लिखे शब्दों का भी अनुवाद हिन्दी में किया जा सकता है। फरवरी 2018 में एक सर्वेक्षण के हवाले से खबर आयी कि इण्टरनेट की दुनिया में हिन्दी ने भारतीय उपभोक्ताओं के बीच अंग्रेजी को पछाड़ दिया है। यूथवर्क की इस सर्वेक्षण रिपोर्ट ने इस आशा को सही साबित किया है कि जैसे-जैसे इण्टरनेट का प्रसार छोटे शहरों की ओर बढ़ेगा, हिन्दी और भारतीय भाषाओं की दुनिया का विस्तार होता जाएगा।

इस समय हिन्दी में सजाल (वेबसाइट), चिट्ठे (ब्लॉग), विपत्र (ई-मेल), गपशप (चौट), खोज (वेब-सर्च), सरल मोबाइल सन्देश (एसएमएस) तथा अन्य हिन्दी सामग्री उपलब्ध हैं। इस समय अन्तरजाल पर हिन्दी में संगणन (कम्प्यूटिंग) के संसाधनों की भी भरमार है और नित नये कम्प्यूटिंग उपकरण आते जा रहे हैं। लोगों में इनके बारे में जानकारी देकर जागरूकता पैदा करने की जरूरत है ताकि अधिकाधिक लोग कम्प्यूटर पर हिन्दी का प्रयोग करते हुए अपना, हिन्दी का और पूरे हिन्दी समाज का विकास करें। शब्दनगरी जैसी नई सेवाओं का प्रयोग करके लोग अच्छे हिन्दी साहित्य का लाभ अब इण्टरनेट पर भी उठा सकते हैं।

जनसंचार एवं हिंदी

हिन्दी सिनेमा का उल्लेख किये बिना हिन्दी का कोई भी लेख अधूरा होगा। मुम्बई में स्थित "बॉलीवुड" हिन्दी फिल्म उद्योग पर भारत के करोड़ों लोगों की धड़कनें टिकी रहती हैं। हर चलचित्र में कई गाने होते हैं। हिन्दी और उर्दू (खड़ीबोली) के साथ-साथ अवधी, बम्बइया हिन्दी, भोजपुरी, राजस्थानी जैसी बोलियाँ भी संवाद और गानों में उपयुक्त होती हैं। प्यार, देशभक्ति, परिवार, अपराध, भय, इत्यादि मुख्य विषय होते हैं। अधिकतर गाने उर्दू शायरी पर आधारित होते हैं।

अब मोबाइल कम्पनियाँ ऐसे हैंडसेट बना रही हैं, जो हिन्दी और भारतीय भाषाओं को सपोर्ट करते हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हिन्दी जानने वाले कर्मचारियों को वरीयता दे रही हैं। हॉलीवुड की फिल्में हिन्दी में डब हो रही हैं और हिन्दी फिल्में देश के बाहर देश से अधिक कमाई कर रही हैं। हिन्दी, विज्ञापन उद्योग की पसन्दीदा भाषा बनती जा रही है। गूगल, ट्रांसलेशन, ट्रांस्लिटरेशन, फोनेटिक टूल्स, गूगल असिस्टेण्ट आदि के क्षेत्र में नई नई रिसर्च कर अपनी सेवाओं को बेहतर कर रहा है। हिन्दी और भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का डिजिटलीकरण जारी है।

फेसबुक और व्हाट्सएप हिन्दी और भारतीय भाषाओं के साथ तालमेल बिठा रहे हैं। सोशल मीडिया ने हिन्दी में लेखन और पत्रकारिता के नए युग का सूत्रपात किया है और कई जनान्दोलनों को जन्म देने और चुनाव जिताने-हराने में उल्लेखनीय और हैरान करने वाली भूमिका निभाई है। सितम्बर 2018 में

प्रकाशित हुई एक अमेरिकी रिपोर्ट के अनुसार हिन्दी में ट्वीट करना अत्यन्त लोकप्रिय हो रहा है। रिपोर्ट में कहा गया है कि पिछले वर्ष सबसे अधिक पुनः ट्वीट किए गये 15 सन्देशों में से 11 हिन्दी के थे। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं का बाजार इतना बड़ा है कि अनेक कम्पनियाँ अपने उत्पाद और वेबसाइटें हिन्दी और स्थानीय भाषाओं में ला रहीं हैं।

3

हिन्दी की बोलियाँ

प्रत्येक प्राणी के हृदय में परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के भावों का उदय हुआ करता है और इन भावों को दूसरों पर प्रकट करने की भी प्रत्येक प्राणी को आवश्यकता होती है। एक समय वह था जब मनुष्य एक विकसित और शक्ति सम्पन्न प्राणी नहीं था। वह जंगलों में रहता था और जंगली जानवरों का शिकार कर उन्हीं के चर्म से अपने शरीर को ढंकता था। संकेत ही उसके भाव प्रकाशन थे, जिसके चिह्न आज भी गुफाओं, कंदराओं में पाए जाते हैं परन्तु धीरे-धीरे वह आगे बढ़ा और सभ्यता की ओर चला, उसने अपनी भाव प्रकाशन प्रणाली में उन्नति की और जीभ, कंठ, आदि का सहारा लेकर उसने नई-नई ध्वनियों को जन्म दिया। ये ध्वनियाँ ही भाषा के नाम से पुकारी जाने लगीं।

प्रत्येक भाषा का विकास बोलियों से ही होता है। जब बोलियों के व्याकरण का मानकीकरण हो जाता है और उस बोली के बोलने या लिखने वाले इसका ठीक से अनुकरण करते हुए व्यवहार करते हैं तथा वह बोली भावाव्यक्ति में इतनी सक्षम हो जाती है कि लिखित साहित्य का रूप धारण कर सके तो उसे भाषा का स्तर प्राप्त हो जाता है। किसी बोली का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि सामाजिक व्यवहार और शिक्षा व साहित्य में उसका क्या महत्त्व है। अनेक बोलियाँ मिलकर किसी एक भाषा को समृद्ध करती हैं। इसी प्रकार एक समृद्ध भाषा अपनी बोलियों को समृद्ध करती है। अतः कहा जा सकता है कि भाषा व बोलियाँ परस्पर एक-दूसरे को समृद्ध करते हैं।

हिन्दी की अनेक बोलियाँ (उपभाषाएँ) हैं, भारत में कुल 18 बोलियाँ हैं, जिनमें अवधी, ब्रजभाषा, कन्नौजी, बुंदेली, बघेली, हड़ौती, भोजपुरी, हरयाणवी, राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, मालवी, नागपुरी, मैथिली, खोरठा, पंचपरगनिया, कुमाउँनी, मगही आदि प्रमुख हैं। इनमें से कुछ में अत्यंत उच्च श्रेणी के साहित्य की रचना हुई है। ऐसी बोलियों में ब्रजभाषा और अवधी प्रमुख हैं। इन बोलियों में हिन्दी की विविधता है और उसकी शक्ति भी। ये हिन्दी की जड़ों को गहरा बनाती हैं। हिन्दी की बोलियाँ और उन बोलियों की उपबोलियाँ हैं, जो न केवल अपने में एक बड़ी परंपरा, इतिहास, सभ्यता को समेटे हुए हैं वरन स्वतंत्रता संग्राम, जनसंघर्ष, वर्तमान के बाजारवाद के खिलाफ भी उसका रचना संसार सचेत है।

मोटे तौर पर हिंद (भारत) की किसी भाषा को 'हिंदी' कहा जा सकता है। अंग्रेजी शासन के पूर्व इसका प्रयोग इसी अर्थ में किया जाता था। पर वर्तमान काल में सामान्यत: इसका व्यवहार उस विस्तृत भूखंड की भाषा के लिए होता है, जो पश्चिम में जैसलमेर, उत्तर पश्चिम में अंबाला, उत्तर में शिमला से लेकर नेपाल की तराई, पूर्व में भागलपुर, दक्षिण पूर्व में रायपुर तथा दक्षिण-पश्चिम में खंडवा तक फैली हुई है। हिंदी के मुख्य दो भेद हैं–पश्चिमी हिंदी तथा पूर्वी हिंदी।

भाषा और बोली

भाषा और बोली के बीच की भेदक रेखा "परस्पर बोधगम्यता" के अनुसार निर्धारित की जाती है। इस बोधगम्यता के चार स्तर होते हैं–

(1) पूर्ण बोधगम्यता, (2) अपूर्ण बोधगम्यता, (3) आंशिक बोधगम्यता, (4) शून्य बोधगम्यता

बोधगम्यता के इन्हीं स्तरों के आधार पर व्यक्ति बोली, उपबोली, बोली तथा भाषा की पृथक् कोटियाँ वर्गीकृत होती हैं। पूर्ण बोधगम्यता एक बोली क्षेत्र के रहनेवाले व्यक्तियों की प्राय: समान वाक्प्रवृत्ति का संकेत देती है।

वर्णनात्मक भाषा विज्ञान की आधुनिकतम मान्यता यह है कि प्रत्येक व्यक्ति की वाक्प्रवृत्ति पूर्णतया समान नहीं होती। किंतु यह असमानता इतनी स्थूल नहीं होती कि वे एक-दूसरे की बात न समझ सकें। इस प्रकार व्यक्तिगत वाक्प्रवृत्तियों का समन्वित रूप व्यक्ति बोली है और व्यक्ति बोलियों का समन्वित रूप उपबोली तथा उपबोलियों का समन्वित रूप बोली है। इसी प्रकार बोलियों की समन्वित इकाई भाषा है। उपर्युक्त धारणा से यह स्पष्ट है कि व्यक्ति

बोली और भाषा के बीच बोधगम्यता के ही विविध स्तर सक्रिय होते हैं। भाषा के अध्ययन में अधिकतर उपबोली के स्तर तक विचार किया जाता है किंतु बोली के संदर्भ में व्यक्ति बोलियों का भी महत्त्व होता है। भाषीय स्तर पर व्यक्ति बोली एवं उपबोली का एक युग्म होता है और बोली तथा भाषा का दूसरा। जिस प्रकार बोली और भाषा या भाषाओं के सीमावर्ती क्षेत्रों में रूप वैशिष्ट्य होते हुए भी एक-दूसरे को समझना सरल होता है, उसी प्रकार या उससे भी अधिक बोधगम्यता बोली या उपबोली की सीमाओं पर होती है। सीमावर्ती क्षेत्रों में पाई जानेवाली ऐसी बोधगम्यता के कारण ही भाषा और बोली या बोली या उपबोली के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती।

एक भाषीय क्षेत्र में स्थानीय भेदों के अध्ययन को ब्लूमफील्ड ने बोली भूगोल का नाम देते हुए उसे तुलनात्मक विधा की उपलब्धियों का पूरक भी कहा है। बोलियों के अध्ययन को बोली एटलस के रूप में प्रस्तुत करना सर्वाधिक प्रचलित है। बोली क्षेत्र के ये एटलस मानचित्रों के ऐसे संकलन हैं जिनपर भाषीय रूप वैशिष्ट्यों को स्थानीय वितरण के आधार पर समरूप रेखाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। विस्तृत रूप वैशिष्ट्यों को इन मानचित्रों पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। केवल भेदक रूप ही प्रदर्शित किए जाते हैं। इसीलिए कितने ही लोग बोली व्याकरण, बोलियों का सीमा-निर्धारण, कोश-संकलन और तुलनात्मक, ऐतिहासिक निष्कर्षों को ही बोली विज्ञान का साध्य मानते हैं। एटलसों को भाषा भूगोल से संबद्ध मानकर उसे बोली विज्ञान से पृथक् कर देते हैं।

समरूप रेखाओं द्वारा विभक्त क्षेत्र तीन होते हैं–

(1) अवशेष क्षेत्र–ऐसे क्षेत्र जहाँ के रहनेवाले आर्थिक दृष्टि से अविकसित होते हैं और जहाँ की भौगोलिक स्थिति ऐसी हो कि आसानी से पहुँच पाना कठिन हो, उन क्षेत्रों में प्राचीनतम रूप मिल सकते हैं। दूसरे लोग इन स्थानों के रूपों को प्रायः हेय मानते हैं।

(2) आकर्षण क्षेत्र–इन क्षेत्रों में आर्थिक या औद्योगिक दृष्टि से कोई महत्त्वपूर्ण केंद्र होता है। यही केंद्र नए रूपों की उद्‌भावना का स्रोत होता है। इसलिए समरूप रेखाओं का झुकाव भी केंद्राभिमुख होता है।

(3) संक्रमण क्षेत्र–ऐसे क्षेत्रों में रूपों का एकविध प्रयोग नहीं मिलता। समरूप रेखाएँ एक-दूसरे को काटती हुई जाती हैं या उनके बीच का अंतर अधिक होता है।

आकर्षण क्षेत्रों के बारे में यह कहा जा सकता है कि इनके रूप इस क्षेत्र में बहुत पहले से प्रचलित रहे होंगे और उन्होंने अपने प्रतिद्वंद्वी शब्दों को व्यवहार की स्थिति से निकालकर पूरे क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया होगा। अवशेष क्षेत्र के रूप सबसे पुराने माने-जाते हैं और संक्रमण क्षेत्रवाले रूप इस बात का संकेत देते हैं कि किसी व्यवहारगत पुराने रूप के ऊपर किसी नए रूप को प्राथमिकता मिल रही है।

भारोपीय भाषा परिवार

संसार के भाषा परिवारों में कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण भारोपीय भाषा परिवार की बोली गिलगिती (गिलगित) और कश्मीरी भाषा की किश्टवारी (किश्टवार क्षेत्र), पोंगुली (जम्मू), भुजवाली (दोड़ा जिला), सिराजी (जम्मू कश्मीर) विशेषत: उल्लेख्य हैं। यद्यपि मूल लहँदा तथा सिंधी क्षेत्र पाकिस्तान में चला गया है, फिर भी विस्थापितों के रूप में लहँदा की 14 बोलियों में मुल्तानी तथा पुच्छी (जम्मू) एवं सिंधी की सात बोलियों में कच्छी (कच्छ) प्रमुखत: से पाई गई।

मराठी की 65 बोलियाँ हैं। दक्षिण महाराष्ट्र, कर्नाटक, केरल, में (उत्तर) बोली जानेवाली कोंकणी वस्तुत: स्वतंत्र भाषा है, मराठी की बोली, जैसा गियर्सन ने कहा था, नहीं है। कोंकणी की 16 बोलियों में चेट्टि भाषा कोंकणी (केरल), गोअनीज (गोआ) एवं कुदबी प्रमुख हैं। मराठी के अंतर्गत हलबी (बस्तर), कमारी (रायपुर), कटिया (छिंदवाड़ा, बेतुल) कटकारी (कोलाबा), कोष्ठी मराठी (कोष्ठी जाति द्वारा आंध्र, म. प्र. प्रमुखत: नागपुर एवं भंडारा में प्रयुक्त), क्षत्रिय मराठी (केवल मैसूर राज्य), छिंदवाड़ा शिओनी ठाकरी (कोलाबा) बोलियाँ उल्लिखित हैं। शेष करहंडी, मिरगानी, भंडारी प्रभृति उल्लेख्य हैं।

उड़ीसा की 24 बोलियों में भमी (प्रमुखत: बस्तर), भुइया (सुंदरगढ़, धेनकनाल, केओंझर), रेल्ली (आंध्र) पइड़ी (आंध्र) प्रमुख हैं। कटक की कटकी, आंध्र सीमा पर गंजामी, संभलपुर में संभलपुरी भी उल्लेख हैं।

बंगाली के अंतर्गत जन. में उल्लिखित 15 बोलियों में चकमा (मीजो पहाड़ियाँ, त्रिपुरा, असम,) किसनगँजिया (बिहार), राजवंशी (जलपाईगुड़ी) प्रमुख हैं। गियर्सन ने सरकी, खड़ियाठार, कोच आदि भी गिनाई हैं। जन. में असम की कोई बोली नहीं वर्णित है, किंतु गियर्सन ने कछार के हिंदुओं की बिशुनपुरिया का उल्लेख किया था।

हिंदी क्षेत्र में बिहारी वर्ग में 35 मातृ बोलिया हैं जिनमें (1) भोजपुरी (पूर्वी फैजाबाद, दक्षिणी पूर्वी मिर्जापुर, वाराणसी, पूर्वी जौनपुर, गाजीपुर, बलिया, बस्ती का पूर्वी भाग, गोरखपुर, देवरिया, सारन, शाहाबाद), (2) मैथिली (तिरहुतिया) मिथिला प्रदेश (चंपारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, भागलपुर, दरभंगा, पूर्णिया, सहरसा, माल्टा, तथा दिनाजपुर), (3) मगही (गया, पटना, तथा संथाल परगना में अंशतः), (4) नागपुरी(झारखंड के लातेहार, छात्रा, पालामु, लोहारदागा, गुमला, राचीं, सिमडेगा जिले, छत्तीसगढ़ के जाशपुर, उड़ीसा के सुनदरगड़ जिला) प्रमुख बोलियां हैं।

मैथिली की उपबोली सिराजपुरी पूर्णिया में बोली जाती है। पूर्वी हिंदी की अवधी एवं छत्तीसगढ़ी प्रमुख बोलियाँ हैं। अवधी लखीमपुर, सीतापुर, लखनऊ, उन्नाव, फतेहपुर बहराइच, बाराबंकी, रायबरेली, गोंडा, फैजाबाद, सुलतानपुर, प्रतापगढ़, जौनपुर, मिर्जापुर जिलों की बोली है। इसमें बाँदा भी गिना जा सकता है। बधेली रीवा, सतना, शहडोल के अतिरिक्त गियर्सन के अनुसार दमोह, जबलपुर, मांडला, बालाघाट तक फैली है। अवधी की मरारी, पोआली तथा परदेशी महाराष्ट्र भी बोलियाँ हैं। छत्तीसगढ़ी छत्तीसगढ़, रायपुर, रायगढ़ दुर्ग, बिलासपुर, सरगुजा, बस्तर में (डॉ. उदयनारायण के अनुसार) काकेर, कबर्धा चाँदा उत्तर पूर्व में भी बोली जाती है। सरगुजिया सरगुजा में गियर्सन के अनुसार कोरिया उदयपुर में भी, ग्वारो उपबोली असम में, तथा लरिया उड़िसा में बोली जाती है।

पश्चिमी हिंदी

(1) कौरवी खड़ी बोली (रामपुर, मुरादाबाद, बिजनौर, मेरठ, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून–मैदानी भाग, अंबाला, कलसिया, आदि),

(2) बांगरू (द. पंजाब के करनाल, रोहतक, हिसार, पटियाला, का कुछ भाग, नाभा, जींद),

(3) ब्रजभाषा (गियर्सन के अनुसार मथुरा, अलीगढ़, आगरा, एटा, बुलंदशहर, मैनपुरी, बदायूँ, बरेली, गुड़गाँव जिला पूर्वी पट्टी, भरतपुर, धौलपुर, करौली, जयपुर पूर्व,)।

(4) कन्नौजी बोली ब्रजभाषा के अंतर्गत है, अतः पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रुखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर भी ब्रजभाषा में गिने जा सकते हैं। नवीनतम शोध के अनुसार

(5) बुंदेली झाँसी, हमीरपुर, जालौन, छतरपुर, छीकमगढ़ दतिया, भिंड, ग्वालियर, मुरैना, शिवपुरी, गुना, सागर, पन्ना, दमोह, सिवनी, छिंदवाड़ा, नरसिंहपुर, रायसेन, विदिशा, होशंगाबाद, तथा बेतूल जिलों में बोली जाती है।

पूरे राजस्थान में राजस्थानी बोली 71 बोलियों सहित फैली है। जन. के अनुसार इनमें बागरी राजस्थानी (गंगानगर, सीकर,) बंजारी (महाराष्ट्र मैसूर), धुघारी (जयपुर, सीकर, सवाई माधोपुर, टोंक), लमनी (लंबडी) (आंध्र), गोजरी (जम्मू कश्मीर), हाड़ौती (बूँदी, कोटा, झालावार) खैसरी (बूंदी भीलवारा), मालवा (मालवा में–मंदसौर, उज्जैन, इंदौर, देवास, शाजपुर, रतलाम, चित्तोड़गढ़), माराड़ी (मारवाड़ में गंगानगर, बीकानेर, चूरू, झुंझुनू, सीकर, अजमेर, जैसलमेर, जोधपुर, नागौर, पाली, बाड़मेर, जालोर, सिरोही), मेवाड़ी (मेवाड़ भीलवड़ा, उदयपुर, चितौरगढ़) शेखावटी (झुंझुनू), प्रमुख बोलियाँ हैं। निमाड़ी धार तथा निमाड़ की बोली हैं। ग्रि0 में भीली तथा खानदेशी मिश्रित बोलियाँ भाषा के रूप में पृथक वर्णित हैं। जन. के अनुसार भीलो की 36 उपबोलियों में बारेल (छोटा उदयपुर स्टेट) (भिलाली भीलो, भीलोड़ो) (बरार, खानदेश, म. प्र. एवं महाराष्ट्र का कुछ भाग), गमती गवित (गुजरात), कोकना (कुन्ना) (बड़ौदा, सूरत, नासिक), बागड़ी (मेवाड़ के आस-पास), पावरी प्रमुख है खान देश की अहीरनी खानदेश में प्रयुक्त है।

86 बोलियों के समूह वाले पहाड़ी वर्ग की पश्चिमी पहाड़ी के अंतर्गत भद्रवाही (जम्मू कश्मीर) सिरमौरी, भरमौर, मंडेआली, चमेआलो, चुरही (पाँचों हिमांचल प्रदेश) जौनसारी (जानसार बाबर), कुलुई (कुल्लु) उपबोलियाँ हैं। पूर्वी पहाड़ी में नेपाली तथा मध्य पहाड़ी में कुमाउनी (अल्मोड़ा, नैनीताल), गढ़वाली (गढ़वाल, मसूरी) प्रमुख हैं। वस्तुतः इनमें प्राकृतिक दूरी है। जन. में गुजराती का 27 बोलियों में धिसादी (आंध्र महाराष्ट्र में लाहारों द्वारा प्रयुक्त) कोल्ची (सूरतक में कोल्वा जाति द्वारा प्रयुक्त), पारसी (महाराष्ट्र सौराष्ट्र (मद्रास), सौराष्ट्री (गुजरात) प्रमुख वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त गामड़िया, चरोतरी, काठियावाड़ी भी उल्लेख है।

पंजाबी की 29 बोलियों में जन. के अनुसार बिलासपुरी (कल्हरी) (विलासपुर, मंगल, होशीयारपुर), डोगरी (जम्मू एवं पंजाब के कुछ भाग), कांगरी (कांगड़ा) राठी जालंधरी, फिरोजपुरी, पट्टियानी (बीकानेर, फिरोजपुर) माँझी (अमृतसर के आस-पास) प्रमुख बोलियाँ हैं।

द्रविड़ भाषा परिवार

भारत में संख्या की दृष्टि से दूसरे भाषा-परिवार द्रविड़ में जन. में 161 मातृभाषाएँ गिनाई गई हैं जिनमें 104 को संविधानगत तमिल, तेलुगू, कन्नड़ मलयालम चार भाषाओं के संदर्भ में विवेचित किया जा सकता है। तमिल की 22 बोलियों में येरुकुल आंध्र में, कैकादी महाराष्ट्र में (ग्रि. के अनुसार दक्षिण में) कोरवा पहले मद्रास में, पट्टापु भाषा आंध्र में प्रमुख बोलियों के रूप में बोली जाती हैं। ग्रि. के अनुसार सालेवारी (चाँदा), बेराडी (बेलग्राम) भी प्रधान बोलियाँ हैं। कन्नड़ की 32 मातृ बोलियों में प्रमुखतम बडगा (नीलगिरि, मैसूर) है। होलिया प्रमुखतः-महाराष्ट्र में, गतार कन्नड़ म. प्र. में, मोंटाडेंत्यी मद्रास में पाई गई हैं। कोरचा बोली कोरवा की पर्याय नहीं है, जैसा ग्रि. में वर्णित है, अपितु यह मैसूर में बोली जानेवाली, कन्नड़ की प्रमुख बोली है। मलयालम की 14 बोलियों में येरव जाति की येरव बोली मैसूर में, पनिया मद्रास तथा केरल में बोली जाती है। नागरी मलयालम त्रिचूर जिले के संस्कृतज्ञ ब्राह्मणों की मलयालम है। शेष बोलियाँ गौण हैं। तुलू कोर्गी (कोडगू) (कुर्ग), टोडा, कोटा, (मद्रास) चार भाषाओं की भी कई बोलियाँ हैं। कोर्गा तुलू की प्रधान बोली है। ये मद्रास, मैसूर, महाराष्ट्र में बिखरी हैं।

इसके अतिरिक्त उत्तर द्रविड़ समूह की कुरुख (ओराँव) भाषा में वाँगरी नागेसियाँ (अंतिम दोनो बंगाल में) तथा माल्टी भाषा की सौरिया (म. प्र.) प्रमुख है। नवीन शोधों के आधार पर कहा जा सकता है कि गोडी, कुई (उड़िसा में कोरापत), खोंड़ (कोंध) (उड़िसा), कोया (आंध्र), पार्जी (म. प्र.), कोलामी (आंध्र.) कोंडा भाषाएँ सिद्ध हुई हैं। ग्रि. में ये बोलियों के रूप में वर्णित हैं। गोंडी की डोटली, भरिया (म. प्र. बिहार, उड़िसा की सीमाएँ) कुई की पेंगु (उड़िसा), कोलामी की माने (आध्र में अदीलाबाद) एवं नइकी (दादर हवेली) बोलियाँ उल्लेख हैं।

तिब्बत-चीनी भाषा परिवार

तिब्बत-चीनी परिवार की भाषाएँ लद्दाख से लेकर असम से पूर्व तक उत्तुंग हिमानी शिखरों, बीहड़ जंगलों, घाटियों में दूर तक फैली हुई हैं। जन. में 226 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) गिनाई गई हैं। (1) तिब्बत भोटिया वर्ग में 33 मातृ बोलियाँ हैं जिनमें भोटिया, बाल्ती, भूटानी, लाहुली, स्पीती, कागेती

प्रमुख हैं। कई एक का नामकरण स्थान-विशेष के आधार पर हुआ है। (2) हिमालय वर्ग की 24 मातृ बोलियों में मलानी प्रमुख बोलीयुत कंसी, कनौरी (5 बोलियाँ) राई टामंग, लोचा प्रमुख भाषा (बोलियाँ) हिमाचल प्रदेश में बोली जाती है। असम शाखा के नेफा वर्ग में 24 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) हैं जिनमें आका, हासो, दफ्का (दो बोलियाँ) अबोर (मियोंग प्रमुख बोली सहित कुल 14), मीरी, (प्रमुख बोली मीशियांग) तथा मिश्मी प्रमुख मातृभाषाएँ (बोलियाँ) हैं। असम-बर्मी शाखा के (1) बोदो वर्ग में 40 मातृभाषाएँ (बोलियाँ) हैं, जिनमें बोड़ो सहित चार बोलियाँ कचारी, दिमासा, गारो (अचिक दालू, प्रमुख), त्रिपुरी (जयंतिया प्रमुख बोली) मिकीर, राब्भा (रँगदनियाँ प्रमुख बोली), उल्लेखनीय हैं और जो असम में बिखरी हुई हैं। (2) नाना वर्ग की कुल 47 मातृभाषाओं (बोलियाँ) में कीन्याक (तीन बोलियाँ), आओ (मोक्सेन प्रमुख), अंगामी (चकू प्रमुख), सेमा, टाँगखुल आदि नागालैंड तथा नेफा में बोली जाती हैं। (3) कूकी-चिनवर्ग की 61 मातृभाषाओं (बोलियों) में प्रमुख भाषा मनीपुरी (मेथेई) की विशुनपरिया बोली त्रिपुरा तथा कछार में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त वैसें, खोंगजई, हालम कूकी अनिश्चित भाषाएँ (बोलियाँ) असम तथा नागा पहाड़ियों में है। (4) बर्मा वर्ग की अर्कनीज भाषा क मोध प्रमुख बोली त्रिपुरा में बोली जाती है।

आस्ट्रिक भाषा परिवार

आस्ट्रिक भाषा परिवार की मॉन मेर शाखा में 7 तथा मुंडा शाखा में 58, कुल मिलाकर 65 मातृभाषाएँ जन. में वर्णित हैं। खासी भाषा की जयंतिया तथा प्नार बोलियाँ खासी तथा जयंतिया पहाड़ियों में बोली जाती हैं। खेरवारी भाषा के अंतर्गत संथाली (बंगाल, बिहार उड़िसा की सीमाएँ), मुंडारी, हो, कुरुख, कोर्कू (कूर्कू) (सतपुड़ा पहाड़, महादेव पहाड़ियाँ), भूमिज (सिंहभूमि, मानभूमि), गदबा (मद्रास की उत्तरी पूर्वी पहाड़ियाँ) बोलियाँ गिनाई गई हैं। वस्तुतः इन्हें भाषाएँ कहना, जैसा जन. में है, अधिक उपयुक्त होगा, क्योंकि बोधगम्यता के सिद्धांत के आधार पर उनमें अत्यधिक दूरी आ गई है। मुंडा शाखा की शेष बोलियाँ हैं–मकारी (महाराष्ट्र म. प्र.), कोडा (कोरा) संबंधित मिरधा (पं. बंगाल), बइरी, लोढ़ाजो खरिया से संबंधित हैं, (प. बंगाल), निकोबारी (अंडमान निकोबार), तथा कोल भाषाएँ।

पश्चिमी और पूर्वी हिंदी

जैसा ऊपर कहा गया है, अपने सीमित भाषाशास्त्रीय अर्थ में हिंदी के दो उपरूप माने जाते हैं–पश्चिमी हिंदी और पूर्वी हिंदी।

पश्चिमी हिन्दी

पश्चिमी हिंदी का विकास शौरसैनी अपभ्रंश से हुआ है। इसके अंतर्गत पाँच बोलियाँ हैं–खड़ी बोली, हरियाणी, ब्रज, कन्नौजी और बुंदेली। खड़ी बोली अपने मूल रूप में मेरठ, रामपुर, मुरादाबाद, सहारनपुर, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, बागपत के आस-पास बोली जाती है। इसी के आधार पर आधुनिक हिंदी और उर्दू का रूप खड़ा हुआ। बांगरू को जाटू या हरियाणवी भी कहते हैं। यह पंजाब के दक्षिण पूर्व में बोली जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार बांगरू खड़ी बोली का ही एक रूप है जिसमें पंजाबी और राजस्थानी का मिश्रण है। ब्रजभाषा मथुरा के आस-पास ब्रजमंडल में बोली जाती है। हिंदी साहित्य के मध्ययुग में ब्रजभाषा में उच्च कोटि का काव्य निर्मित हुआ। इसलिए इसे बोली न कहकर आदरपूर्वक भाषा कहा गया। मध्यकाल में यह बोली संपूर्ण हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के रूप में मान्य हो गई थी। पर साहित्यिक ब्रजभाषा में ब्रज के ठेठ शब्दों के साथ अन्य प्रांतों के शब्दों और प्रयोगों का भी ग्रहण है। कन्नौजी गंगा के मध्य दोआब की बोली है। इसके एक ओर ब्रजमंडल है और दूसरी ओर अवधी का क्षेत्र। यह ब्रजभाषा से इतनी मिलती-जुलती है कि इसमें रचा गया जो थोड़ा बहुत साहित्य है वह ब्रजभाषा का ही माना जाता है। बुंदेली बुंदेलखंड की उपभाषा है। बुंदेलखंड में ब्रजभाषा के अच्छे कवि हुए हैं जिनकी काव्य भाषा पर बुंदेली का प्रभाव है।

पूर्वी हिन्दी

पूर्वी हिंदी की तीन शाखाएँ हैं–अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी। अवधी अर्धमागधी प्राकृत की परंपरा में है। यह अवध में बोली जाती है। इसके दो भेद हैं–पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी। अवधी को बैसवाड़ी भी कहते हैं। तुलसी के रामचरितमानस में अधिकांशतः पश्चिमी अवधी मिलती है और जायसी के पदमावत में पूर्वी अवधी। बघेली बघेलखंड में प्रचलित है। यह अवधी का ही एक दक्षिणी रूप है। छत्तीसगढ़ी पलामू (झारखण्ड) की सीमा से लेकर दक्षिण में बस्तर तक और पश्चिम में बघेलखंड की सीमा से उड़ीसा की सीमा तक

फैले हुए भूभाग की बोली है। इसमें प्राचीन साहित्य नहीं मिलता। वर्तमान काल में कुछ लोक साहित्य रचा गया है। बिहारी, राजस्थानी बिहारी हिंदी के अंतर्गत मगही, भोजपुरी, आदि बोलियां आती हैं।

बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिन्दी

हिंदी प्रदेश की तीन उपभाषाएँ और हैं–बिहारी, राजस्थानी और पहाड़ी हिंदी। बिहारी की तीन शाखाएँ हैं–भोजपुरी, मगही और मैथिली। बिहार के एक कस्बे भोजपुर के नाम पर भोजपुरी बोली का नामकरण हुआ। पर भोजपुरी का प्रसार बिहार से अधिक उत्तर प्रदेश में है। बिहार के शाहाबाद, चंपारन और सारन जिले से लेकर गोरखपुर तथा बारस कमिश्नरी तक का क्षेत्र भोजपुरी का है। भोजपुरी पूर्वी हिंदी के अधिक निकट है। हिंदी प्रदेश की बोलियों में भोजपुरी बोलनेवालों की संख्या सबसे अधिक है। इसमें प्राचीन साहित्य तो नहीं मिलता पर ग्रामगीतों के अतिरिक्त वर्तमान काल में कुछ साहित्य रचने का प्रयत्न भी हो रहा है। मगही के केंद्र पटना और गया हैं। इसके लिए कैथी लिपि का व्यवहार होता है। पर आधुनिक मगही साहित्य मुख्यत: देवनागरी लिपि में लिखी जा रही है। मगही का आधुनिक साहित्य बहुत समृद्ध है और इसमें प्राय: सभी विधाओं में रचनाओं का प्रकाशन हुआ है।

मैथिली एक स्वतंत्र भाषा है, जो संस्कृत के करीब होने के कारण हिंदी से मिलती-जुलती लगती है। परन्तु, मैथिली हिंदी से अधिक बांग्ला के निकट है।

मैथिली गंगा के उत्तर में दरभंगा के आस-पास प्रचलित है। इसकी साहित्यिक परंपरा पुरानी है। विद्यापति के पद प्रसिद्ध ही हैं। मध्ययुग में लिखे मैथिली नाटक भी मिलते हैं। आधुनिक काल में भी मैथिली का साहित्य निर्मित हो रहा है।

मैथिली भाषा भारत और नेपाल के संविधान में राजभाषा के रूप में भी दर्ज है। नेपाल में दूसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा मैथिली है।

राजस्थानी का प्रसार पंजाब के दक्षिण में है। यह पूरे राजपूताने और मध्य प्रदेश के मालवा में बोली जाती है। राजस्थानी का संबंध एक ओर ब्रजभाषा से है और दूसरी ओर गुजराती से। पुरानी राजस्थानी को डिंगल कहते हैं जिसमें चारणों का लिखा हिंदी का आरंभिक साहित्य उपलब्ध है। राजस्थानी में गद्य साहित्य की भी पुरानी परंपरा है। राजस्थानी की चार मुख्य बोलियाँ या विभाषाएँ

हैं–मेवाती, मालवी, जयपुरी और मारवाड़ी। मारवाड़ी का प्रचलन सबसे अधिक है। राजस्थानी के अंतर्गत कुछ विद्वान् भीली को भी लेते हैं।

पहाड़ी उपभाषा राजस्थानी से मिलती-जुलती हैं। इसका प्रसार हिंदी प्रदेश के उत्तर हिमालय के दक्षिणी भाग में नेपाल से शिमला तक है। इसकी तीन शाखाएँ हैं–पूर्वी, मध्यवर्ती और पश्चिमी। पूर्वी पहाड़ी नेपाल की प्रधान भाषा है जिसे नेपाली और परंबतिया भी कहा जाता है। मध्यवर्ती पहाड़ी कुमायूँ और गढ़वाल में प्रचलित है। इसके दो भेद हैं–कुमाउँनी और गढ़वाली। ये पहाड़ी उपभाषाएँ नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। इनमें पुराना साहित्य नहीं मिलता। आधुनिक काल में कुछ साहित्य लिखा जा रहा है। कुछ विद्वान् पहाड़ी को राजस्थानी के अंतर्गत ही मानते हैं। पश्चिमी पहाड़ी हिमाचल प्रदेश में बोली जाती है। इसकी मुख्य उपबोलियों में मंडियाली, कुल्लवी, चाम्बियाली, क्योंथली, कांगड़ी, सिरमौरी, बघाटी और बिलासपुरी प्रमुख हैं।

प्रयोग-क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण

हिन्दी भाषा का भौगोलिक विस्तार काफी दूर-दूर तक है जिसे तीन क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है–

(क) हिन्दी क्षेत्र–हिन्दी क्षेत्र में हिन्दी की मुख्यत: सत्रह बोलियाँ बोली जाती हैं, जिन्हें पाँच बोली वर्गों में इस प्रकार विभक्त कर के रखा जा सकता है–पश्चिमी हिन्दी, पूर्वी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी और बिहारी हिन्दी।

(ख) अन्य भाषा क्षेत्र–इनमें प्रमुख बोलियाँ इस प्रकार हैं–दक्खिनी हिन्दी (गुलबर्गी, बीदरी, बीजापुरी तथा हैदराबादी आदि), बम्बइया हिन्दी, कलकतिया हिन्दी तथा शिलंगी हिन्दी (बाजार-हिन्दी) आदि।

(ग) भारतेतर क्षेत्र–भारत के बाहर भी कई देशों में हिन्दी भाषी लोग काफी बड़ी संख्या में बसे हैं। सीमावर्ती देशों के अलावा यूरोप, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, अफ्रीका, रुस, जापान, चीन तथा समस्त दक्षिण पूर्व व मध्य एशिया में हिन्दी बोलने वालों की बहुत बड़ी संख्या है। लगभग सभी देशों की राजधानियों के विश्वविद्यालयों में हिन्दी एक विषय के रूप में पढ़ी-पढ़ाई जाती है। भारत के बाहर हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ–ताजुन्बेकी हिन्दी, मारिशसी हिन्दी, फीजी हिन्दी, सूरीनामी हिन्दी आदि हैं।

खड़ी बोली

खड़ी बोली वह भाषा है, जो मोटे तौर पर आज की मानक हिन्दी का एक पूर्वरूप है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से इसे आदर्श (स्टैंडर्ड) हिन्दी, उर्दू तथा हिन्दुस्तानी की आधार स्वरूप बोली होने का गौरव प्राप्त है। किन्तु 'खड़ी बोली' से आपस में मिलते-जुलते अनेक अर्थ निकाले जाते हैं।

खड़ी बोली, हिन्दी का वह रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिन्दी भाषा की सृष्टि हुई, इसी तरह उसमें फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। खड़ी बोली से एक तात्पर्य उस बोली से है जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो। ठेठ हिन्दी, परिनिष्ठित पश्चिमी हिन्दी का एक रूप।

खड़ी बोली निम्नलिखित स्थानों के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है—मेरठ, बिजनौर, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादून के मैदानी भाग, अम्बाला, कलसिया और पटियाला के पूर्वी भाग, रामपुर और मुरादाबाद। खड़ी बोली क्षेत्र के पूर्व में ब्रजभाषा, दक्षिण-पूर्व में मेवाती, दक्षिण-पश्चिम में पश्चिमी राजस्थानी, पश्चिम में पूर्वी पंजाबी और उत्तर में पहाड़ी बोलियों का क्षेत्र है। मेरठ की खड़ी बोली आदर्श खड़ी बोली मानी जाती है जिससे आधुनिक हिन्दी भाषा का जन्म हुआ, वही दूसरी और मुजफ्फरनगर व सहारनपुर बागपत में खड़ी बोली में हरयाणवी की झलक देखने को मिलती है। बाँगरू, जाटकी या हरियाणवी एक प्रकार से पंजाबी और राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली ही हैं, जो दिल्ली, करनाल, रोहतक, हिसार और पटियाला, नाभा, झींद के ग्रामीण क्षेत्रों में बोली जाती है।

खड़ी से 'खरी' का अर्थ लगाया जाता है, अर्थात् शुद्ध अथवा ठेठ हिन्दी बोली। उस समय जबकि हिन्दुस्तान में अरबी-फारसी या हिन्दुस्तानी शब्द मिश्रित उर्दू भाषा का चलन था, या अवधी या ब्रज भाषा का। ठेठ या शुद्ध हिन्दी का चलन नहीं था। लगभग 18वीं शताब्दी के आरम्भ के समय कुछ हिन्दी गद्यकारों ने ठेठ हिन्दी बोली में लिखना शुरू किया। इसी ठेठ हिन्दी को 'खरी हिन्दी' या 'खड़ी हिन्दी' कहा गया। शुद्ध अथवा ठेठ हिन्दी बोली या भाषा को उस समय साहित्यकारों द्वारा खरी या खड़ी बोली के नाम से सम्बोधित किया गया था।

खड़ी बोली वह बोली है जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो। ठेठ हिन्दी। आज की राष्ट्रभाषा हिन्दी का पूर्व रूप। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिन्दी का एक रूप है।

'खड़ी बोली' (या खरी बोली) वर्तमान हिन्दी का एक रूप है जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिन्दी भाषा की सृष्टि की गई और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है। दूसरे शब्दों में, वह बोली जिसपर ब्रजभाषा या अवधी आदि की छाप न हो, ठेठ हिन्दी। खड़ी बोली आज की राष्ट्रभाषा हिन्दी का पूर्व रूप है। यह परिनिष्ठित पश्चिमी हिन्दी का एक रूप है। इसका इतिहास शताब्दियों से चला आ रहा है।

जिस समय मुसलमान इस देश में आकर बस गए, उस समय उन्हें यहाँ की कोई एक भाषा ग्रहण करने की आवश्यकता हुई। वे प्रायः दिल्ली और उसके पूर्वी प्रान्तों में ही अधिकता से बसे थे और ब्रजभाषा तथा अवधी भाषाएँ, क्लिष्ट होने के कारण अपना नहीं सकते थे, इसलिये उन्होंने मेरठ और उसके आस-पास की बोली ग्रहण की और उसका नाम खड़ी (खरी?) बोली रखा। इसी खड़ी बोली में वे धीरे-धीरे फारसी और अरबी शब्द मिलाते गए जिससे अन्त में वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि हुई। विक्रमी 14वीं शताब्दी में पहले-पहल अमीर खुसरो ने इस प्रान्तीयता बोली का प्रयोग करना आरम्भ किया और उसमें बहुत कुछ कविता की, जो सरल तथा सरस होने के कारण शीघ्र ही प्रचलित हो गई। बहुत दिनों तक मुसलमान ही इस बोली का बोलचाल और साहित्य में व्यवहार करते रहे, पर पीछे हिन्दुओं में भी इसका प्रचार होने लगा। 15वीं और 16वीं शताब्दी में कोई-कोई हिन्दी के कवि भी अपनी कविता में कहीं-कहीं इसका प्रयोग करने लगे थे, पर उनकी संख्या प्रायः नहीं के समान थी। अधिकांश कविता अवधी और ब्रजभाषा में ही होती रही। 18वीं शताब्दी में हिन्दू भी साहित्य में इसका व्यवहार करने लगे, पर पद्य में नहीं, केवल गद्य में और तभी से मानों वर्तमान हिन्दी गद्य का जन्म हुआ, जिसके आचार्य मुंशी सदासुखलाल, लल्लू लाल और सदल मिश्र माने जाते हैं। जिस प्रकार मुसलमानों ने इसमें फारसी तथा अरबी आदि के शब्द भरकर वर्तमान उर्दू भाषा बनाई, उसी प्रकार हिन्दुओं ने भी उसमें संस्कृत के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान हिन्दी प्रस्तुत की। इधर थोड़े दिनों से कुछ लोग संस्कृत प्रचुर वर्तमान हिन्दी में भी कविता करने लग गए हैं और कविता के काम के लिये उसी को खड़ी बोली कहते हैं।

वर्तमान हिन्दी का एक रूप जिसमें संस्कृत के शब्दों की बहुलता करके वर्तमान हिन्दी भाषा की और फारसी तथा अरबी के शब्दों की अधिकता करके वर्तमान उर्दू भाषा की सृष्टि की गई है।

साहित्यिक सन्दर्भ में ब्रजभाषा, अवधी आदि बोलियों में साहित्य का पार्थक्य करने के लिए आधुनिक हिन्दी साहित्य को 'खड़ी बोली साहित्य' के नाम से अभिहित किया जाता है।

नामकरण

खड़ी बोली अनेक नामों से अभिहित की गई है यथा–हिन्दुई, हिन्दवी, दक्खिनी, दखनी या दकनी, रेखता, हिन्दोस्तानी, हिन्दुस्तानी आदि। डॉ. ग्रियर्सन ने इसे 'वर्नाक्युलर हिन्दुस्तानी' तथा डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने इसे 'जनपदीय हिन्दुस्तानी' का नाम दिया है। डॉ. चटर्जी खड़ी बोली के साहित्यिक रूप को 'साधु हिन्दी' या 'नागरी हिन्दी' के नाम से अभिहित करते हैं। परन्तु डॉ. ग्रियर्सन ने इसे 'हाई हिन्दी' कहा है। इसकी व्याख्या विभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न रूप से की है। इन विद्वानों के मतों की निम्नांकित श्रेणियाँ हैं-

(1) कुछ विद्वान खड़ी बोली नाम को बज्रभाषा सापेक्ष मानते हैं और यह प्रतिपादन करते हैं कि लल्लू जी लाल (1803 ई.) के बहुत पूर्व यह नाम ब्रजभाषा की मधुरता तथा कोमलता की तुलना में उस बोली को दिया गया था जिससे कालान्तर में आदर्श हिन्दी तथा उर्दू का विकास हुआ। ये विद्वान खड़ी शब्द से कर्कशता, कटुता, खरापन, खड़ापन आदि ग्रहण करते हैं।

(2) कुछ लोग इसे उर्दू सापेक्ष मानकर उसकी अपेक्षा इसे प्राकृत शुद्ध, ग्रामीण ठेठ बोली मानते हैं।

(3) अनेक विद्वान खड़ी का अर्थ सुस्थित, प्रचलित, सुसंस्कृत, परिष्कृत या परिपक्व ग्रहण करते हैं।

(4) अन्य विद्वान् उत्तरी भारत की ओकारान्त प्रधान ब्रज आदि बोलियों को 'पड़ी बोली' और इसके विपरीत इसे 'खड़ी बोली' के नाम से अभिहित करते हैं, जबकि कुछ लोग रेखता शैली को पड़ी और इसे खड़ी मानते हैं। खड़ी बोली को खरी बोली भी कहा गया है। सम्भवतः खड़ी बोली शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग लल्लू लाल द्वारा प्रेमसागर में किया गया है। किन्तु इस ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर खरी शब्द ही मुद्रित है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति तथा इसके सम्बन्ध में विभिन्न मत

अत्यन्त प्राचीन काल से ही हिमालय तथा विन्ध्य पर्वत के बीच की भूमि आर्यावर्त के नाम से प्रख्यात है। इसी के बीच के प्रदेश को मध्य प्रदेश

कहा जाता है, जो भारतीय संस्कृति तथा सभ्यता का केन्द्र-बिन्दु है। संस्कृत, पालि तथा शौरसेनी प्राकृत विभिन्न युगों में इस मध्यदेश की भाषा थी। कालक्रम से शौरसेनी प्राकृत के पश्चात् इस प्रदेश में शौरसेनी अपभ्रंश का प्रचार हुआ। यह कथ्य (बोलचाल की) शौरसेनी अपभ्रंश भाषा ही कालान्तर में कदाचित् खड़ी बोली (हिन्दी) के रूप में पारिणत हुई है। इस प्रकार खड़ी बोली की उत्पत्ति शौरसेनी अपभ्रंश से मानी जाती है, यद्यपि इस अपभ्रंश का विकास साहित्यक रूप में नहीं पाया जाता। भोज और हम्मीरदेव के समय से अपभ्रंश काव्यों की जो परम्परा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक दिखाई पड़ती है। इसके उपरान्त भक्तिकाल के आरम्भ में निर्गुण धारा के सन्त कवि खड़ी बोली का व्यवहार अपनी सधुक्कड़ी भाषा में किया करते थे।

कुछ विद्वानों का मत है कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में लाई गई और उसका मूलरूप उर्दू है, जिससे आधुनिक हिन्दी की भाषा अरबी-फारसी शब्दों को निकालकर गढ़ ली गई। सुप्रसिद्ध भाषाशास्त्री, डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार खड़ी बोली अंग्रेजों की देन है। मुगल साम्राज्य के ध्वंस से खड़ी बोली के प्रचार में सहायता पहुँची। जिस प्रकार उजड़ती हुई दिल्ली को छोड़कर मीर, इंशा आदि उर्दू के अनेक शायर पूरब की ओर आने लगे उसी प्रकार दिल्ली के आस-पास के हिन्दू व्यापारी जीविका के लिये लखनऊ, फैजाबाद, प्रयाग, काशी, पटना, आदि पूरबी शहरों में फैलने लगे। इनके साथ ही साथ उनकी बोलचाल की भाषा खड़ी बोली भी लगी चलती थी। इस प्रकार बड़े शहरों के बाजार की भाषा भी खड़ी बोली हो गई। यह खड़ी बोली असली और स्वाभाविक भाषा थी, मौलवियों और मुंशियों की उर्दू-ए-मुअल्ला नहीं। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध के संबंध में ग्रियर्सन लिखते हैं कि यह समय हिन्दी (खड़ी बोली) भाषा के जन्म का समय था जिसका आविष्कार अंग्रेजों ने किया था और इसका साहित्यिक गद्य के रूप में सर्वप्रथम प्रयोग गिलक्राइस्ट की आज्ञा से लल्लू जी लाल ने अपने प्रेम सागर में किया।

लल्लू लाल और सदल मिश्र को खड़ी बोली के उन्नायक अथवा इसको प्रगति प्रदान करनेवाला तो माना जा सकता है, परन्तु इन्हें खड़ी बोली का जन्मदाता कहना सत्य से युक्त तथा तथ्यों से प्रमाणित नहीं है। खड़ी बोली की प्राचीन परम्परा के सम्बन्ध में ध्यानपूर्वक विचार करने पर इस कथन की अयथार्थता स्वयमेव सिद्ध हो जाती है।

मुसलमानों के द्वारा इसके प्रसार में सहायता अवश्य प्राप्त हुई। उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं बल्कि खड़ी बोली की ही एक शैली मात्र है जिसमें फारसी और अरबी के शब्दों की अधिकता पाई जाती है तथा जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। उर्दू साहित्य के इतिहास पर ध्यान देने से यह बात स्पष्ट प्रमाणित है। अनेक मुसलमान कवियों ने फारसी मिश्रित खड़ी बोली में, जिसे वे 'रेख्ता' कहते थे, कविता की है। यह परम्परा 18वीं 19वीं शती में दिल्ली के अंतिम बादशाह बहादुरशाह तथा लखनऊ के अंतिम नवाब वाजिदअली शाह तक चलती रही।

साधारणत: लल्लू जी लाल, सदल मिश्र, इंशाअल्ला खाँ तथा मुंशी सदासुखलाल को खड़ी बोली गद्य के प्रतिष्ठापक कहे जाते हैं परन्तु इनमें से किसी को भी इसकी परम्परा को प्रतिष्ठित करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं है। आधुनिक खड़ी बोली गद्य की परम्परा की प्रतिष्ठा का श्रेय भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र एवं राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद को प्राप्त है जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा एक सरल सर्वसम्मत गद्य शैली का प्रवर्तन किया। कालान्तर में लोगों ने भारतेन्दु की शैली अधिक अपनाई।

वस्तुत: आधुनिक हिन्दी साहित्य खड़ी बोली का ही साहित्य है जिसके लिए देवनागरी लिपि का सामान्यत: व्यवहार किया जाता है और जिसमें संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के शब्दों और प्रकृतियों के साथ देश में प्रचलित अनेक भाषाओं और जनबोलियों की छाया अपने तद्भव रूप में वर्तमान है।

बघेली

बघेली या बाघेली, हिन्दी की एक बोली है, जो भारत के बघेलखण्ड क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य प्रदेश के रीवाँ, सतना, सीधी, उमरिया, एवं शहडोल, अनूपपुर में, उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद एवं मिर्जापुर जिलों में तथा छत्तीसगढ़ के बिलासपुर एवं कोरिया जनपदों में बोली जाती है। इसे "बघेलखण्डी", "रिमही" और "रिवई" भी कहा जाता है।

गढ़वाली

गढ़वाली भारत के उत्तराखण्ड राज्य में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है, जो की विलुप्ती की कगार पर है, क्योंकि लोग बड़ी मात्रा में पलायन कर रहे हैं, इसका बड़ा कारण है रोजगार और बुनियादी जरूरतें। लोग शहरों में रह

रहे हैं। अगर आप किसी भी पहाड़ी गांव में जायेंगे तो वहां पर ज्यादा मात्रा में वृद्ध लोग ही मिलेंगे। हम मानते हैं कि बुनयादी जरूरतों के लिए पलायन करना पड़ रहा है परंतु लोगों को यह भी समझना होगा कि आने वाली पीढ़ी को हम अपनी संस्कृति और भाषा से वंचित रख रहे हैं। हालांकि अगर पहाड़ की राजधानी गैरसैण को बनाया जाये तो यहां के निवासियों को बाहर जाने की जरूरत नहीं होगी। तब जब राजधानी पहाड़ में बनेगी तब रोजगार के बहुत से माध्यम उपलब्ध होंगे एवं पलायन में भी कमी आयेगी। जब पहाड का बहुआयामी विकास होगा तो यहां से शहर गये हुए पहाड़ी लोग भी यहां वापस आने लगेंगे एवं फिर से अपनी गढवाली भाषा की संस्कृति को अपने आने वाली पीढ़ी को सुपुर्द कर पायेंगे।

गढ़वाली की बोलियाँ

गढ़वाली भाषा के अंतर्गत कई बोलियाँ प्रचलित हैं, यह गढ़वाल के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न पाई जाती है।

गढ़वाली—गढ़वाल मंडल के सातों जिले पौड़ी, टिहरी, चमोली, रुद्रप्रयाग, उत्तरकाशी, देहरादून और हरिद्वार गढ़वाली भाषी लोगों के मुख्य क्षेत्र हैं। कुमांऊ के रामनगर क्षेत्र में गढ़वाली का असर देखा जाता है। माना जाता है कि गढ़वाली आर्य भाषाओं के साथ ही विकसित हुई लेकिन 11-12वीं सदी में इसने अपना अलग स्वरूप धारण कर लिया था। इस पर हिन्दी के अलावा मराठी, फारसी, गुजराती, बांग्ला, पंजाबी आदि का भी प्रभाव रहा है लेकिन गढ़वाली का अपना शब्द भंडार है, जो काफी विकसित है और हिन्दी जैसी भाषा को भी अपने शब्द भंडार से समृद्ध करने की क्षमता रखती है। ग्रियर्सन ने गढ़वाली के कई रूप जैसे श्रीनगरी, नागपुरिया, बधाणी, सलाणी, टिहरियाली, राठी, दसौल्या, मांझ कुमैया आदि बताये थे। बाद में कुछ साहित्यकारों ने माच्छी, तोल्छा, जौनसारी का भी गढ़वाली का ही एक रूप माना। गढ़वाली भाषाविद डा. गोविंद चातक ने श्रीनगर और उसके आस-पास बोली जाने वाली भाषा को आदर्श गढ़वाली कहा था। वैसे भी कहा गया है, कोस कोस पर बदले पानी, चार कोस पर वाणी।

कुमांउनी—कुमांऊ मंडल के छह जिलों नैनीताल, अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, बागेश्वर, चंपावत और उधमसिंह नगर में कुमांउनी बोली जाती है। वैसे इनमें से लगभग हर जिले में कुमांउनी का स्वरूप थोड़ा बदल जाता है। गढ़वाल और कुमांऊ के सीमावर्ती क्षेत्रों के लोग दोनों भाषाओं को बोल और समझ लेते हैं।

कुमाउंनी की कुल दस उप-बोलियां हैं जिन्हें पूर्वी और पश्चिमी दो वर्गों में बांटा गया है। पूर्वी कुमाउंनी में कुमैया, सोर्याली, अस्कोटी तथा सीराली जबकि पश्चिमी कुमाउंनी में खसपर्जिया, चौगर्खिया, गंगोली, दनपुरिया, पछाईं और रोचोभैंसी शामिल हैं। कुमांऊ क्षेत्र में ही भोटिया, राजी, था और बोक्सा जनजातियां भी रहती हैं जिनकी अपनी बोलियां हैं। पुराने साहित्यकारों ने इसे 'पर्वतीय' या 'कुर्माचली' भाषा कहा है।

जौनसारी—जौनसार बावर तथा आस-पास के क्षेत्रों के निवासियों द्वारा बोली जाती है। गढ़वाल मंडल के देहरादून जिले के पश्चिमी पर्वतीय क्षेत्र को जौनसार भाबर कहा जाता है। यहां की मुख्य भाषा है जौनसारी। यह भाषा मुख्य रूप से तीन तहसीलों चकराता, कालसी और त्यूनी में बोली जाती है। इस क्षेत्र की सीमाएं टिहरी और उत्तरकाशी से लगी हुई हैं और इसलिए इन जिलों के कुछ हिस्सों में भी जौनसारी बोली जाती है। जार्ज ग्रियर्सन ने इसे पश्चिमी पहाड़ी की बोली कहा था। कहने का मतलब है कि इसे उन्होंने हिमाचल प्रदेश की बोलियों के ज्यादा करीब बताया था। इसमें पंजाबी, संस्कृत, प्राकृत और पालि के कई शब्द मिलते हैं।

मार्छी—मर्छा (एक पहाड़ी जाति) लोगों द्वारा बोली जाती है। गढ़वाल मंडल के चमोली जिले की नीति और माणा घाटियों में रहने वाली भोटिया जनजाति मार्च्छा और तोल्छा भाषा बोलती है। इस भाषा में तिब्बती के कई शब्द मिलते हैं। नीति घाटी में नीति, गमसाली और बाम्पा शामिल हैं, जबकि माणा घाटी में माणा, इन्द्रधारा, गजकोटी, ज्याबगड़, बेनाकुली और पिनोला आते हैं।

रवांल्टी—उत्तरकाशी जिले के पश्चिमी क्षेत्र को रवांई कहा जाता है। यमुना और टौंस नदियों की घाटियों तक फैला यह वह क्षेत्र है जहां गढ़वाल के 52 गढ़ों में से एक राईगढ़ स्थित था। इसी से इसका नाम भी रवांई पड़ा। इस क्षेत्र की भाषा गढ़वाली या आस-पास के अन्य क्षेत्रों से भिन्न है। इस भाषा को रवांल्टी कहा जाता है। डा. चातक ने पचास के दशक में 'गढ़वाली की उप बोली रवांल्टी, उसके लोकगीत' विषय पर ही आगरा विश्वविद्यालय से पीएचडी की थी। वर्तमान समय में भाषा विद और कवि महावीर रवांल्टा इस भाषा के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं।

जाड़—उत्तरकाशी जिले के जाड़ गंगा घाटी में निवास करने वाली जाड़ जनजाति की भाषा भी उनके नाम पर जाड़ भाषा कहलाती है। उत्तरकाशी के जादोंग, निलांग, हर्षिल, धराली, भटवाणी, डुंडा, बगोरी आदि

में इस भाषा के लोग मिल जाएंगे। जाड़ भोटिया जनजाति का ही एक अंग है जिनका तिब्बत के साथ लंबे समय तक व्यापार रहा। इसलिए शुरू में इसे तिब्बत की 'यू मी' लिपि में भी लिखा जाता था। अभी इस बोली पर काफी खतरा मंडरा रहा है।

बेंगाणी–उत्तरकाशी जिले के मोरी तहसील के अंतर्गत पड़ने वाले क्षेत्र को बंगाण कहा जाता है। इस क्षेत्र में तीन पट्टियां–मासमोर, पिंगल तथा कोठीगाड़ आती हैं जिनमें बंगाणी बोली जाती है। यूनेस्को ने इसे उन भाषाओं में शामिल किया है जिन पर सबसे अधिक खतरा मंडरा रहा है।

जोहारी–यह भी भोटिया जनजाति की एक भाषा है, जो पिथौरागढ़ जिले के मुनस्यारी क्षेत्र में बोली जाती है। इन लोगों का भी तिब्बत के साथ लंबे समय तक व्यापार रहा इसलिए जोहारी में भी तिब्बती शब्द पाये जाते हैं।

थारू–उत्तराखंड के कुमाऊं मंडल के तराई क्षेत्रों, नेपाल, उत्तर प्रदेश और बिहार के कुछ क्षेत्रों में थारू जनजाति के लोग रहते हैं। कुमांऊ मंडल में यह जनजाति मुख्य रूप से उधमसिंह नगर के खटीमा और सितारगंज विकास खंडो में रहती हैं। इस जनजाति के लोगों की अपनी अलग भाषा है जिसे उनके नाम पर ही थारू भाषा कहा जाता है। यह कन्नौजी, ब्रजभाषा तथा खड़ी बोली का मिश्रित रूप है।

बुक्साणी–कुमाऊं से लेकर गढ़वाल तक तराई की पट्टी में निवास करने वाली जनजाति की भाषा है बुक्साणी। इन क्षेत्रों में मुख्य रूप से काशीपुर, बाजपुर, गदरपुर, रामनगर, डोईवाला, सहसपुर, बहादराबाद, दुगड्डा, कोटद्वार आदि शामिल हैं।

रंग ल्वू–कुमांऊ में मुख्य रूप से पिथौरागढ़ की धारचुला तहसील के दारमा, व्यास और चौंदास पट्टियों में रंग ल्वू भाषा बोली जाती है। इसे तिब्बती–बर्मी भाषा का अंग माना जाता है जिसे प्राचीन समय से किरात जाति के लोग बोला करते थे। दारमा घाटी में इसे रड़ ल्वू, चौंदास में बुम्बा ल्वू और ब्यास घाटी में ब्यूंखू ल्वू के नाम से जाना जाता है।

राजी–राजी कुमांऊ के जंगलों में रहने वाली जनजाति थी। यह खानाबदोश जनजाति थी जिसने पिछले कुछ समय से स्थायी निवास बना लिये हैं। नेपाल की सीमा से सटे उत्तराखंड के पिथौरागढ़, चंपावत और ऊधमसिंह नगर जिलों में इस जनजाति के लोग रहते हैं। यह भाषा तेजी से खत्म होती जा रही है।

- जधी, उत्तरकाशी के आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती है।
- सलाणी, टिहरी के आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती है।
- श्रीनगरिया, गढ़वाली का परिनिष्ठित रूप है।
- राठी, पौड़ी क्षेत्र के राठ क्षेत्र में बोली जाती है।
- चौंदकोटी, पौड़ी में बोली जाती है।

नागपुर्या–नागपुर्या तल्ला और मल्ला नागपुर पट्टियों की बोलियां हैं और जो कि रुद्रप्रयाग और चमोली जिले में बोली जाती हैं। साथ ही चमोली में पेनखंडी, दशोल्या, बधाणी, चानफुर्या आदि बोलियां बोली जाती हैं जिनमें आमूलचूक टोन का ही फर्क है और साहित्य की दृष्टि से नागपुर्या और गढवाली मानक भाषा श्रीनगर्या में ही साहित्य सृजन हुआ है और हो रहा है।

कुमांऊँनी

कुमांऊँनी भारत के उत्तराखण्ड राज्य के अन्तर्गत कुमाऊँ क्षेत्र में बोली जाने वाली एक भाषा है। भारत की 325 मान्यता प्राप्त भाषाओं में से एक है और 26, 60, 000 (1998) से अधिक लोगों द्वारा बोली जाती है। उत्तराखण्ड के निम्नलिखित जनपदों–अल्मोड़ा, नैनीताल, पिथौरागढ़, बागेश्वर, चम्पावत, ऊधमसिंह नगर के अतिरिक्त असम, बिहार, दिल्ली, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और पंजाब, तथा हिमाचल प्रदेश और नेपाल के कुछ क्षेत्रों में भी बोली जाती है।

लिपि

कुमांऊँनी भाषा वर्तमान में देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। यद्यपि अतीत में कुमाऊंनी भाषा के लिए क्रमशः शारदा व टाकरी लिपि का उपयोग होता था, परन्तु आज देवनागरी लिपि ने इनका स्थान ले लिया है। यह एक भ्रान्ति है कि कुमाऊँनी की कोई लिपि नहीं है तथा इसका कोई लिखित स्वरूप नहीं है। कुमाऊँनी की वर्तमान लिपि देवनागरी है और इसमें साहित्य भी उपलब्ध है, यद्यपि उत्तराखण्ड शासन ने इसको राजभाषा की पदवी नहीं दी है।

कुमाऊँनी की व्याकरण अन्य मध्य पहाड़ी भाषाएँ से बहुत समानताएं रखती है। साथ ही, राजस्थानी भाषाएं व गुजराती भी कुछ रूप से मिलतीं है।

कुमांऊँनी भाषा के प्रकार तथा भेद

कुमांऊँनी भाषा, कुमाऊँ क्षेत्र में विभिन्न रुपांतरणों में बोली जाती है जैसे–अल्मोड़ा और उत्तरी नैनीताल में मध्य कुमांऊँनी। पिथौरागढ़ में उत्तर पूर्वी

कुमांऊँनी। दक्षिण पूर्वी नैनीताल में दक्षिण पूर्वी कुमांऊँनी। पश्चिमी अल्मोड़ा और नैनीताल में पश्चिमी कुमांऊँनी।

कुमाऊँनी भाषा का लुप्त होता स्वरूप

कुमांऊँनी भाषा शनैः-शनैः लगभग लुप्त होने के स्थिति पर है। जिसके निम्न कारण हैं। पलायन, नगरीकरण, राजभाषा के रूप में मान्यता न मिलना इत्यादि। कुमांऊँनी जानने वाले लगभग सभी लोग हिन्दी समझ सकते हैं। हिन्दी भाषा के कुमाऊँ में बढ़ते प्रभाव तथा केन्द्रीय शासन द्वारा हिन्दी के आत्याधान के कारण यह भाषा तीव्र गति से लुप्त हो रही है। नगरीय क्षेत्रों में बहुत कम लोग यह भाषा बोलते हैं। बहुत से कुमाऊँनी परिवारों में पुरानी दो पीढ़ी के लोग जब नई पीढ़ी के लोगों से कुमाऊँनी में संवाद करते हैं तो उन्हें उत्तर हिन्दी में मिलता है, क्योंकि कुमाऊँनी को औपचारिक रूप से विद्यालयों पढ़ाया नहीं जाता है। यूनेस्को ने कुमाऊँनी भाषा को असुरक्षित भाषाओं की श्रेणी में रखा है, अर्थात् जिसको निरन्तर संरक्षण की आवश्यकता है।

पंचपरगनिया

पंचपरगनिया झारखण्ड की एक प्रमुख क्षेत्रीय भाषा है। इस भाषा को इस प्रांत में द्वितीय राजभाषा के रूप में राज्य सरकार द्वारा सूचीबद्ध किया गया है। पंचपरगनिया, भारोपीय कुल की भाषा है और भारतीय आर्य भाषाओं से इसका सीधा सम्बन्ध है।

यह भाषा मुख्यतः छोटानागपुर के पठारी क्षेत्र में बोली जाने वाली प्रमुख भाषा है और यहाँ इसका विशेष महत्त्व है। पंचपरगनिया भाषा, पाँचपरगना क्षेत्र–सिल्ली, बुण्डू, बारेन्दा, राहे, तमाड़ आदि परगनों के लिए रीढ़ है। पाँचपरगना क्षेत्र वर्तमान समय के प्रशासनिक इकाई के रूप में अनगड़ा, सिल्ली, सोनाहातु, राहे, बुण्डू, तमाड़ तथा अड़की प्रखण्डों तक इसका व्यापक फैलाव है। इसी संबंध में भोजपुरी भाषा-साहित्य के लेखक डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि 'राँची की पूर्वी क्षेत्र सिल्ली, सोनाहातु, बुण्डू, तमाड़ एवं राहे को पांचपरगना कहते हैं।' यहाँ बसने वाले सभी समुदायों के लिए यह भाषा आम बोलचाल, व्यापार, शिक्षा, संपर्क और संचार का सबसे उपयोगी माध्यम है। इसके साथ ही यह एक अंतर-प्रांतीय भाषा भी है।

मागधी अपभ्रंश से प्रसूत बिहारी परिवार की अन्य भाषाओं की तरह पंचपरगनिया भी मगधी अपभ्रंश से विकसित एक भाषा है, जो अब तक मगही, भोजपुरी और नागपुरी की विभाषा मानी जाती थी। पंचपरगनिया वैय्याकरणी डॉ. करम चन्द्र अहीर की पुस्तक 'पंचपरगनिया निबंध-संग्रह', प्रकाशक–डॉ. करम चन्द्र अहीर, वर्ष–दिसम्बर 2011 के अनुसार 'पंचपरगनिया भाषा का मूल स्रोत 'आभीरी अपभ्रंश' से है और अहीर जातियों का समूह मध्यप्रदेश के 'अहीरवाड़ा' क्षेत्र से पलायन कर झारखंड के पाँचपरगना क्षेत्र में आकर बसे।'

विद्वान 'भंडारकर' का विचार है कि भारत में ईसा मसीह की कथाएँ आभीरों ने ही फैलायी और उसका समावेश कृष्ण गाथाओं में भी कर दिया गया। इनकी जातीय बोली अहीरी थी जो पाँचपरगना क्षेत्र में आगे चलकर 'खेरवारी' और 'पंचपरगनिया' कहलायी। यह जाति पाँचपरगना क्षेत्र में अन्य जातियों से पहले यहाँ आई। इस जाति की भाषा में पंचपरगनिया लोकगीत अधिकांश मौखिक और अल्प रूप में संकलित कहीं-कहीं मिलते हैं। यहाँ के सोहराई गीतों के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि ये गीत अहीर जातियों की ही उपज है, जिनका रचनाकाल भी संभवत: 8वीं या 9वीं सदी की होगी। 15वीं सदी से यहाँ के शिष्ट गीतों में पंचपरगनिया भाषा के आधुनिक रूप का प्रमाण मिलना प्रारंभ होता है।

पंचपरगनिया, नागपुरी भाषा की सगी बहन है, ऐसा पूर्व के विद्वानों द्वारा कहा गया है, किंतु इस कथन को सत्य सिद्ध करने के लिए इसके पूर्वकालीन साहित्य भी उपलब्ध नहीं है। पंचपरगनिया भाषा ने कब अपने आधुनिक रूप को प्राप्त किया, सही-सही नहीं कहा जा सकता है। इतना जरूर कहा जा सकता है कि संभवत: बंगला, ओड़िया, मगही, भोजपुरी, मैथली, नागपुरी आदि भाषाओं के साथ ही पंचपरगनिया भाषा का उद्‌भव और विकास हुआ है, चूँकि सांस्कृतिक और लौकिक धरोहर को सुरक्षित रखने में उपर्युक्त आधुनिक भारतीय भाषाओं की तरह पंचपरगनिया भाषा की निजी मौलिकता है।

पंचपरगनिया भाषा, पाँचपरगना क्षेत्र की सबसे अधिक प्रचलित भाषा है। लगभग 15 लाख पंचपरगनिया भाषी लोग यहाँ निवास करते हैं। इस भाषा की प्राचीन साहित्यिक परम्परा भी है और इनके स्वतंत्र आधुनिक गद्य-पद्य साहित्य भण्डार है। पंचपरगनिया भाषा क्षेत्र के सभी विद्यालयों और महाविद्यालयों जैसी शिक्षण संस्थानों में भी विद्यार्थी इसे शिक्षा का माध्यम बनाकर उच्चतर शिक्षा प्राप्त कर सरकारी/गैर-सरकारी सेवाओं का लाभ ले

रहे हैं। यह भाषा पूरे पाँचपरगना क्षेत्र में आदिवासियों और मूलवासियों की मुख्य सम्पर्क भाषा है, जो समूहों को एक सूत्र में बाँध के रखती है। यह भाषा विभिन्न भाषा-भाषियों के बीच अन्तर प्रांतीय संपर्क, व्यापार, विपणन का मूल साधन है। यह भाषा किसी विशेष धार्मिक परंपरा या आस्था से जुड़ी हुई नहीं है और सभी धर्मावलम्बी इसका प्रयोग करते हैं। यह भाषा व्याकरणिक विशिष्टताओं से भी यह एक स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा को लिखने-पढ़ने के लिए डॉ. करम चन्द्र अहीर ने 'झाड़ लिपि,' तैयार किया है और साथ ही इस भाषा का व्याकरण और साहित्यिक इतिहास भी लिखा है। वर्तमान समय में पंचपरगनिया में पठन-पाठन अथवा अध्ययन-अध्यापन मुख्यतः देवनागरी लिपि में ही किया जाता है।

नागपुरी

नागपुरी या सादरी झारखण्ड, बिहार, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा राज्यों में बोली जाने वाली एक हिन्द-आर्य भाषा है। इसे हिन्दी कि उपभाषा भी माना जाता है। नागजाति या नागवंश के शासन स्थापित होने पर (64 ई.) इसकी राजभाषा नागपुरी, छोटानागपुर (झारखंड) में सर्वमान्य हुई। यह सदानों की मातृ भाषा है। नागपुरी को सदान के अतिरिक्त मुण्डा, खड़िया, उराँव आदि की यह सम्पर्क भाषा अर्थात सर्वसाधारण की बोली हो गई है। नागपुरी के पूर्व नाम, सदानी, सदरी या सादरी, गँवारी भी प्रचलित रहे हैं। अब यह नागपुरी नाम पर विराम पा गई है।

नामोत्पत्ति

कई इतीहासकारों का मानना है कि सादानी शब्द की उत्पत्ति निषध शब्द से हुई है। इस क्षेत्र में नागवंशी राजावों के शासन के कारण इस भाषा का नाम नागपुरी हुआ।

भौगोलिक विस्तार

नागपुरी भारत में मुख्य रूप से झारखंड के चतरा, लातेहार, पलामू, लोहरदंगा, गुमला, राँची, खूँटी, सिमडेगा, छत्तीसगढ़ के जशपुर, सरगुजा, बलरामपुर, बिहार के औरंगाबाद और उड़ीसा के सुन्दरगड़ जिला में बोली जाती है।

विकास

फादर पीटर शांति नवरंगी ने इसके उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डालते हुए प्रश्न उठाया कि नागपुरी छोटानागपुर की आर्य भिन्न बोलियों के मध्य में कैसे पड़ी? कहाँ से आई? कब आई? नागपुरी के प्रथम वैयाकरण रेव. ई. एच. ह्विटली ने नागपुरी का संबंध किसी आर्य बोली से नहीं बतलाया। तो दूसरी ओर नागपुरी के दूसरे समर्थ वैयाकरण रेव. कोनराड बुकाउट ने नागपुरी को मगही, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी इत्यादि से मिलती-जुलती बताया। फिर भी यह इनसे भिन्न भाषा है, जो छोटानागपुर के अरण्यों और पहाड़ियों के बीच बसे गाँवों में स्वतंत्रातापूर्वक पनपी और विकसित हुई। अत: नागपुरी का शुद्ध रूप अब उन गाँवों में ही सुरक्षित है। फादर नवरंगी ने यह स्वीकार किया है कि यह कहना कठिन है कि नागपुरिया सदानी (नागपुरी) भाषा किस प्राचीन प्राकृत अथवा मध्ययुग की किसी अपभ्रंश बोली का वर्तमान रूप है। इस भाषा के सर्वनामों और क्रियाओं के कोई-कोई रूप दूरवर्ती राजस्थानी और नेपाली रूपों से मिलते हैं, कितने रूप प्राचीन वैस्वारी और अवधी से संबंध दिखाते हैं, कितने रूप तो बंगला और उड़िया की चलित बोलियों के रूप से मेल खा जाते हैं।

नागपुरी भाषा के प्रख्यात विद्वान प्रो. केसरी कुमार ने भी कहा है कि मगही और मैथिली की तरह नागपुरी भी मगधी अपभ्रंश से प्रसूत और उन्हीं की तरह एक निश्चित बोली है, जो बिहारी के अंतर्गत आती है। डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या के अनुसार मगधी प्रसूत भाषाओं की प्राचीन सामग्री के आधार पर भाषाविदों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि पूर्ववर्ती मगधी अपभ्रंश के सभी स्थानीय रूपों मगही, मैथिली, भोजपुरी, बंगला, उड़िया और असमिया ने आठवीं शताब्दी से ग्यारहवीं शताब्दी तक न्यूनाधिक मात्रा में स्वतंत्र रूप से अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लिया होगा। यह पार्थक्य किस शताब्दी से सम्पन्न हुआ इसके संबंध में निश्चित रूप से कुछ कहा जाना संभव नहीं। यही स्थिति हम नागपुरी के लिए भी कह सकते हैं।

लिपि

पूर्व में, नागपुरी कविताएँ लिखने में देवनागरी या कैथी लिपि का उपयोग किया जाता था। वर्तमान में, नागपुरी आमतौर पर देवनागरी लिपि में लिखी जाती है।

मगही

मगही या मगधी भाषा भारत के मध्य पूर्व में बोली जाने वाली एक प्रमुख भाषा है। इसका निकट का संबंध अवधी, भोजपुरी और मैथिली भाषा से है और अक्सर ये भाषाएँ एक ही साथ बिहारी भाषा के रूप में रख दी जाती हैं। इसे देवनागरी अथवा कयथी लिपि में लिखा जाता है। मगही बोलनेवालों की संख्या (2002) लगभग 1 करोड़ 30 लाख है। मुख्य रूप से यह बिहार के गया, पटना, राजगीर, नालंदा, जहानाबाद, अरवल, नवादा, शेखपुरा, लखीसराय, जमुई, मुंगेर औरंगाबाद के इलाकों में बोली जाती है।

मगही का धार्मिक भाषा के रूप में भी पहचान है। कई जैन धर्मग्रंथ मगही भाषा में लिखे गए हैं। मुख्य रूप से वाचिक परंपरा के रूप में यह आज भी जीवित है। मगही का पहला महाकाव्य गौतम महाकवि योगेश द्वारा 1960-62 के बीच लिखा गया। दर्जनों पुरस्कारो से सम्मानित योगेश्वर प्रसाद सिंह योगेश आधुनिक मगही के सबसे लोकप्रिय कवि माने जाते हैं। 23 अक्टुबर को उनकी जयन्ति मगही दिवस के रूप में मनाई जाती है।

मगही भाषा में विशेष योगदान हेतु सन् 2002 में डॉ.रामप्रसाद सिंह को साहित्य अकादमी भाषा सम्मान दिया गया।

ऐसा कुछ विद्वानों का मानना है कि मगही संस्कृत भाषा से जन्मी हिन्द आर्य भाषा है, परंतु महावीर और बुद्ध दोनों के उपदेश की भाषा मगधी ही थी। बुद्ध ने भाषा की प्राचीनता के सवाल पर स्पष्ट कहा है–'सा मगधी मूल भाषा'। अत: मगही 'मागधी' से ही निकली भाषा है।इसकी लिपी कैथी है।

भोजपुरी

भोजपुरी शब्द का निर्माण बिहार का प्राचीन जिला भोजपुर के आधार पर पड़ा, जहाँ के राजा "राजा भोज" ने इस जिले का नामकरण किया था।भाषाई परिवार के स्तर पर भोजपुरी एक आर्य भाषा है और मुख्य रूप से पश्चिम बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में बोली जाती है। आधिकारिक और व्यावहारिक रूप से भोजपुरी हिन्दी की एक उपभाषा या बोली है। भोजपुरी अपने शब्दावली के लिये मुख्यत: संस्कृत एवं हिन्दी पर निर्भर है, कुछ शब्द इसने उर्दू से भी ग्रहण किये हैं। भोजपुरी जानने-समझने वालों का विस्तार विश्व के सभी महाद्वीपों पर है जिसका कारण ब्रिटिश राज के दौरान उत्तर भारत से अंग्रेजों द्वारा

ले जाये गये मजदूर हैं जिनके वंशज अब जहाँ उनके पूर्वज गये थे वहीं बस गये हैं। इनमे सूरिनाम, गुयाना, त्रिनिडाड और टोबैगो, फिजी आदि देश प्रमुख हैं। भारत के जनगणना (2001) आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 3.3 करोड़ लोग भोजपुरी बोलते हैं। पूरे विश्व में भोजपुरी जानने वालों की संख्या लगभग 4 करोड़ है। वक्ताओं की संख्या के आंकड़ों में ऐसे अंतर का संभावित कारण यह हो सकता है कि जनगणना के समय लोगों द्वारा भोजपुरी को अपनी मातृ भाषा नहीं बताई जाती है। भोजपुरी प्राचीन समय में कैथी लिपि में लिखी जाती थी।

भौगोलिक वर्गीकरण

डॉ. ग्रियर्सन ने भारतीय भाषाओं को अन्तरंग और बहिरंग इन दो श्रेणियों में विभक्त किया है जिसमें बहिरंग के अन्तर्गत उन्होंने तीन प्रधान शाखाएँ स्वीकार की हैं–

(1) उत्तर पश्चिमी शाखा,
(2) दक्षिणी शाखा और
(3) पूर्वी शाखा।

इस अन्तिम शाखा के अन्तर्गत उड़िया, असमी, बाँग्ला और पुरबिया भाषाओं की गणना की जाती है। पुरबिया भाषाओं में मैथिली, मगही और भोजपुरी, ये तीन बोलियाँ मानी जाती हैं। क्षेत्र विस्तार और भाषाभाषियों की संख्या के आधार पर भोजपुरी अपनी बहनों मैथिली और मगही में सबसे बड़ी है।

नामकरण

भोजपुरी भाषा का नामकरण बिहार राज्य के आरा (शाहाबाद) जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। पूर्ववर्ती आरा जिले के बक्सर सब-डिविजन (अब बक्सर अलग जिला है) में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है जिसमें "नवका भोजपुर" और "पुरनका भोजपुर" दो गाँव हैं। मध्य काल में इस स्थान को मध्य प्रदेश के उज्जैन से आए भोजवंशी परमार राजाओं ने बसाया था। उन्होंने अपनी इस राजधानी को अपने पूर्वज राजा भोज के नाम पर भोजपुर रखा था। इसी कारण इसके पास बोली जाने वाली भाषा का नाम "भोजपुरी" पड़ गया।

क्षेत्र विस्तार

भोजपुरी भाषा प्रधानतया पश्चिमी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा उत्तरी झारखण्ड के क्षेत्रों में बोली जाती है। इन क्षेत्रों के अलावा भोजपुरी विदेशों में भी बोली जाती है। भोजपुरी भाषा फिजी और नेपाल की संवैधानिक भाषाओं में से एक है। इसे मॉरीशस, फिजी, गयाना, सूरीनाम, सिंगापुर, उत्तर अमरीका और लैटिन अमेरिका में भी बोला जाता है।

मुख्यरुप से भोजपुरी बोले जाने वाले जिले

बिहार–बक्सर जिला, सारण जिला, सिवान, गोपालगंज जिला, पूर्वी चम्पारण जिला, पश्चिम चम्पारण जिला, वैशाली जिला, भोजपुर जिला, रोहतास जिला, बक्सर जिला, भभुआ जिला।

उत्तर प्रदेश–बलिया जिला, वाराणसी जिला, चन्दौली जिला, गोरखपुर जिला, महाराजगंज जिला, गाजीपुर जिला, मिर्जापुर जिला, मऊ जिला, इलाहाबाद जिला, जौनपुर जिला, प्रतापगढ़ जिला, सुल्तानपुर जिला, फैजाबाद जिला, बस्ती जिला, गोंडा जिला, बहराईच जिला, सिद्धार्थ नगर, आजमगढ़ जिला।

झारखण्ड–पलामू जिला, गढ़वा जिला,

नेपाल–रौतहट जिला, बारा जिला, बीरगंज, चितवन जिला, नवलपरासी जिला, रुपनदेही जिला, कपिलवस्तु जिला, पर्सा जिला।

गयाना–जार्जटाउन।

फिजी–सुवा।

भोजपुरी भाषा की प्रधान बोलियाँ

(1) आदर्श भोजपुरी,
(2) पश्चिमी भोजपुरी

आदर्श भोजपुरी

जिसे डॉ. ग्रियर्सन ने स्टैंडर्ड भोजपुरी कहा है वह प्रधानतया बिहार राज्य के आरा जिला और उत्तर प्रदेश के देवरिया, बलिया, गाजीपुर जिले के पूर्वी भाग और घाघरा (सरयू) एवं गंडक के दोआब में बोली जाती है। यह एक लंबे भूभाग में फैली हुई है। इसमें अनेक स्थानीय विशेताएँ पाई जाती हैं। जहाँ शाहाबाद, बलिया और गाजीपुर आदि दक्षिणी जिलों में "ड़" का प्रयोग किया जाता है वहाँ

उत्तरी जिलों में "ट" का प्रयोग होता है। इस प्रकार उत्तरी आदर्श भोजपुरी में जहाँ "बाटे" का प्रयोग किया जाता है वहीं दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में "बाड़े" प्रयुक्त होता है। गोरखपुर की भोजपुरी में "मोहन घर में बाटें" कहते परंतु बलिया में "मोहन घर में बाड़ें" बोला जाता है।

पूर्वी गोरखपुर की भाषा को 'गोरखपुरी' कहा जाता है परंतु पश्चिमी गोरखपुर और बस्ती जिले की भाषा को "सरवरिया" नाम दिया गया है। "सरवरिया" शब्द "सरुआर" से निकला हुआ है, जो "सरयूपार" का अपभ्रंश रूप है। "सरवरिया" और गोरखपुरी के शब्दों–विशेषत: संज्ञा शब्दों–के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती है।

बलिया (उत्तर प्रदेश) और सारन (बिहार) इन दोनों जिलों में 'आदर्श भोजपुरी' बोली जाती है। परंतु कुछ शब्दों के उच्चारण में थोड़ा अन्तर है। सारन के लोग "ड" का उच्चारण "र" करते हैं। जहाँ बलिया निवासी "घोड़ागाड़ी आवत बा" कहता है, वहाँ छपरा या सारन का निवासी "घोरा गारी आवत बा" बोलता है। आदर्श भोजपुरी का नितांत निखरा रूप बलिया, रोहतास, बक्सर तथा भोजपुर जिले में बोला जाता है।

पश्चिमी भोजपुरी

जौनपुर, आजमगढ़, बनारस, गाजीपुर के पश्चिमी भाग और मिर्जापुर में बोली जाती है। आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी में बहुत अधिक अन्तर है। पश्चिमी भोजपुरी में आदर सूचक के लिये "तुँह" का प्रयोग दीख पड़ता है परंतु आदर्श भोजपुरी में इसके लिये "रउरा" प्रयुक्त होता है। संप्रदान कारक का परसर्ग (प्रत्यय) इन दोनों बोलियों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। आदर्श भोजपुरी में संप्रदान कारक का प्रत्यय "लागि" है परंतु वाराणसी की पश्चिमी भोजपुरी में इसके लिये "बदे" या "वास्ते" का प्रयोग होता है।

मधेसी

मधेसी शब्द संस्कृत के "मध्य प्रदेश" से निकला है जिसका अर्थ है बीच का देश। चूँकि यह बोली तिरहुत की मैथिली बोली और गोरखपुर की भोजपुरी के बीचवाले स्थानों में बोली जाती है, अत: इसका नाम मधेसी (अर्थात वह बोली जो इन दोनों के बीच में बोली जाये) पड़ गया है। यह बोली चंपारण जिले में बोली जाती और प्राय: "कैथी लिपि" में लिखी जाती है।

"थारू" लोग नेपाल की तराई में रहते हैं। ये बहराइच से चंपारण जिले तक पाए जाते हैं और भोजपुरी बोलते हैं। यह विशेष उल्लेखनीय बात है कि गोंडा और बहराइच जिले के थारू लोग भोजपुरी बोलते हैं, जबकि वहाँ की भाषा पूर्वी हिन्दी (अवधी) है। ग्रॉसन ने इस भाषा के ऊपर प्रचुर प्रकाश डाला है।

मालवी

मालवी भारत के मालवा क्षेत्र की भाषा है। मालवा भारत भूमि के हृदय-स्थल के रूप में सुविख्यात है। मालवा क्षेत्र का भू-भाग अत्यन्त विस्तृत है। पूर्व दिशा में बेतवा नदी, उत्तर-पश्चिम में चम्बल और दक्षिण में पुण्य सलिला नर्मदा नदी के बीच का प्रदेश मालवा है। मालवा क्षेत्र मध्यप्रदेश और राजस्थान के लगभग बीस जिलों में विस्तार लिए हुए है। इन क्षेत्रों के दो करोड़ से अधिक निवासी मालवी और उसकी विविध उपबोलियों का व्यवहार करते हैं।

प्रो. शैलेंद्रकुमार शर्मा की पुस्तक 'मालवी भाषा और साहित्य' के अनुसार वर्तमान में मालवी भाषा का प्रयोग मध्यप्रदेश के उज्जैन संभाग के आगर मालवा, नीमच, मन्दसौर, रतलाम, उज्जैन, देवास एवं शाजापुर जिलों, इंदौर संभाग के धार, झाबुआ, अलीराजपुर, हरदा और इन्दौर जिलों, भोपाल संभाग के सीहोर, राजगढ़, भोपाल, रायसेन और विदिशा जिलों, ग्वालियर संभाग के गुना जिले, राजस्थान के झालावाड़, प्रतापगढ़, बाँसवाड़ा एवं चित्तौड़गढ़ जिलों के सीमावर्ती क्षेत्रों में होता है। मालवी की सहोदरा निमाड़ी भाषा का प्रयोग बड़वानी, खरगोन, खंडवा, हरदा और बुरहानपुर जिलों में होता है। मध्यप्रदेश के कुछ जिलों में मालवी तथा अन्य निकटवर्ती बोलियों जैसे निमाड़ी, बुंदेली आदि के मिश्रित रूप प्रचलित हैं। इन जिलों में हरदा, होशंगाबाद, बैतूल, छिन्दवाड़ा आदि उल्लेखनीय हैं बैतूल, छिन्दवाड़ा वर्धा में पवारों द्वारा भोयरी पवारी बोली जाती है, जो की मालवी की एक उपबोली है।

मालवा समृद्धि एवं सुख से भरपूर क्षेत्र माना जाता है। 'देश मालवा गहन गंभीर, डग-डग रोटी पग-पग नीर' जैसी उक्ति लोक-जीवन में प्रचलित है। जीवन की यही विशिष्टताएं मालवा के इतिहास, संस्कृति, साहित्य, कला आदि में प्रतिबिम्बित हुई हैं। सातवीं शती में जब ह्वेनसांग भारत आया था तो वह मालवा के पर्यावरण और लोकजीवन से काफी प्रभावित हुआ था। तब उसने दर्ज भी किया, 'इनकी भाषा मनोहर और सुस्पष्ट है।'

लोककलाओं के रस से मालवांचल सराबोर है। सुदूर अतीत से यहाँ प्रवाहमान नदियों, स्थानीय भौगोलिक एवं सांस्कृतिक विविधता के रहते मालवी की अलग-अलग छटाएँ लोकजीवन में दिखाई देती हैं। इन्हीं से मालवी के अलग-अलग क्षेत्रीय रूप या विविध उपबोलियाँ अस्तित्व में आई हैं। एक प्रसिद्ध उक्ति भी इसी तथ्य की ओर संकेत करती है, "बारा कोस पे वाणी बदले, पाँच कोस पे पाणी।" मालवी का केन्द्र उज्जैन, इंदौर, देवास और उसके आस-पास का क्षेत्र है। इसी मध्यवर्ती मालवी को आदर्श या केन्द्रीय मालवी कहा जाता है, जो अन्य निकटवर्ती बोलियों के प्रभाव से प्रायः अछूती है। आगर मालवा जिला तो प्रसिद्ध ही मालवा उपनाम से है, क्योंकि जानकारों के अनुसार बहुत ज्यादा हद तक केंद्रीय या आदर्श मालवी इस जिले में ही बोली जाती है। प्रो शैलेंद्रकुमार शर्मा के अनुसार केन्द्रीय या आदर्श मालवी के अलावा मालवी के कई उपभेद या उपबोलियाँ भी अपनी विशिष्ट पहचान रखती हैं। मालवी के प्रमुख उपबोली रूप हैं–

(1) केन्द्रीय या आदर्श मालवी,
(2) हाड़ौती मिश्रित मालवी जो राजस्थान के झालावाड़, झालरापाटन और मध्यप्रदेश के सोयत क्षेत्र में बोली जाती है,
(3) सोंधवाड़ी,
(4) रजवाड़ी,
(5) दशोरी या दशपुरी,
(6) उमठवाड़ी,
(7) भीली,
(8) भोयरी।

मेवाती

मेवाती हरियाणा व राजस्थान के मेवात क्षेत्र में बोली जाने वाली एक सामान्य व साधारण बोली है। यह ब्रजभाषा की एक उपभाषा/बोली या उपबोली है और इसकी सबसे सहायक बोली हरियाणवी है। मेवाती बोली का क्षेत्र अधिक नहीं है, यह हरियाणा के मेवात जिला की प्रधान बोली है तथा यह राजस्थान के कुछ जिलों में भी प्रमुखता से बोली जाती है।

ढूंढ़ाड़ी

ढूंढ़ाड़ी एक इंडो-आर्यन भाषा है, जो पूर्वोत्तर राजस्थान के ढूंढाड़ क्षेत्र में बोली जाती है। ढूंढ़ाड़ी बोलने वाले मुख्य रूप से तीन जिलों–जयपुर, करौली, डीग, सवाई माधोपुर, दौसाऔर टोंक में रहते हैं। इस नाम की व्युत्पत्ति दो मतों के अनुसार हो सकती है, पहले मत के अनुसार माना जाता है कि ढूंढ़ाड़ी भाषा का नाम ढूंढ़ या ढूंढ़कृति पहाड़ से लिया गया है, जो कि जयपुर जिले के जोबनेर में स्थित है। दूसरी राय यह है कि यह है नाम ढूंढ़ नदी के नाम से लिया गया है, जो ढूंढाड़ क्षेत्र में बहती है।

1991 की जनगणना के अनुसार, ढूंढ़ाड़ी भाषा बोलने वालों की कुल जनसंख्या 965, 008 है। ढूंढ़ाड़ी के वैकल्पिक नाम हैं–ढूंढ़ाली, ढूंढ़ाडी, झड़शाइ बोली और काई-कुई बोली और जयपुरी।

मारवाड़ी

मारवाड़ी राजस्थान में बोली जाने वाली एक क्षेत्रीय भाषा है। यह राजस्थान की मुख्य भाषाओं में से एक है। मारवाड़ी गुजरात, हरियाणा और पूर्वी पाकिस्तान में भी बोली जाती है। इसकी मुख्य लिपि देवनागरी है। इसकी कई उप-बोलियाँ भी हैं। मारवाड़ी की खुद की लिपि है जिसे मोड़िया लिपि कहते हैं। परन्तु इस लिपि के विकास में राजपूताने राजरस्थान के राजा-महाराजा (वर्तमान में राजस्थान राज्य) व राजस्थान सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। हाल ही में बीकानेर से चयनित सांसद श्री अर्जुनराम मेघवाल ने मारवाड़ी भाषा को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करवाने के लिए बहुत प्रयास किये, लेकिन हिंदी भाषी लोगों के विरोध के चलते वे इसमें असफल रहे। पिछले 40-50 सालों से इस भाषा के विकास पर बातें तो बहुत होती रही हैं पर कार्य के मामले में कोई विशेष प्रगति नहीं दिखी। इन दिनों सन् 2011 से कोलकाता के श्री शम्भु चौधरी इस दिशा में काफी कार्य किया है। राजस्थानी भाषा की लिपि के संदर्भ में यह गलत प्रचार किया जाता रहा कि इसकी लिपि देवनागरी है, जबकि राजस्थान के पुराने दस्तावेजों से पता चलता है कि इसकी लिपि मोड़िया है। उस लिपि को महाजनी भी कहा जाता है। हांलाकि मोड़िया लिपि को भी महाजनी लिपि कहा जाता है। कुछ लोग मोड़ी लिपि को ही मोड़िया लिपि मानते रहे। जब इसके विस्तार में देखा गया तो दोनों लिपि में काफी अन्तर है।

बोलियाँ

जॉर्ज अब्राहम ग्रियर्सन ने राजस्थानी बोलियों के पारस्परिक संयोग एवं सम्बन्धों के विषय में लिखा तथा वर्गीकरण किया है। ग्रियर्सन का वर्गीकरण इस प्रकार है–

1. पश्चिमी राजस्थान में बोली जाने वाली बोलियाँ–मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढारकी, बीकानेरी, बाँगड़ी, शेखावटी, खेराड़ी, मोड़वाडी, देवड़ावाटी आदि।

2. उत्तर-पूर्वी राजस्थानी बोलियाँ–अहीरवाटी और मेवाती।

3. मध्य-पूर्वी राजस्थानी बोलियाँ–ढूँढाड़ी, तोरावाटी, जैपुरी, काटेड़ा, राजावाटी, अजमेरी, किशनगढ़, नागर चोल, हड़ौती।

4. दक्षिण-पूर्वी राजस्थान–रांगड़ी और सोंधवाड़ी 5. दक्षिण राजस्थानी बोलियाँ–निमाड़ी आदि।

विशेषताएँ

राजस्थानी–मारवाडी भाषा में 'है' वर्ण की लिपि नहीं जिसके कारण यह भाषा देवनागरी लिपि की मोहताज है। 'है' वर्ण फारसी मूल का होना बताया जाता है। इसी ने 'सिंधु' को "हिन्दू" बना दिया। जबकि मूलत: 'है' वर्ण से पहले 'इ' की मात्रा लगने से ही "इहैन्दु" शब्द बनना चाहिये।

राजस्थानी–मारवाडी भाषा में 'सड़क' को 'हैडक' बोला जाता है और कई शब्द ऐसे हैं, जो 'है' की जगह 'स' के प्रयोग से अभिव्यक्त नहीं होते। वैसे हिन्दी में भी 'है' का उच्चारण लिपि के अनुसार तो "हई" होना चाहिये, हम केवल सुविधा के लिये इसे 'है' बोलते हैं।

मारवाड़ी भाषा की पारंपरिक लिपि

इसकी लिपि मोड़िया है। इन दिनों इसका प्रचलन प्राय: सामाप्त हो चुका है। सन् 2011 से कोलकाता के श्री शम्भु चौधरी ने पुन: इस लिपि पर नए सिरे से कार्य करना शुरू कर दिया है।

छत्तीसगढ़ी

छत्तीसगढ़ी भारत के छत्तीसगढ़ राज्य में बोली जाने वाली एक अत्यन्त ही मधुर व सरस भाषा है। यह हिन्दी के अत्यन्त निकट है और इसकी लिपि देवनागरी है। छत्तीसगढ़ी का अपना समृद्ध साहित्य व व्याकरण है।

छत्तीसगढ़ी 2 करोड़ लोगों की मातृभाषा है। यह पूर्वी हिन्दी की प्रमुख बोली है और छत्तीसगढ़ राज्य की प्रमुख भाषा है। राज्य की 82.56 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में तथा शहरी क्षेत्रों में केवल 17 प्रतिशत लोग रहते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि छत्तीसगढ़ का अधिकतर जीवन छत्तीसगढ़ी के सहारे गतिमान है। यह अलग बात है कि गिने-चुने शहरों के कार्य-व्यापार राष्ट्रभाषा हिन्दी व उर्दू, पंजाबी, उड़िया, मराठी, गुजराती, बाँग्ला, तेलुगू, सिन्धी आदि भाषा में एवं आदिवासी क्षेत्रों में हलबी, भतरी, मुरिया, माडिया, पहाड़ी कोरवा, उराँव आदि बोलियों के सहारे ही संपर्क होता है। इस सबके बावजूद छत्तीसगढ़ी ही ऐसी भाषा है, जो समूचे राज्य में बोली, व समझी जाती है। एक-दूसरे के दिल को छू लेने वाली यह छत्तीसगढ़ी एक तरह से छत्तीसगढ़ राज्य की संपर्क भाषा है। वस्तुतः छत्तीसगढ़ राज्य के नामकरण के पीछे उसकी भाषिक विशेषता भी है।

छत्तीसगढ़ी की प्राचीनता

सन् 875 ईस्वी में बिलासपुर जिले के रतनपुर में चेदिवंशीय राजा कल्लोल का राज्य था। तत्पश्चात् एक सहस्र वर्ष तक यहाँ हैहयवंशी नरेशों का राजकाज आरम्भ हुआ। कनिंघम (1885) के अनुसार उस समय का "दक्षिण कोसल" ही "महाकोसल" था और यही "बृहत् छत्तीसगढ़" था, जिसमें उड़ीसा, महाराष्ट्र और मध्यप्रदेश के कुछ जिले, अर्थात् सुन्दरगढ़, संबलपुर, बलाँगीर, बौदफुलवनी, कालाहाँड़ी, कोरापुट (वर्तमान ओड़िसा में), भंडारा, चंद्रपुर, शहडोल, मंडला, बालाघाट (वर्तमान मध्य प्रदेश में) शामिल थे। उत्तर में स्थित अयोध्या राज्य कोशल राज्य कहलाया जहाँ की बोली अवधी है। दक्षिण कौशल में अवधी की ही सहोदरा छत्तीसगढ़ी कहलाई। हैहयवंशियों ने इस अंचल में इसका प्रचार कार्य प्रारम्भ किया जो यहाँ पर राजकीय प्रभुत्व वाली सिद्ध हुई। इससे वे बोलियाँ बिखर कर पहाड़ी एवं वन्यांचलों में सिमट कर रह गई और इन्हीं क्षेत्रों में छत्तीसगढ़ी का प्राचीन रूप स्थिर होने लगा।

छत्तीसगढ़ी के प्रारम्भिक लिखित रूप के बारे में कहा जाता है कि वह 1703 ईस्वी के दन्तेवाड़ा के दंतेश्वरी मंदिर के मैथिल पण्डित भगवान मिश्र द्वारा लिखित शिलालेख में है।

ब्रजभाषा

ब्रजभाषा हिन्दी की एक उपभाषा है, जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश एवं उत्तराखंड में बोली जाती है। इसके अलावा यह भाषा हरियाणा, राजस्थान और मध्यप्रदेश के कुछ जनपदों में भी बोली जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह यह भी संस्कृत से जन्मी है। इस भाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य उपलब्ध है। भारतीय भक्ति काल में यह भाषा प्रमुख रही।

विक्रम की 13वीं शताब्दी से लेकर 20वीं शताब्दी तक ब्रजभाषा भारत के मध्यदेश की मुख्य साहित्यिक भाषा एवं साथ ही साथ समस्त भारत की साहित्यिक भाषा थी। विभिन्न स्थानीय भाषाई समन्वय के साथ समस्त भारत में विस्तृत रूप से प्रयुक्त होने वाली हिन्दी का पूर्व रूप यह 'ब्रजभाषा' अपने विशुद्ध रूप में आज भी आगरा, धौलपुर, मथुरा और अलीगढ़ जिलों में बोली जाती है जिसे हम 'केन्द्रीय ब्रजभाषा' भी कह सकते हैं। 19वीं शताब्दी में हिन्दी/हिन्दुस्तानी के आने के पहले ब्रजभाषा और अवधी ही उत्तर-मध्य भारत की दो प्रमुख साहित्यिक भाषाएँ थीं। ब्रजभाषा में ही अनेक भक्त कवियों ने अपनी रचनाएं की हैं जिनमें प्रमुख हैं–सूरदास, रहीम, रसखान, केशव, घनानंद, बिहारी, इत्यादि।

भौगोलिक विस्तार

अपने विशुद्ध रूप में ब्रजभाषा आज भी भरतपुर, आगरा, धौलपुर, हिण्डौन सिटी, मथुरा, अलीगढ़, हाथरस, मैनपुरी, एटा और मुरैना जिलों में बोली जाती है। इसे हम "केंद्रीय ब्रजभाषा" के नाम से भी पुकार सकते हैं। केंद्रीय ब्रजभाषा क्षेत्र के उत्तर पश्चिम की ओर बुलंदशहर जिले की उत्तरी पट्टी से इसमें खड़ी बोली की लचक आने लगती है। उत्तरी-पूर्वी जिलों अर्थात् बदायूँ और एटा जिलों में इसपर कन्नौजी का प्रभाव प्रारंभ हो जाता है। डॉ. धीरेंद्र वर्मा, "कन्नौजी" को ब्रजभाषा का ही एक रूप मानते हैं। दक्षिण की ओर ग्वालियर में पहुँचकर इसमें बुंदेली की झलक आने लगती है। पश्चिम की ओर गुड़गाँव तथा भरतपुर का क्षेत्र राजस्थानी से प्रभावित है।

ब्रज भाषा आज के समय में प्राथमिक तौर पर एक ग्रामीण भाषा है, जो कि मथुरा-भरतपुर केन्द्रित ब्रज क्षेत्र में बोली जाती है। यह मध्य दोआब के इन जिलों की प्रधान भाषा है–

(1) भरतपुर,
(2) मथुरा,
(3) आगरा,
(4) फिरोजाबाद,
(5) मैनपुरी,
(6) एटा,
(7) हाथरस,
(8) बुलंदशहर,
(9) गौतम बुद्ध नगर,
(10) अलीगढ़,
(11) पलवल।

कासगंज

गंगा के पार इसका प्रचार बदायूँ, बरेली होते हुए नैनीताल की तराई, उत्तराखंड के उधम सिंह नगर जिले तक चला गया है। उत्तर प्रदेश के अलावा इस भाषा का प्रचार राजस्थान के इन जिलों में भी है–

(1) भरतपुर
(2) धौलपुर
(3) हिण्डौन सिटी और करौली जिले के कुछ भाग (हिण्डौन सिटी), जिसके पश्चिम से यह राजस्थानी की उप-भाषाओं में जाकर मिल जाती है।

हरियाणा में यह दिल्ली के दक्षिणी इलाकों में बोली जाती है–फरीदाबाद जिला और गुड़गाँव और मेवात जिलों के पूर्वी भाग।

ब्रज और ब्रजभाषा

कुछ लेखकों ने ब्रजभाषा नाम से उसके क्षेत्र-विस्तार का कथन किया है। 'वंश भास्कर' के रचयिता सूरजमल ने ब्रजभाषा प्रदेश दिल्ली और ग्वालियर के बीच माना है। 'तुहफतुल हिंद' के रचयिता मिर्जा खाँ ने ब्रजभाषा के क्षेत्र का उल्लेख इस प्रकार किया है "भाषा' ब्रज तथा उसके पास-पड़ोस में बोली जाती है। ग्वालियर तथा चंदवार भी उसमें सम्मिलित हैं। गंगा-यमुना का दोआब भी ब्रजभाषा का क्षेत्र है।

लल्लूजी लाल के अनुसार ब्रजभाषा का क्षेत्र "ब्रजभाषा वह भाषा है, जो ब्रज, जिला ग्वालियर, भरतपुर, बटेश्वर, भदावर, अंतर्वेद तथा बुंदेलखंड में बोली जाती है। इसमें (ब्रज) शब्द मथुरा क्षेत्र का वाचक है।' लल्लूजी लाल ने यह भी लिखा है कि ब्रज और ग्वालियर की ब्रजभाषा शुद्ध एवं परिनिष्ठित है।

ग्रियर्सन ने ब्रजभाषा की सीमाएँ इस प्रकार लिखी हैं–

मथुरा केंद्र है। दक्षिण में आगरे तक, भरतपुर, धौलपुर और करौली तक ब्रजभाषा बोली जाती है। ग्वालियर के पश्चिमी भागों तथा जयपुर के पूर्वी भाग तक भी यही प्रचलित है। उत्तर में इसकी सीमा गुड़गाँव के पूर्वी भाग तक पहुँचती है। उत्तर-पूर्व में इसकी सीमाएँ दोआब तक हैं। बुलंदशहर, अलीगढ़, एटा तथा गंगा पार के बदाँयू, बरेली तथा नैनीताल के तराई परगने भी इसी क्षेत्र में हैं। मध्यवर्ती दोआब की भाषा को अंतर्वेदी नाम दिया गया है। अंतर्वेदी क्षेत्र में आगरा, एटा, मैनपुरी, फर्रूखाबाद तथा इटावा जिले आते हैं, किंतु इटावा और फर्रूखाबाद की भाषा इनके अनुसार कन्नौजी हैं, शेष समस्त भाग ब्रजभाषी है।

केलाग ने लिखा है कि राजपूताना की बोलियों के उत्तर-पूर्व, पूरे अपर दोआब तथा गंगा-यमुना की घाटियों में ब्रजभाषा बोली जाती है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने ग्रियर्सन द्वारा निर्दिष्ट कन्नौजी क्षेत्र को ब्रजी के क्षेत्र से अलग नहीं माना है। अपने सर्वेक्षण के आधार पर उन्होंने कानपुर तक, ब्रजभाषी क्षेत्र ही कहा है। उनके अनुसार उत्तर प्रदेश के मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बुलंदशहर, एटा, मैनपुरी, बदायूं तथा बरेली के जिले, पंजाब और गुड़गाँव जिले का पूर्वी भाग, राजस्थान में भरतपुर, धौलपुर, करौली तथा जयपुर का पूर्वी भाग, मध्यभारत में ग्वालियर का पश्चिमी भाग ब्रजी के क्षेत्र में आते हैं। चूँकि ग्रियर्सन साहब का यह मत लेखक को मान्य नहीं है कि कन्नौजी स्वतंत्र बोली है, इसलिए उत्तर प्रदेश के पीलीभीत, शाहजहाँपुर, फर्रूखाबाद, हरदोई, इटावा और कानपुर के जिले भी ब्रजभाषा के क्षेत्र में सम्मिलित कर लिए हैं। इस प्रकार बोली जाने वाली ब्रजभाषा का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत ठहरता है। एक प्रकार से प्राचीन मध्यदेश का अधिकांश भाग इसमें सम्मिलित हो जाता है।

विकास यात्रा

इसका विकास मुख्यतः पश्चिमी उत्तर प्रदेश और उससे लगते राजस्थान, मध्य प्रदेश व हरियाणा में हुआ। मथुरा, अलीगढ़, हाथरस, आगरा, मैनपुरी, एटा, भरतपुर, हिण्डौन सिटी, धौलपुर, ग्वालियर, मुरैना, पलवल आदि इलाकों में आज

भी यह मुख्य संवाद की भाषा है। इस एक पूरे इलाके में ब्रजभाषा या तो मूल रूप में या हल्के से परिवर्तन के साथ विद्यमान है। इसीलिये इस इलाके के एक बड़े भाग को ब्रजांचल या ब्रजभूमि भी कहा जाता है।

भारतीय आर्यभाषाओं की परम्परा में विकसित होनेवाली "ब्रजभाषा" शौरसेनी अपभ्रंश की कोख से जन्मी है। जब से गोकुल वल्लभ संप्रदाय का केंद्र बना, ब्रजभाषा में कृष्ण विषयक साहित्य लिखा जाने लगा। इसी के प्रभाव से ब्रज की बोली साहित्यिक भाषा बन गई। भक्तिकाल के प्रसिद्ध महाकवि महात्मा सूरदास से लेकर आधुनिक काल के विख्यात कवि श्री वियोगी हरि तक ब्रजभाषा में प्रबन्ध काव्य तथा मुक्तक काव्य समय-समय पर रचे जाते रहे।

ब्रज-क्षेत्र एवं ब्रजभाषा-शैली क्षेत्र

ब्रजभाषा के क्षेत्र विस्तार की दो स्थितियाँ रहीं। प्रथम स्थिति भाषा-वैज्ञानिक इतिहास के क्रम से उत्पन्न हुई। जब पश्चिमी या मध्यदेशीय भाषा अनेक कारणों से सामान्य ब्रज-क्षेत्र की सीमाओं का उल्लंघन करने लगी, तब स्थानीय रुपों से समन्वित होकर, वह एक विशिष्ठ भाषा शैली का रूप ग्रहण करने लगी और ब्रजभाषा-शैली का एक वृहत्तर क्षेत्र बना। जिन क्षेत्रों में यह कथ्य भाषा न होकर केवल साहित्य में प्रयुक्त कृत्रिम, मिश्रित और विशिष्ट रूप में ढल गई और विशिष्ट अवसरों, संदर्भों या काव्य रुपों में रुढ़ हो गई, उन क्षेत्रों को 'शैली क्षेत्र' माना जाएगा। शैली-क्षेत्र पूर्वयुगीन भाषा-विस्तार या शैली-विस्तार के सहारे बढ़ता है। पश्चिमी या मध्यदेशी अपभ्रंश के उत्तरकालीन रुपों की विस्तृति इसी प्रकार हुई।

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अनेक प्रदेशों के ब्रज भाषा भक्त-कवियों की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार प्रकट की है-

ब्रज की वंशी–ध्वनि के साथ अपने पदों की अनुपम झंकार मिलाकर नाचने वाली मीरा राजस्थान की थीं, नामदेव महाराष्ट्र के थे, नरसी गुजरात के थे, भारतेन्दु हरिश्चंद्र भोजपुरी भाषा क्षेत्र के थे। ...बिहार में भोजपुरी, मगही और मैथिली भाषा क्षेत्रों में भी ब्रजभाषा के कई प्रतिभाशाली कवि हुए हैं। पूर्व में बंगाल के कवियों ने भी ब्रजभाषा में कविता लिखी।

पश्चिम में राजस्थान तो ब्रजभाषा शैलियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करता ही रहा और भी पश्चिम में गुजरात और कच्छ तक ब्रजभाषा शैली समादृत थी। कच्छ के महाराव लखपत बड़े विद्याप्रेमी थे। ब्रजभाषा के प्रचार और प्रशिक्षण

के लिए इन्होंने एक विद्यालय भी खोला था। इस प्रकार मध्यकाल में ब्रजभाषा का प्रसार ब्रज एवं उसके आस-पास के प्रदेशों में ही नहीं, पूर्ववर्ती प्रदेशों में भी रहा। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़ एवं कच्छ आदि में भी ब्रजभाषा की रचनाएँ हुई।

ब्रजभाषा की बोलियाँ

ब्रजभाषा एक साहित्यिक एवं स्वतंत्र भाषा है और इसकी अपनी कई बोलियाँ हैं। ब्रजभाषा क्षेत्र की भाषागत विभिन्नता को दृष्टि में रखते हुए हम उसका विभाजन निम्नांकित रूप में कर सकते हैं–

(1) केंद्रीय ब्रज अर्थात् आदर्श ब्रजभाषा–अलीगढ़, मथुरा तथा पश्चिमी आगरे की ब्रजभाषा को "आदर्श ब्रजभाषा" नाम दिया जा सकता है।

(2) बुन्देली प्रभावित ब्रजभाषा–ग्वालियर के उत्तर पश्चिम में बोली जानेवाली भाषा को यह नाम प्रदान किया जा सकता है।

(3) राजस्थान की जयपुरी से प्रभावित ब्रजभाषा–यह भरतपुर तथा उसके दक्षिणी भाग में बोली जाती है।

(4) सिकरवाड़ी ब्रजभाषा–ब्रजभाषा का यह रूप ग्वालियर के उत्तर पूर्व के अंचल में प्रचलित है जहाँ सिकरवाड़ राजपूतों की बस्तियाँ पाई जाती हैं।

(5) जादोबाटी ब्रजभाषा–करौली के क्षेत्र तथा चंबल नदी के मैदान में बोली जानेवाली ब्रजभाषा को "जादौबारी" नाम से पुकारा गया है। यहाँ जादौ (यादव) राजपूतों की बस्तियाँ हैं।

(6) कन्नौजी से प्रभावित ब्रजभाषा–जिला एटा तथा तहसील अनूपशहर एवं अतरौली की भाषा कन्नौजी से प्रभावित है।

स्वरूप

जनपदीय जीवन के प्रभाव से ब्रजभाषा के कई रूप हमें दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु थोड़े से अंतर के साथ उनमें एकरूपता की स्पष्ट झलक हमें देखने को मिलती है।

ब्रजभाषा की अपनी रूपगत प्रकृति औकारान्त है अर्थात् इसकी एकवचनीय पुलिंग संज्ञाएँ तथा विशेषण प्रायः औकारान्त होते हैं, जैसे खुरपौ, यामरौ, माँझौ आदि संज्ञा शब्द औकारांत हैं। इसी प्रकार कारौ, गोरौ, साँवरौ आदि विशेषण पद औकारांत है। क्रिया का सामान्य भूतकालिक एकवचन पुलिंग रूप भी

ब्रजभाषा में प्रमुखरूपेण औकारान्त ही रहता है। यह बात अलग है कि उसके कुछ क्षेत्रों में श्रुति का आगम भी पाया जाता है। जिला अलीगढ़ की तहसील कोल की बोली में सामान्य भूतकालीन रूप श्रुति से रहित मिलता है, लेकिन जिला मथुरा तथा दक्षिणी बुलंदशहर की तहसीलों में श्रुति अवश्य पाई जाती है। जैसे–

- "कारौ छोरा बोलौ"–(कोल, जिला अलीगढ़)
- "कारौ छोरा बोल्यौ"–(माट जिला मथुरा)
- "कारौ छोरा बोल्यौ"–(डीग जिला भरतपुर)
- "कारौ लौंडा बोल्यौ"–(बरन, जिला बुलंदशहर)।

कन्नौजी की अपनी प्रकृति ओकारान्त है। संज्ञा, विशेषण तथा क्रिया के रूपों में ब्रजभाषा जहाँ औकारान्तता लेकर चलती है वहाँ कन्नौजी ओकारांतता का अनुसरण करती है। जिला अलीगढ़ की जनपदीय ब्रजभाषा में यदि हम कहें कि–"कारौ छोरा बोलौ" (= काला लड़का बोला) तो इसे ही कन्नौजी में कहेंगे कि–"कारो लरिका बोलो। भविष्यत्कालीन क्रिया कन्नौजी में तिड़ंतरूपिणी होती है, लेकिन ब्रजभाषा में वह कृदंतरूपिणी पाई जाती है। यदि हम "लड़का जाएगा" और "लड़की जाएगी" वाक्यों को कन्नौजी तथा ब्रजभाषा में रूपांतरित करके बोलें तो निम्नांकित रूप प्रदान करेंगे–

कन्नौजी में–(1) लरिका जइहै। (2) बिटिया जइहै।

ब्रजभाषा में–(1) छोरा जाइगौ। (2) छोरी जाइगी।

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि ब्रजभाषा के सामान्य भविष्यत् काल रूप में क्रिया कर्ता के लिंग के अनुसार परिवर्तित होती है, जब कि कन्नौजी में एक रूप रहती है।

इसके अतिरिक्त कन्नौजी में अवधी की भाँति विवृति (Hiatus) की प्रवृत्ति भी पाई जाती है जिसका ब्रजभाषा में अभाव है। कन्नौजी के संज्ञा, सर्वनाम आदि वाक्य पदों में संधिराहित्य प्रायः मिलता है, किंतु ब्रजभाषा में वे पद संधिगत अवस्था में मिलते हैं। उदाहरण–

(1) कन्नौजी–"बउ गओ" (वह गया)।

(2) ब्रजभाषा–"बो गयौ" (वह गया)।

उपर्युक्त वाक्यों के सर्वनाम पद "बउ" तथा "बो" में संधिराहित्य तथा संधि की अवस्थाएँ दोनों भाषाओं की प्रकृतियों को स्पष्ट करती हैं।

ब्रजभाषा का अन्य भाषाओं से सह-अस्तित्व

पश्चिम में राजस्थान तो ब्रजभाषा शैलियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करता ही रहा, गुजरात और कच्छ तक ब्रजभाषा शैली समादृत थी। कच्छ के महाराव लखपत बड़े विद्याप्रेमी थे। ब्रजभाषा के प्रचार और प्रशिक्षण के लिए इन्होंने एक विद्यालय भी खोला था।

सधुक्कड़ी

संत कवियों के सगुण भक्ति के पदों की भाषा तो ब्रज या परंपरागत काव्य भाषा है, पर निर्गुन बानी की भाषा नाथपंथियों द्वारा गृहीत खड़ी बोली या सधुक्कड़ी भाषा है। प्राचीन रचनाओं में ब्रजी और खड़ी बोली के रुपों का सह-अस्तित्व मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पद-काव्य रुप के लिए ब्रजी का प्रयोग रुढ़ होता जा रहा था। नाथ और संत भी गीतों में इसी शैली का प्रयोग करते थे। सैद्धांतिक चर्चा या निर्गुन वाणी सधुक्कड़ी में होती थी।

गुजरात और ब्रजभाषा

गुजरात की आर्रभिक रचनाओं में शौरसेनी अपभ्रंश की स्पष्ट छाया है। नरसी, केशवदास आदि कवियों की भाषा पर ब्रजभाषा का प्रभाव भी है और उन्होंने ब्रजी में काव्य रचना भी की है। हेमचंद्र के शौरसेनी के उदाहरणों की भाषा ब्रजभाषा की पूर्वपीठिका है। गुजरात के अनेक कवियों ने ब्रजभाषा अथवा ब्रजी मिश्रित भाषा में कविता की। भालण, केशवदास तथा अरवा आदि कवियों का नाम इस संबंध में उल्लेखनीय है। अष्टछापी कवि कृष्णदास भी गुजरात के ही थे। गुजरात में ब्रजभाषा कवियों की एक दीर्घ परम्परा है, जो बीसवीं सदी तक चली आती है। इस प्रकार ब्रजभाषा, गुजराती कवियों के लिए 'निज-शैली' ही थी।

मालवा और गुजरात को एक साथ उल्लेख करने की परम्परा ब्रज के लोक साहित्य में भी मिलती है।

बुन्देलखण्ड

ब्रजभाषा के लिए 'ग्वालियरी' का प्रयोग भी हुआ है। ब्रजभाषा शैली की सीमाएँ इतनी विस्तृत थीं कि ब्रजी और बुन्देली की संरचना प्रायः समान है। साहित्यिक शैली तो दोनों क्षेत्रों की बिल्कुल समान रही। ब्रज और बुन्देलखंड का सांस्कृतिक सम्बंध भी सदा रहा है।

सिन्ध और पंजाब

सिन्ध और पंजाब में गोस्वामी लालजी का नाम आता है। इन्होंने 1626 वि. में गोस्वामी विट्ठलनाथ का शिष्यत्व स्वीकार किया। सिंध में वैष्णव धर्म का प्रचार ब्रजभाषा में आरम्भ हुआ। लालजी ब्रजभाषा के मर्मज्ञ थे। इस प्रकार सिंध में ब्रजभाषा साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई।

पंजाब में गुरु नानक ने भी ब्रजभाषा में कविता की। आगे भी कई गुरुओं ने ब्रजभाषा में कविता रची। गुरुगोविन्द सिंह का ब्रजभाषा-कृतित्व महत्त्वपूर्ण है ही। गुरु दरबारों में व राजदरबारों में भी ब्रजभाषा के कवि रहते थे। इन कवियों में सिक्खों का विशेष स्थान है। सिख संतों ने धार्मिक प्रचार के लिए ब्रजभाषा को भी चुना।

बंगाल

सार्वदेशिक शौरसेनी के प्रभाव क्षेत्र में बंगाल भी था। बल्कि यों कहना चाहिए कि पूर्वी अपभ्रंश, पश्चिम भारत से ही पूर्व में आई। अवह का प्रयोग मैथिल कोकिल विद्यापति ने कीर्तिलता में किया। इसमें मिथिला और ब्रज के रुपों का मिश्रण है। बंगाल के सहजिया-साहित्य की रचना भी मुख्यतः इसी में हुई है।

वैष्णव साधु समाज की जो भाषा बनी उसका नाम ब्रजबुलि है। इसके विकास में मुख्य रुप से ब्रजी और मैथिली का योगदान था। बंगाल के कविवृंद मैथिली, बंगाली और ब्रजभाषा के मेल से घटित ब्रजबुली शैली को अपनाने लगे। इसी भाषा में गोविन्ददास, ज्ञानदास आदि कवियों का साहित्य मिलता है। मैथिली मिश्रित ब्रजी असम के शंकरदेव के कंठ से भी फूट पड़ी। बंगाल और उत्कल के संकीर्तनों की भी यही भाषा बनी।

महाराष्ट्र

ब्रजभाषा शैली का प्रसार महाराष्ट्र तक दिखलाई पड़ता है। सबसे प्राचीन रुप नामदेव की रचनाओं में मिलते हैं। ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास प्रभृति भक्त-संतों की हिंदी रचनाओं की भाषा, ब्रज और दक्खिनी हिंदी है।

मुस्लिम काल में भी शाहजी एवं शिवाजी के दरबार में रहने वाले ब्रजभाषा के कवियों का स्थान बना रहा। कवि भूषण तो ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि थे ही।

दक्षिण भारत

दक्षिण में खड़ी बोली शैली का ही 'दखनी' नाम से प्रसार हुआ। इन मुस्लिम राज्यों के आश्रित साहित्यकारों ने ग्वालेरी कविता का उल्लेख बड़ी श्रद्धा के साथ किया है। तुलसीदास के समकालीन मुल्ला वजही ने सबरस में ग्वालेरी के तीन दोहे उद्धृत किए हैं। ब्रज-शैली के या ब्रज के प्रचलित दोहों का प्रयोग वजही ने बीच-बीच में किया है। दक्खिन क्षेत्र खड़ी बोली शैली के विकास का क्षेत्र था। प्राय: गद्य रचनाओं में हरियाणवी बोली का प्रयोग मिलता है, पद्य रचना में ब्रजभाषा शैली का मिश्रण है। गद्य में लिखित प्रेमगाथाओं के बीच में ब्रजभाषा शैली के दोहे प्रयुक्त मिलते हैं। ब्रजभाषा शैली का संगीत समस्त भारत में प्रसिद्ध था। केरल के महाराजा राम वर्मा, 'स्वाति-तिरुनाल' के नाम से ब्रजभाषा में कविता करते थे।

राजस्थान

पूर्वी राजस्थान में, ब्रज क्षेत्रीय भाषा शैली को ग्रहण करती हुई, पिंगल नामक एक भाषा-शैली का जन्म हुआ। पिंगल शब्द राजस्थान और ब्रज के सम्मिलित क्षेत्र में विकसित और चारणों में प्रचलित ब्रजी की एक शैली के लिए प्रयुक्त हुआ है। पिंगल का संबंध शौरसेनी अपभ्रंश और उसके मध्यवर्ती क्षेत्र से है।

रासो की भाषा को इतिहासकारों ने ब्रज या पिंगल माना है। वास्तव में पिंगल ब्रजभाषा पर आधारित एक काव्य शैली थी, यह जनभाषा नहीं थी। इसमें राजस्थानी और पंजाबी का पुट है। ओजपूर्ण शैली की दृष्टि से प्राकृत या अपभ्रंश रुपों का भी मिश्रण इसमें किया गया है। इस शैली का निर्माण तो प्राकृत पैंगलम (12वीं–13वीं शती) के समय हो गया था, पर इसका प्रयोग चारण बहुत पीछे के समय तक करते रहे। पीछे पिंगल शैली भक्ति-साहित्य में संक्रमित हो गई।

अत: स्पष्ट हो जाता है कि ब्रजभाषा भाषा व ब्रज शैली के खंड-उपखंड समस्त भारत में बिखरे हुए थे। कहीं इनकी स्थिति सघन थी और कहीं विरल।

आधुनिक युग में भारतेन्दु व उनके पिता गिरधरदास ब्रजभाषा में रचना करते थे। यहाँ से खड़ी बोली व ब्रजभाषा का मिश्र रूप प्रारम्भ हुआ जो आधुनिक हिन्दी खड़ी बोली की पूर्व भूमिका बना। 1875 में हरिश्चंद्र चन्द्रिका में अमृतसर के कवि संतोष सिंह का कवित्त ब्रज मिश्रित हिन्दी का उदाहरण है–

हों द्विज विलासी वासी अमृत सरोवर कौ
काशी के निकट तट गंग जन्म पाया है।
शास्त्र ही पढ़ाया कर प्रीति पिता पंडित ने
पाया कवि पंथ राम कीन्हीं बड़ी दाया है॥
प्रेम को बढ़ाया अब सीस को नबाया देखो,
मेरे मन भाया कृष्ण पांय पे चढ़ाया है॥

हरियाणवी

हरियाणवी उत्तर भारत में बोली जाने वाली भाषाओं का एक समूह है।, इसे भाषा नहीं कहा जा सकता...वैसे तो हरियाणवी में कई लहजे हैं, साथ ही विभिन्न क्षेत्रों में बोलियों की भिन्नता है। उत्तर हरियाणा में बोली जाने वाली हरियाणवी थोड़ा सरल होती है तथा हिन्दी भाषी व्यक्ति इसे थोड़ा बहुत समझ सकते हैं। दक्षिण हरियाणा में बोली जाने वाली बोली को ठेठ हरियाणवी कहा जाता है। यह कई बार उत्तर हरियाणा वालों को भी समझ में नहीं आती। इसके अतिरिक्त विभिन्न क्षेत्रों में हरियाणवी भाषा समूह के कई रूप प्रचलित हैं जैसे बाँगर, राँघड़ी आदि।

बुंदेली

बुंदेली भारत के एक विशेष क्षेत्र बुन्देलखण्ड में बोली जाती है। यह कहना बहुत कठिन है कि बुंदेली कितनी पुरानी बोली है लेकिन ठेठ बुंदेली के शब्द अनूठे हैं, जो सदियों से आज तक प्रयोग में आ रहे हैं। बुंदेलखंडी के ढेरों शब्दों के अर्थ बंग्ला तथा मैथिली बोलने वाले आसानी से बता सकते हैं।

प्राचीन काल में बुंदेली में शासकीय पत्र व्यवहार, संदेश, बीजक, राजपत्र, मैत्री संधियों के अभिलेख प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। कहा तो यह भी जाता है कि औरंगजेब और शिवाजी भी क्षेत्र के हिंदू राजाओं से बुंदेली में ही पत्र व्यवहार करते थे। एक-एक क्षण के लिए अलग-अलग शब्द हैं। गीतों में प्रकृति के वर्णन के लिए, अकेली संध्या के लिए बुंदेली में इक्कीस शब्द हैं। बुंदेली में वैविध्य है, इसमें बांदा का अक्खड़पन है और नरसिंहपुर की मधुरता भी है।

बुंदेली का इतिहास

वर्तमान बुंदेलखंड चेदि, दशार्ण एवं कारुष से जुड़ा था। यहां पर अनेक जनजातियां निवास करती थीं। इनमें कोल, निषाद, पुलिंद, किराद, नाग, सभी

की अपनी स्वतंत्र भाषाएं थी, जो विचारों व अभिव्यक्तियों की माध्यम थीं। भरतमुनि के नाट्य शास्त्र में इस बोली का उल्लेख प्राप्त है, शबर, भील, चांडाल, सजर, द्रविड़ोद्भवा, हीना वने वारणम् व विभाषा नाटकम् स्मृतम् से बनाफरी का अभिप्रेत है। संस्कृत भाषा के विद्रोह स्वरुप प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। इनमें देशज शब्दों की बहुलता थी। हेमचंद्र सूरि ने पामरजनों में प्रचलित प्राकृत अपभ्रंश का व्याकरण दशवीं शती में लिखा। मध्यदेशीय भाषा का विकास इस काल में हो रहा था। हेमचन्द्र के कोश में विंध्येली के अनेक शब्दों के निघंटु प्राप्त हैं।

बारहवीं सदी में दामोदर पंडित ने उक्ति व्यक्ति प्रकरण की रचना की। इसमें पुरानी अवधी तथा शौरसेनी ब्रज के अनेक शब्दों का उल्लेख मिलता है। इसी काल में अर्थात एक हजार ईस्वी में बुंदेली पूर्व अपभ्रंश के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इसमें देशज शब्दों की बहुलता थी। पं. किशोरी लाल वाजपेयी, लिखित हिंदी शब्दानुशासन के अनुसार हिंदी एक स्वतंत्र भाषा है, उसकी प्रकृति संस्कृत तथा अपभ्रंश से भिन्न है। बुंदेली की माता प्राकृत शौरसेनी तथा पिता संस्कृत भाषा है। दोनों भाषाओं में जन्मने के उपरांत भी बुंदेली भाषा की अपनी चाल, अपनी प्रकृति तथा वाक्य विन्यास को अपनी मौलिक शैली है। हिंदी प्राकृत की अपेक्षा संस्कृत के निकट है।

मध्यदेशीय भाषा का प्रभुत्व अविच्छन्न रूप से ईसा की प्रथम सहस्त्राब्दी के सारे काल में और इसके पूर्व कायम रहा। नाथ तथा नाग पंथों के सिद्धों ने जिस भाषा का प्रयोग किया, उसके स्वरुप अलग-अलग जनपदों में भिन्न-भिन्न थे। वह देशज प्रधान लोकभाषा थी। इसके पूर्व भी भवभूति उत्तर रामचरित के ग्रामीणजनों की भाषा विंध्येली प्राचीन बुंदेली ही थी। संभवतः चंदेल नरेश गंडदेव (सन् 940 से 999 ई.) तथा उसके उत्तराधिकारी विद्याधर (999 ई. से 1025 ई.) के काल में बुंदेली के प्रारंभिक रूप में महमूद गजनवी की प्रशंसा की कतिपय पंक्तियां लिखी गई। इसका विकास रासो काव्य धारा के माध्यम से हुआ। जगनिक आल्हाखंड तथा परमाल रासो प्रौढ़ भाषा की रचनाएं हैं। बुंदेली के आदि कवि के रूप में प्राप्त सामग्री के आधार पर जगनिक एवं विष्णुदास सर्वमान्य हैं, जो बुंदेली की समस्त विशेषताओं से मंडित हैं।

बुंदेली के बारे में कहा गया है: बुंदेली वा या है जौन में बुंदेलखंड के कवियों ने अपनी कविता लिखी, बारता लिखवे वारों ने वारता (गद्य) लिखी. जा भाषा पूरे बुंदेलखंड में एकई रूप में मिलत आय। बोली के कई रूप जगा

के हिसाब से बदलत जात हैं। जई से कही गई है कि कोस-कोस पे बदले पानी, गांव-गांव में बानी. बुंदेलखंड में जा हिसाब से बहुत सी बोली चलन में हैं जैसे डंघाई, चौरासी पवारी, विदीशयीया(विदिशा जिला में बोली जाने वाली) आदि।

कन्नौजी

कन्नौज और उसके आस-पास बोली जाने वाली भाषा को कन्नौजी या कनउजी भाषा कहते हैं। 'कान्यकुब्ज' से 'कन्नौज' शब्द व्युत्पन्न हुआ और कन्नौज के आस-पास की बोली 'कन्नौजी' नाम से अभिहित की गयी। कन्नौज वर्तमान में एक जिला है, जो उत्तर प्रदेश में है। यह भारत का अति प्राचीन, प्रसिद्ध एवं समृद्ध नगर रहा है। इसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों रामायण आदि में मिलता है। कन्नौजी का विकास शौरसेनी प्राकृत की भाषा पांचाली प्राकृत से हुआ। इसीलिए आचार्य किशोरीदास बाजपेयी ने इसे पांचाली नाम दिया। वस्तुतः पांचाल प्रदेश की मुख्य बोली 'पांचाली' अर्थात् 'कन्नौजी' ही है। यह बोली उत्तर में हरदोई, शाहजहाँपुर और पीलीभीत तक तथा दक्षिण में इटावा, मैनपुरी की भोगाँव, मैनपुरी तथा करहल तहसील, एटा की एटा और अलीगंज तहसील, बदायूँ की बदायूँ तथा दातागंज तहसील, बरेली की बरेली, फरीदपुर तथा नवाबगंज तहसील, पीलीभीत, हरदोई (संडीला तहसील में गोसगंज तक), खेरी की मुहम्मदी तहसील तथा सीतापुर की मिम्रिख तहसील में बोली जाती है। स्पष्ट है कि उत्तर पांचाल के अनेक जनपदों में तथा दक्षिण पांचाल के लगभग समस्त जनपदों में 'कन्नौजी' का ही प्रचार-प्रसार है।

कन्नौजी का क्षेत्र

कन्नौजी का क्षेत्र बहुत विस्तृत नहीं है, परन्तु भाषा के सम्बंध में यह कहावत बड़ी सटीक है कि–

कोस-कोस पर पानी बदले दुइ-दुइ कोस में बानी।

व्यवहार में देखा जाता है कि एक गाँव की भाषा अपने पड़ोसी गाँव की भाषा से कुछ न कुछ भिन्नता लिए होती है। इसी आधार पर कन्नौजी की उपबोलियों का निर्धारण किया गया है।

कन्नौजी उत्तर प्रदेश के कन्नौज औरैया, मैनपुरी, इटावा, फर्रुखाबाद, हरदोई, शाहजहांपुर, कानपुर, पीलीभीत जिलों के ग्रामीण अंचल में बहुतायत से बोली जाती है। कन्नौजी भाषा/कनउजी, पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत आती है।

कन्नौजी की उप-बोलियाँ

कन्नौजी भाषा क्षेत्र में विभिन्न बोलियों का व्यवहार होता है, जिनको इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है– मध्य कन्नौजी, तिरहारी, पछरुआ, बंग्रही, शहजहाँपुरिया, पीलीभीती, बदउआँ, अन्तर्वेदी। पहचान की दृष्टि से कन्नौजी ओकारान्त प्रधान बोली है। ब्रजभाषा और कन्नौजी में मूल अन्तर यही है कि कन्नौजी के ओकारान्त और एकारान्त के स्थान पर ब्रजभाषा में 'औकारान्त' और 'ऐकारान्त' क्रियाएँ आती हैं-

गओ–गयौ, खाओ–खायौ चले–चलै, करे–करै

कन्नौजी की ध्वनियाँ

इसकी ध्वनियों में मध्यम 'ह' का लोप हो जाता है–जाहि, जाइ शब्दारम्भ में ल्ह, र्ह, म्ह् व्यंजन मिलते हैं–ल्हसुन, र्हट, महंगाई आदि। अन्त्य अल्पप्राण महाप्राण में बदल जाता है–हाथ-हात्। स्वरों में अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति पाई जाती है–अइँचत, जुआँ, इंकार, भउजाई, उंघियात, अनेंठ, मों (मुँह)। 'य' के स्थान पर 'ज' हो जाता है–यमुना-जमुना, यश-जस। 'व' के स्थान पर 'ब' का व्यवहार होता है–वर-बर, वकील-बकील। कहीं–कहीं पर 'व' के स्थान पर 'उ' भी प्रयुक्त होता है–अवतार-अउतार। उसमें अवधी की भाँति उकारान्त की प्रवृत्ति भी पाई जाती है–खेत-खेतु, मरत-मत्तु। कहीं-कहीं 'ख' के स्थान पर 'क' उच्चरित होता है–भीख-भीक, 'ण' 'ड़' हो जाता है–रावण-रावड़, गण-गड़। 'स' के स्थान पर 'ह'–मास्टर-महट्टर, सप्ताह-हप्ताह। उपेक्षाभाव से उच्चरित संज्ञा शब्दों में 'टा' प्रत्यय का योग विशेष उल्लेखनीय है–बनियाँ-बनेटा, किसान-किसन्टा, काछी-कछेटा, बच्चा-बच्चटा आदि।

अवधी

अवधी हिंदी क्षेत्र की एक उपभाषा है। यह उत्तर प्रदेश के "अवध क्षेत्र" (लखनऊ, रायबरेली, सुल्तानपुर, बाराबंकी, उन्नाव, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर, अयोध्या, जौनपुर, प्रतापगढ़, प्रयागराज, कौशाम्बी, अम्बेडकर नगर, गोंडा, बस्ती, बहराइच, बलरामपुर, सिद्धार्थनगर, श्रावस्ती तथा फतेहपुर में बोली जाती है। इसके अतिरिक्त इसकी एक शाखा बघेलखंड में बघेली नाम से प्रचलित है। 'अवध' शब्द की व्युत्पत्ति "अयोध्या" से है। इस नाम का एक सूबा के राज्यकाल में था। तुलसीदास ने अपने "मानस" में अयोध्या को 'अवधपुरी' कहा

है। इसी क्षेत्र का पुराना नाम 'कोसल' भी था जिसकी महत्ता प्राचीन काल से चली आ रही है।

भाषा शास्त्री डॉ. सर "जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन" के भाषा सर्वेक्षण के अनुसार अवधी बोलने वालों की कुल आबादी 1615458 थी जो सन् 1971 की जनगणना में 28399552 हो गई। मौजूदा समय में शोधकर्ताओं का अनुमान है कि 6 करोड़ से ज्यादा लोग अवधी बोलते हैं। भारत के उत्तर प्रदेश प्रान्त के 19 जिलों–सुल्तानपुर, अमेठी, बाराबंकी, प्रतापगढ़, प्रयागराज, कौशांबी, फतेहपुर, रायबरेली, उन्नाव, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, गोंडा, अयोध्या व अंबेडकर नगर में पूरी तरह से यह बोली जाती है, जबकि 7 जिलों–जौनपुर, मिर्जापुर, कानपुर, शाहजहांपुर, आजमगढ़, सिद्धार्थनगर, बस्ती और बांदा के कुछ क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता है। बिहार प्रांत के 2 जिलों के साथ पड़ोसी देश नेपाल के कई जिलों–बांके जिला, बर्दिया जिला, दांग जिला, कपिलवस्तु जिला, पश्चिमी नवलपरासी जिला, रुपन्देही जिला, कंचनपुर जिला आदि में यह काफी प्रचलित है। इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों–मॉरीशस, त्रिनिडाड एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड (नीदरलैंड) में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

गठन की दृष्टि से हिंदी क्षेत्र की उपभाषाओं को दो वर्गों–पश्चिमी और पूर्वी में विभाजित किया जाता है। अवधी पूर्वी के अंतर्गत है। पूर्वी की दूसरी उपभाषा छत्तीसगढ़ी है। अवधी को कभी-कभी बैसवाड़ी भी कहते हैं। परंतु बैसवाड़ी अवधी की एक बोली मात्र है, जो उन्नाव, लखनऊ, रायबरेली और फतेहपुर जिले के कुछ भागों में बोली जाती है।

तुलसीदास कृत रामचरितमानस एवं मलिक मुहम्मद जायसी कृत पद्मावत सहित कई प्रमुख ग्रंथ इसी बोली की देन है। इसका केन्द्र अयोध्या है। अयोध्या लखनऊ से 120 किमी की दूरी पर पूर्व में है। सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', पं महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, राममनोहर लोहिया, कुंवर नारायण, दिवाकर द्विवेदी की यह जन्मभूमि है। उमराव जान, आचार्य नरेन्द्र देव और राम प्रकाश द्विवेदी की कर्मभूमि भी यही है। रमई काका की लोकवाणी भी इसी भाषा में गुंजरित हुई। हिंदी के रीतिकालीन कवि द्विजदेव के वंशज अयोध्या का राजपरिवार है। इसी परिवार की एक कन्या का विवाह दक्षिण कोरिया के राजघराने में अरसा पहले हुआ था। हिंदी के वरिष्ठ आलोचक

विश्वनाथ त्रिपाठी ने अवधी भाषा और व्याकरण पर महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। फाह्यान ने भी अपने विवरण में अयोध्या का जिक्र किया है। आज की अवधी प्रवास और संस्कृतिकरण के चलते खड़ी बोली और अंग्रेजी के प्रभाव में आ रही है।

अवधी के पश्चिम में पश्चिमी वर्ग की बुंदेली और ब्रज का, दक्षिण में छत्तीसगढ़ी का और पूर्व में भोजपुरी बोली का क्षेत्र है। इसके उत्तर में नेपाल की तराई है।

अवधी भाषी क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार

अवधी प्रमुख रूप से भारत, नेपाल और फिजी में बोली जाती है। भारत में अवधी मुख्यत: उत्तर प्रदेश राज्य में बोली जाती है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और बिहार के कुछ जिलों में बोली जाती है। उत्तर प्रदेश के अवधी भाषी जिले: अमेठी, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, रायबरेली, प्रयागराज, कौशांबी, अम्बेडकर नगर, सिद्धार्थ नगर, गोंडा, बलरामपुर, बाराबंकी, अयोध्या, लखनऊ, हरदोई, सीतापुर, लखीमपुर खीरी, बहराइच, बस्ती एवं फतेहपुर।

नेपाल के अवधी भाषी जिले कपिलवस्तु, बर्दिया, डांग, रूपनदेही, नवलपरासी, कंचनपुर, बांके आदि तराई नेपाल के जिले।

इसी प्रकार दुनिया के अन्य देशों–मॉरीशस, त्रिनिडाड एवं टुबैगो, फिजी, गयाना, सूरीनाम सहित ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड व हॉलैंड (नीदरलैंड) में भी लाखों की संख्या में अवधी बोलने वाले लोग हैं।

व्याकरण

हिंदी खड़ी बोली से अवधी की विभिन्नता मुख्य रूप से व्याकरणात्मक है। इसमें कर्ता कारक के परसर्ग (विभक्ति) "ने" का नितांत अभाव है। अन्य परसर्गों के प्राय: दो रूप मिलते हैं–ह्रस्व और दीर्घ। (कर्म-संप्रदान-संबंध–क, काय करण-अपादान–स-त, से-तेय अधिकरण–म, मा)।

संज्ञाओं की खड़ीबोली की तरह दो विभक्तियाँ होती हैं–विकारी और अविकारी। अविकारी विभक्ति में संज्ञा का मूल रूप (राम, लरिका, बिटिया, मेहरारू) रहता है और विकारी में बहुवचन के लिए "न" प्रत्यय जोड़ दिया जाता है (यथा रामन, लरिकन, बिटियन, मेहरारुन)। कर्ता और कर्म के अविकारी रूप में व्यंजनान्त संज्ञाओं के अंत में कुछ बोलियों में एक ह्रस्व "उ" की श्रुति होती

है (यथा रामु, पूतु, चोरु)। किंतु निश्चय ही यह पूर्ण स्वर नहीं है और भाषा-विज्ञानी इसे फुसफुसाहट के स्वर-ह्रस्व "इ" और ह्रस्व "ए" (यथा सांझि, खानि, ठेलुआ, पेहंटा) मिलते हैं।

संज्ञाओं के बहुधा दो रूप, ह्रस्व और दीर्घ (यथा नद्दी नदिया, घोड़ा घोड़वा, नाऊ नउआ, कुत्ता कुतवा) मिलते हैं। इनके अतिरिक्त अवधी क्षेत्र के पूर्वी भाग में एक और रूप-दीर्घतर मिलता है (यथा कुतउना)। अवधी में कहीं-कहीं खड़ी बोली का ह्रस्व रूप बिलकुल लुप्त हो गया है, यथा बिल्ली, डिब्बी आदि रूप नहीं मिलते बेलइया, डेबिया आदि ही प्रचलित हैं।

सर्वनाम में खड़ी बोली और ब्रज के "मेरा तेरा" और "मेरो तेरो" रूप के लिए अवधी में "मोर तोर" रूप हैं। इनके अतिरिक्त पूर्वी अवधी में पश्चिमी अवधी के "सो" "जो" "को" के समानांतर "से" "जे" "के" रूप प्राप्त हैं।

क्रिया में भविष्य काल रूपों की प्रक्रिया खड़ीबोली से बिलकुल भिन्न है। खड़ीबोली में प्रायः प्राचीन वर्तमान (लट्) के तद्भव रूपों में–गा, गी, गे जोड़कर (यथा होगा, होगी, होंगे आदि) रूप बनाए जाते हैं। ब्रज में भविष्यत् के रूप प्राचीन भविष्यत्काल (लट्) के रूपों पर आधारित हैं। (यथा होइहैंउ भविष्यति, होइहोंउ भविष्यामि)। अवधी में प्रायः भविष्यत् के रूप तव्यत् प्रत्ययांत प्राचीन रूपों पर आश्रित हैं (होइबाउ भवितव्यम्)। अवधी की पश्चिमी बोलियों में केवल उत्तमपुरुष बहुवचन के रूप तव्यतांत रूपों पर निर्भर हैं। शेष ब्रज की तरह प्राचीन भविष्यत् पर। किंतु मध्यवर्ती और पूर्वी बोलियों में क्रमशः तव्यतांत रूपों की प्रचुरता बढ़ती गई है। क्रियार्थक संज्ञा के लिए खड़ीबोली में "ना" प्रत्यय है (यथा होना, करना, चलना) और ब्रज में "नो" (यथा होनो, करनो, चलनो)। परंतु अवधी में इसके लिए "ब" प्रत्यय है (यथा होब, करब, चलब)। अवधी में निष्ठा एकवचन के रूप का "वा" में अंत होता है (यथा भवा, गवा, खावा)। भोजपुरी में इसके स्थान पर "ल" में अंत होनेवाले रूप मिलते हैं (यथा भइल, गइल)। अवधी का एक मुख्य भेदक लक्षण है अन्यपुरुष एकवचन की सकर्मक क्रिया के भूतकाल का रूप (यथा करिसि, खाइसि, मारिसि)। य-"सि" में अंत होनेवाले रूप अवधी को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलते। अवधी की सहायक क्रिया में रूप "ह" (यथा हइ, हइं), "अह" (अहइ, अइई) और "बाटइ" (यथा बाटइ, बाटइं) पर आधारित हैं।

ऊपर लिखे गये लक्षणों के अनुसार अवधी की बोलियों के तीन वर्ग माने गए हैं–पश्चिमी, मध्यवर्ती और पूर्वी। पश्चिमी बोली पर निकटता के कारण ब्रज

का और पूर्वी पर भोजपुरी का प्रभाव है। इनके अतिरिक्त बघेली बोली का अपना अलग अस्तित्व है।

विकास की दृष्टि से अवधी का स्थान ब्रज, कन्नौजी और भोजपुरी के बीच में पड़ता है। ब्रज की व्युत्पत्ति निश्चय ही शौरसेनी से तथा भोजपुरी की मगधी प्राकृत से हुई है। अवधी की स्थिति इन दोनों के बीच में होने के कारण इसका अर्धमागधी से निकलना मानना उचित होगा। खेद है कि अर्धमागधी का हमें जो प्राचीनतम रूप मिलता है वह पाँचवीं शताब्दी ईसवी का है और उससे अवधी के रूप निकालने में कठिनाई होती है। पालि भाषा में बहुधा ऐसे रूप मिलते हैं जिनसे अवधी के रूपों का विकास सिद्ध किया जा सकता है। संभवतः ये रूप प्राचीन अर्धमागधी के रहे होंगे।

4

बदलते परिदृश्य में हिन्दी भाषा का स्वरूप

वर्तमान परिदृश्य में हिन्दी समूचे विश्व के आकर्षण का केन्द्र बनती जा रही है। विश्व के लगभग 140 प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय में हिन्दी का पठन-पाठन होना एक शुभ संकेत है। आज बाजार में अपना पाँव पसारे कई टी. वी. चैनलों को लगने लगा है कि हमें अगर भारत में लोकप्रियता अर्जित करनी है और पैसा कमाना है तो यह हिन्दी के बिना संभव नहीं। डिस्कवरी, नेशनल ज्योग्राफिकल चैनल एवं बच्चों के लोकप्रिय चैनल पोगो को अन्ततः अपने प्रसारण का हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत करना ही पड़ा।

आज का युग सूचना-क्रान्ति का युग है, जहाँ ज्ञान-विज्ञान का निरन्तर विकास होता जा रहा है। परस्पर सम्पर्क क्षेत्र भी बढ़ता जा रहा है, अतः ऐसी स्थिति में वह भाषा सर्वप्रिय और सर्वोपयोगी मानी जा सकती है, जो अन्तर्राष्ट्रीय सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। भाषा के प्रायः दो रूप माने जाते हैं—सामान्य अभिव्यक्तिपरक रूप तथा प्रगतिपरक अभिव्यक्ति रूप। जिसमें से प्रगतिपरक भाषा का सीधा सम्बन्ध ज्ञान-विज्ञान, तकनीक के क्षेत्र से रहता है और ज्यों-ज्यों विकास के चरण बढ़ते जाते हैं, इस प्रकार की भाषा की उपयोगिता भी बढ़ती जाती है। यह तथ्य भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि तकनीकी भाषा साहित्यिक भाषा से अलग करके नहीं देखी जा सकती। उसका

तकनीकी क्षेत्र में प्रयोग उसके मूल संरचनात्मक स्वरूप को वैसा ही बनाये रखता है, मात्र उसके प्रयोगजनक प्रकार्य का स्तर, क्षेत्र बढ़ जाता है, अतः इसको विशेष भाषा भी मान लिया जाता है। उसका यह विशेषीकृत रूप ही उसे वैज्ञानिक और तकनीकी भाषा का अभिधान ग्रहण करने के योग्य बनाता है। एक सामान्य शब्द है-बाजार। इसका विशेष प्रयोग है–'विश्व बाजार', 'दाल बाजार', 'काला बाजार' आदि। इसी प्रकार 'निजी' और 'सार्वजनिक' शब्द भी प्रयुक्त हैं–'निजी क्षेत्र', 'सार्वजनिक क्षेत्र'।

अतः यह सर्वमान्य तथ्य है कि भूमण्डलीकरण के दौर में तब तक कोई भाषा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपने को प्रस्थापित नहीं कर पाती है, जब तक वह भाषा अपनी प्रामाणिकता, अपनी शुद्धता एवं अपनी वैज्ञानिकता सिद्ध नहीं कर देती।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र–आज के दौर में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक क्षेत्र खुले हैं और खुलते चले जा रहे हैं। यहाँ उनमें से कुछ का उल्लेख है–

1. चिकित्सा और स्वास्थ्य,
2. यातायात,
3. व्यापार,
4. शिक्षा,
5. मीडिया,
6. चलचित्र,
7. तकनीक,
8. समाचार क्षेत्र,
9. विज्ञान,
10. औद्योगिक तकनीक,
11. आकाशवाणी,
12. दूरदर्शन,
13. कम्प्यूटर।

आज की हिन्दी भूमण्डलीकरण के दौर में वह सामर्थ्य अर्जित कर चुकी है, जिसके आधार पर वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपना स्थान बनाने में पूर्ण समर्थ है।। इसके दो आधार हैं–1. प्रयासजनित, 2. सामान्य प्रक्रिया।

प्रयासजनित–स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा माना गया, तो यह कहा गया कि इसमें उस तकनीकी क्षमता का अभाव है, जिसकी

आवश्यकता आज के युग में अनिवार्य है। अत: हमारे देश में इस प्रकार के प्रयास हुए–

(1) सन् 1955 ई. में श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु के सम्पादन में 'राजकीय प्रशासन शब्दावली' का दो खण्डों में प्रकाशन हुआ।

(2) 1962 ई. में उत्तर प्रदेश शासन शब्दकोश प्रकाशित हुआ।

(3) इसी क्रम में मध्य प्रदेश में 'प्रशासनिक शब्दकोष' और 'शासन शब्द प्रकाश' का प्रकाशन हुआ।

(4) राजस्थान सरकार द्वारा 1971 में 'हिन्दी प्रयोग मार्गदर्शिका' 1971 ई. में प्रकाशित की गयी।

(5) हरियाणा और हिमाचल में भी 'प्रशासनिक शब्दकोश' प्रकाशित हुआ।

(6) केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय एवं वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग के माध्यम से अनेक तकनीकी प्रकाशन सामने आए। भारत सरकार द्वारा 'वृहद् प्रशासन शब्दावली' और 'विधि शब्दावली' सामने आयी।

(7) 1950 ई. में ही 'वैज्ञानिक शब्दावली मंडल' की स्थापना की गई। उसने लगभग दस वर्ष के अन्तराल में तीन लाख वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्द तैयार किये, जिनका प्रकाशन केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय के माध्यम से 1981 के 'पारिभाषिक शब्द संग्रह' नाम से किया गया।

(8) 1961ई. में ही भारत सरकार ने वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग का गठन किया। यह आयोग आज भी हिन्दी की सेवा कर रहा है।

(9) केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के अन्तर्गत ही 'हिन्दी संयुक्त राष्ट्र संघ भाषा कोश' की योजना बनाकर हिन्दी-अरबी, हिन्दी-चीनी, हिन्दी फ्रांसीसी तथा हिन्दी–स्पेनी आदि कोशों की रचना भी करायी।

हिन्दी को समर्थ बनाने के प्रयास स्वतन्त्रता के बाद से ही नहीं शुरू हुए हैं, यह प्रयास मुगल काल में ही प्रारम्भ हो गये थे। मुगल शासन काल में महाराजा शिवाजी के शासन-काल में पंडित रघुनाथ ने प्रशासन, खाद्य सामग्री, रक्षा-व्यवस्था आदि विषयों से सम्बन्धित लगभग डेढ़ हजार शब्दों का एक कोश तैयार किया था।

1845 में लन्दन में प्रो. डैकन कोसे द्वारा 'हिन्दी मैनुअल' के दो भाग प्रकाशित कराये गये। 1848 में उनका 'हिन्दी अंग्रेजी कोश' भी सामने आया। एच. एच. विल्सन ने 1855 में 'ग्लॉसरी ऑफ जूडीशियल एण्ड रेवेन्यू टर्म्स' ग्रन्थ प्रकाशित किया।

आइये हम हिन्दी के उत्स की कथा जानें। हिन्दी की जननी संस्कृत है। लिपि, शब्दावली की दृष्टि से हिन्दी संस्कृत पर आधारित है और संस्कृत को 'देव भाषा' इसी अर्थ में कहा जाता है कि वह पूर्ण है, समृद्ध है। संस्कृत में जो तकनीकी साहित्य रचा गया, आर्यभट्ट, वाराहमिहिर आदि ने क्या अंग्रेजी का मुँह ताका था? नहीं। हमारी वैदिक गणित आज विश्व के दस विश्वविद्यालयों में शोध का विषय बन चुकी है तो क्या गणित के प्रत्येक सूत्र संकेत का उन्होंने अंग्रेजी अनुवाद किया है? चिकित्सा के क्षेत्र में हमारे ग्रन्थ आज अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व पा चुके हैं, क्या चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि द्वारा प्रयुक्त शब्दावली अपर्याप्त है। आवश्यकता, आविष्कार की जननी होती है और यह बात हिन्दी पर भी लागू होती है। ज्यों–ज्यों व्यवहार बढ़ता जा रहा है हिन्दी मँजती चली जा रही है।

सूचना प्रौद्योगिकी–इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से आकाशवाणी, दूरदर्शन, समाचार–पत्र के साथ ई–मेल (कम्प्यूटर) इंटरनेट तथा वेवसाइट आदि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

आज यह बात किसी से छिपी नहीं है कि सूचना प्रौद्योगिकी का ऐसा विलक्षण विस्फोट हुआ, कि दुनिया में उसका महत्त्व स्वीकारा गया। भारत के सूचना प्रौद्योगिकी ज्ञान में पूरे विश्व में प्रतिष्ठा अर्जित की। आज बड़े-बड़े देश भारतीय तकनीकी व्यक्तियों को अपने यहाँ आमंत्रित करने में जुटे हैं। साथ ही हिन्दी का प्रयोग अब इन सभी क्षेत्रों में होने लगा है। आज ई-मेल हिन्दी में चल चुका है और उसका सार्वजनिक प्रयोग हो चुका है।

कम्प्यूटर, आरम्भ में विदेशी यंत्र माना जाता था। 1984 में इसको लोगों ने देखा था। यह अंग्रेजी का गुलाम था। कम्प्यूटर में न तो कभी हिन्दुस्तानी ज्ञान को महत्त्व दिया गया, न ही यहाँ की भाषा को। पर हमारे भारतीय इंजीनियरों (1983 में आई.आई.टी. कानपुर) ने एक ऐसी तकनीक विकसित की, जिसके माध्यम से कम्प्यूटर हिन्दी की देवनागरी लिपि में तो काम कर ही सकता था, भारत की अन्य भाषाओं में भी वह कार्य कर सकता था। इसका नामकरण हुआ-जिस्ट कार्ड (Graphic Indian cript Terminal)। यह कार्ड कम्प्यूटर के CPU (Central Processing Unit) अर्थात् केन्द्रीय संसाधक एकांश में लगाते ही अंग्रेजी जानने वाला कम्प्यूटर हिन्दी सीख जाता था और बड़ी सरलता से वह हिन्दी में काम करने लगता था। परिणाम यह हुआ कि हिन्दी का प्रयोग कम्प्यूटर पर बड़ी सहजता से होने लगा। आज बैंक भी हिन्दी अपना रहे हैं और वहाँ के कम्प्यूटर हिन्दी में भी काम कर रहे हैं। बैंक के बाद कम्प्यूटर का प्रयोग सार्वजनिक

रूप से रेल विभाग में प्रारम्भ हुआ। वहाँ आरक्षण के क्षेत्र में यह प्रयुक्त हुआ। फल यह हुआ कि वहाँ के कम्प्यूटर हिन्दी बोलने लगे और आरक्षण की स्थिति, गाड़ियों की स्थिति–आगमन, प्रस्थान के विषय में जानकारी मिलने लगी और अब तो और बेचारा कम्प्यूटर घर बैठे आपका आरक्षण भी कर देता है।

अब एकदम नई तकनीक आ रही है। हिन्दी को कम्प्यूटर के लिए उपयोगी बनाने में सबसे अधिक सहायता की, हमारी लिपि और वर्णमाला के ध्वन्यात्मक स्वरूप ने। इसी कारण जिस्ट तकनीक को आसानी से अपनाया जाने लगा। इसके सहयोग के लिए एक मानक कोडिंग प्रणाली की भी पर्याप्त महत्ता है जिसको 'इस्की' (Indian tandard Code for Information Interchange) कहा जाता है, इसके माध्यम से उच्च प्रौद्योगिकी (HI-Tech) के क्षेत्र में नागरी (हिन्दी) सहित अन्य भारतीय भाषाएँ भी आसानी से कम्प्यूटर पर काम कर रही हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि इसके लिए 'इनस्क्रिप्ट' (Indian Language cript) uke ls ,d daqth iVy (Key Board) बनाया गया है, जो हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं तथा अंग्रेजी में भी काम कर सकता है, साथ ही लिप्यांतर की भी उसमें सामर्थ्य है।

अनुवाद कम्प्यूटर में अनुवाद की बड़ी समस्या थी, जिसे भी अब हल कर लिया गया है। पूना के 'सी–डेक' (उच्च कम्प्यूटरी विकास केन्द्र) (Centre for Developmento Advanced computers), ने 'टैग' (Tri Adjoining Gram) का भी विकास कर लिया है।

इतना ही नहीं अब तो हिन्दी के सॉफ्टवेयर भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं जिनमें अक्षर, आलेख शब्दावली, शब्दरत्न, मल्टीवर्ड, संगम, देवबेस, नारद, चाणक्य, एप्पल, सुलिपि, भाषा आदि शब्दों का उल्लेख है।

धीरे–धीरे विकास की गति बढ़ती जा रही है और आज डॉस, विंडोज और यूनिक्स परिवेश के अन्तर्गत हिन्दी में शब्द–संसाधन कार्य भी सहज सम्भव हो गया है। इसके साथ ही वर्तनी–संशोषक (Spell Checker) तथा 'ऑन लाइन शब्द कोश' सहित ई–मेल तथा वेव–प्रकाशन की तकनीक भी हिन्दी ज्ञाताओं ने विकसित कर ली है। 'इस्फॉक' (Intellingence Best cript Font Code), fyIl (Language Indenpendent Programme ubtypes) जैसी तकनीकें भी सामने आ गयी है साथ ही फिल्मों के हिन्दी में भी शीर्षक देने की सुविधा उपलब्ध है।

अनुवाद के क्षेत्र में मशीनी अनुवाद हेतु भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान, कानपुर तथा हैदराबाद विश्वविद्यालय द्वारा संयुक्त रूप से एक तकनीक

विकसित की गयी है जिसे 'अनुसारक' कहा जाता है, साथ ही पूना के वैज्ञानिकों द्वारा मन्त्र (lh–Msd Machine Assistant Translation Load) का भी विकास किया जा चुका है। इसके साथ ही आई.बी.एम. टाटा कम्पनी न भी आर. के. कम्प्यूटर्स के सहयोग से 'हिन्दी डॉस' नाम से भी एक विशिष्ट तकनीक उपजायी है जिसमें 'कमांड' और 'मैन्यू' भी हिन्दी में ही उपलब्ध है।

कम्प्यूटर का हिन्दीकरण अभी रूका नहीं है और आगे भी नहीं रूकने वाला है। 'मोटोरोला' ने 1997 में ही हिन्दी में 'पेजर' का विकास कर दिया था।

खेल जगत में भी हिन्दी सर चढ़कर बोल रही है। खेल, हमारे लिए राष्ट्रीय सम्मान की वस्तु है, जिसने आज अन्तर्राष्ट्रीय रूप ले लिया है। खेलों की जानकारी, खेलते समय खिलाड़ियों की स्थिति उनकी क्षमता, योग्यता, जय-पराजय का आँखों देखा हाल दूरदर्शन पर दिखाया जाता है और आकाशवाणी पर सुनाया जाता है। यह अंग्रेजी में तो आता ही है, क्योंकि अभी हम में गुलामी की ठसक बाकी है, पर हिन्दी आज इतनी समर्थ एवं सक्षम हो गयी है कि उसके माध्यम से आँखों देखा हाल सुनाया जाने लगा है। अब वे ही शब्द बोले जाते हैं, जो हिन्दी के हैं–बल्ला, गेंद, बल्लेबाजी, गेंदबाजी।

इसी प्रकार ट्रिपिल जम्प को 'त्रिकुट', लांग जम्प को' लम्बी कूद', हाई जम्प को 'ऊँची कूद'। साथ ही दौड़ रन, पारी, अनिर्णीत, शृंखला, पगबाघा शब्दों का प्रयोग ही रहा है। साथ ही अंग्रेजी के वे प्रचलित शब्द जिन्हें आम आदमी भी समझ लेता है, वे भी डटकर प्रयोग हो रहे हैं, विकेट, बेट, पिच, स्टम्प, अम्पायर, ओपनिंग। हिन्दी का सामर्थ्य विकास का सही रूप यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय शब्दावली का बरबस हिन्दीकरण न किया जाये। जो शब्द जनता की चेतना में बैठे हैं, उन्हें उसी रूप में प्रयुक्त होने दिया जाय। कार, प्लेटफार्म, स्कूल, कॉलेज, कैण्टीन, रेलवे लाइन, सिग्नल, टिकट आदि। इसके कारण हिन्दी की व्यावहारिक क्षमता का विकास ही होगा।

इस भूमण्डलीकरण के दौर में हिन्दी कितनी समर्थ होती जा रही है, यहाँ इसकी एक झलक मात्र ही प्रस्तुत की गयी है। हिन्दी सब दृष्टि से समर्थ थी, सक्षम थी। इस पर व्यर्थ के आरोप आज भी कम नहीं हुए हैं, पर हिन्दी निरंतर आगे बढ़ती चली जा रही है। आज मतदान में फोटो पहचान-पत्र, मतदाता सूचियाँ हिन्दी में आ चुकी हैं। साथ ही कई प्राचीन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ (Classic) ए सी. डी. (Computer Disc or Vedio Cassettee) में समा चुके हैं। 'गीता', 'उपनिषद्' आप 'अंतरताने' (Internet) पर भी सुन सकते हैं। हमारे युवाओं ने

'गीता सुपर साइट अन्तर क्षेत्र' का भी विकास करके यह बता दिया है कि हमारी हिन्दी विश्व भाषाओं में किसी से कम नहीं है।

हिन्दी में ग्लोबल संभावनाएँ–ज्यों–ज्यों दुनिया ग्लोबल हो रही है, हिन्दी की माँग बढ़ रही है। विश्व के अनेक देशों में हिन्दी का अध्ययन हो रहा है। अनुवाद का काम भी हो रहा है। पिछले दिनों अमरीकी स्कूलों में भी हिन्दी पढ़ने की माँग बढ़ी है।

पहले भारत सरकार की भारतीय सांस्कृतिक सम्बन्ध परिषद् विभिन्न देशों में तीन साल के लिए हिन्दी प्राध्यापक चुनकर भेजती थी, वह अब भी भेज रही है, पर अब अनेक देशों ने खुद भी नियुक्तियाँ करनी शुरू कर दी है। जापान, कोरिया, सिंगापुर में अब सीधे हिन्दी प्राध्यापक भर्ती हो रहे हैं। खाड़ी देशों के अलावा भी यूरोप, अमेरिका में भी हिन्दी शिक्षकों की माँग है।

हिन्दी भाषा के विविध रूप

भाषा का सर्जनात्मक आचरण के समानान्तर जीवन के विभिन्न व्यवहारों के अनुरूप भाषिक प्रयोजनों की तलाश हमारे दौर की अपरिहार्यता है। इसका कारण यही है कि भाषाओं को सम्प्रेषणपरक प्रकार्य कई स्तरों पर और कई सन्दर्भों में पूरी तरह प्रयुक्त सापेक्ष होता गया है। प्रयुक्त और प्रयोजन से रहित भाषा अब भाषा ही नहीं रह गई है।

भाषा की पहचान केवल यही नहीं कि उसमें कविताओं और कहानियों का सृजन कितनी सप्राणता के साथ हुआ है, बल्कि भाषा की व्यापकतर संप्रेषणीयता का एक अनिवार्य प्रतिफल यह भी है कि उसमें सामाजिक सन्दर्भों और नये प्रयोजनों को साकार करने की कितनी संभावना है। इधर संसार भर की भाषाओं में यह प्रयोजनीयता धीरे–धीरे विकसित हुई है और रोजी–रोटी का माध्यम बनने की विशिष्टताओं के साथ भाषा का नया आयाम सामने आया है–वर्गाभाषा, तकनीकी भाषा, साहित्यिक भाषा, राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा, बोलचाल की भाषा, मानक भाषा आदि।

1. बोलचाल की भाषा

'बालेचाल की भाषा' को समझने के लिए 'बोली' (Dialect) को समझना जरूरी है। 'बोली' उन सभी लोगों की बोलचाल की भाषा का वह मिश्रित रूप है जिनकी भाषा में पारस्परिक भेद को अनुभव नहीं किया जाता है।

विश्व में जब किसी जन-समूह का महत्त्व किसी भी कारण से बढ़ जाता है तो उसकी बोलचाल की बोली 'भाषा' कही जाने लगती है, अन्यथा वह 'बोली' ही रहती है। स्पष्ट है कि 'भाषा' की अपेक्षा 'बोली' का क्षेत्र, उसके बोलने वालों की संख्या और उसका महत्त्व कम होता है। एक भाषा की कई बोलियाँ होती हैं, क्योंकि भाषा का क्षेत्र विस्तृत होता है।

जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारस्परिक सम्पर्क होता है, तब बालेचाल की भाषा का प्रसार होता है। आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुई आपसी व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से भी जाना जाता है। यह भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है।

2. मानक भाषा

भाषा के स्थिर तथा सुनिश्चित रूप को मानक या परिनिष्ठित भाषा कहते हैं। भाषा-विज्ञान कोश के अनुसार 'किसी भाषा की उस विभाषा को परिनिष्ठित भाषा कहते हैं, जो अन्य विभाषाओं पर अपनी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित कर लेती है तथा उन विभाषाओं को बोलने वाले भी उसे सर्वाधिक उपयुक्त समझने लगते हैं।

मानक भाषा शिक्षित वर्ग की शिक्षा, पत्राचार एवं व्यवहार की भाषा होती है। इसके व्याकरण तथा उच्चारण की प्रक्रिया लगभग निश्चित होती है। मानक भाषा को टकसाली भाषा भी कहते हैं। इसी भाषा में पाठ्य-पुस्तकों का प्रकाशन होता है। हिन्दी, अंग्रेजी, फ्रेंच, संस्कृत तथा ग्रीक इत्यादि मानक भाषाएँ हैं।

किसी भाषा के मानक रूप का अर्थ है, उस भाषा का वह रूप जो उच्चारण, रूप-रचना, वाक्य-रचना, शब्द और शब्द-रचना, अर्थ, मुहावरे, लोकोक्तियाँ, प्रयोग तथा लेखन आदि की दृष्टि से, उस भाषा के सभी नहीं तो अधिकांश सुशिक्षित लोगों द्वारा शुद्ध माना जाता है। मानकता अनेकता में एकता की खोज है, अर्थात यदि किसी लेखन या भाषिक इकाई में विकल्प न हो तब वही मानक होगा, किन्तु यदि विकल्प हो तो अपवादों की बात छोड़ दें तो कोई एक मानक होता है। जिसका प्रयोग उस भाषा के अधिकांश शिष्ट लोग करते हैं। किसी भाषा का मानक रूप ही प्रतिष्ठित माना जाता है। उस भाषा के लगभग समूचे क्षेत्र में मानक भाषा का प्रयोग होता है।

मानक भाषा एक प्रकार से सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक होती है। उसका सम्बन्ध भाषा की संरचना से न होकर सामाजिक स्वीकृति से होता है। मानक भाषा को इस रूप में भी समझा जा सकता है कि समाज में एक वर्ग मानक होता है, जो अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण होता है तथा समाज में उसी का बोलना-लिखना, उसी का खाना-पीना, उसी के रीति-रिवाज अनुकरणीय माने जाते हैं। मानक भाषा मूलत: उसी वर्ग की भाषा होती है।

3. सम्पर्क भाषा

अनेक भाषाओं के अस्तित्व के बावजूद जिस विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है, उसे सम्पर्क भाषा कहते हैं। एक ही भाषा परिपूरक भाषा और सम्पर्क भाषा दोनों ही हो सकती है। आज भारत में सम्पर्क भाषा के तौर पर हिन्दी प्रतिष्ठित होती जा रही है, जबकि अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेजी सम्पर्क भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गई है। सम्पर्क भाषा के रूप में जब भी किसी भाषा को देश की राष्ट्रभाषा अथवा राजभाषा के पद पर आसीन किया जाता है तब उस भाषा से कुछ अपेक्षाएँ भी रखी जाती हैं।

जब कोई भाषा 'lingua franca' के रूप में उभरती है तब राष्ट्रीयता या राष्ट्रता से प्रेरित होकर वह प्रभुतासम्पन्न भाषा बन जाती है। यह तो जरूरी नहीं कि मातृभाषा के रूप में इसके बोलने वालों की संख्या अधिक हो पर द्वितीय भाषा के रूप में इसके बोलने वाले बहुसंख्यक होते हैं।

4. राजभाषा

जिस भाषा में सरकार के कार्यों का निष्पादन होता है, उसे राजभाषा कहते हैं। कुछ लोग राष्ट्रभाषा और राजभाषा में अन्तर नहीं करते और दोनों को समानार्थी मानते हैं। लेकिन दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। राष्ट्रभाषा सारे राष्ट्र के लोगों की सम्पर्क भाषा होती है जबकि राजभाषा केवल सरकार के कामकाज की भाषा है। भारत के संविधान के अनुसार हिन्दी संघ सरकार की राजभाषा है। राज्य सरकार की अपनी-अपनी राज्य भाषाएँ हैं। राजभाषा जनता और सरकार के बीच एक सेतु का कार्य करती है। किसी भी स्वतंत्र राष्ट्र की उसकी अपनी स्थानीय राजभाषा उसके लिए राष्ट्रीय गौरव और स्वाभिमान का प्रतीक होती है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों की अपनी स्थानीय भाषाएँ राजभाषा हैं। आज हिन्दी हमारी राजभाषा है।

5. राष्ट्रभाषा

देश के विभिन्न भाषा-भाषियों में पारस्परिक विचार-विनिमय की भाषा को राष्ट्रभाषा कहते हैं। राष्ट्रभाषा को देश के अधिकतर नागरिक समझते हैं, पढ़ते हैं या बोलते हैं। किसी भी देश की राष्ट्रभाषा उस देश के नागरिकों के लिए गौरव, एकता, अखंडता और अस्मिता का प्रतीक होती है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रभाषा को राष्ट्र की आत्मा की संज्ञा दी है। एक भाषा कई देशों की राष्ट्रभाषा भी हो सकती है, जैसे अंग्रेजी आज अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा कनाडा इत्यादि कई देशों की राष्ट्रभाषा है। संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा तो नहीं दिया गया है लेकिन इसकी व्यापकता को देखते हुए इसे राष्ट्रभाषा कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में राजभाषा के रूप में हिन्दी, अंग्रेजी की तरह न केवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा है, बल्कि उसकी भूमिका राष्ट्रभाषा के रूप में भी है। वह हमारी सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा है। महात्मा गांधी जी के अनुसार किसी देश की राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो सरकारी कर्मचारियों के लिए सहज और सुगम हो, जिसको बोलने वाले बहुसंख्यक हों और जो पूरे देश के लिए सहज रूप में उपलब्ध हो। उनके अनुसार भारत जैसे बहुभाषी देश में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा के निर्धारित अभिलक्षणों से युक्त है।

उपर्युक्त सभी भाषाएँ एक-दूसरे की पूरक हैं। इसलिए यह प्रश्न निरर्थक है कि राजभाषा, राष्ट्रभाषा, सम्पर्क भाषा आदि में से कौन सर्वाधिक महत्त्व का है, जरूरत है हिन्दी को अधिक व्यवहार में लाने की।

बदलते परिदृश्य में हिन्दी भाषा की स्वीकार्यता

भाषा भावों और विचारों की संवाहक होती है। भाषा का स्वरूप निरंतर बदलता रहता है और यह सभी भाषाओं के बारे में कहा जा सकता है। हम सभी इस तथ्य से अवगत हैं कि वर्तमान हिन्दी का उद्भव संस्कृत भाषा से हुआ है और काल के अनुसार यह पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का चोला बदलती हुई वर्तमान स्वरूप को प्राप्त हुई।

हिन्दी एक आधुनिक भारत-आर्य भाषा है तथा यह भारतीय-यूरोपीय भाषाओं के परिवार से संबंधित भाषा है और संस्कृत की वंशज है, जो भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमाओं में आर्यन बसने वालों की बोली से उद्भूत है। समय की अवधि के साथ विकास के विभिन्न चरणों से गुजरती हुई शास्त्रीय संस्कृत से पालि-प्राकृत और अपभ्रंश तक, हिन्दी का उद्भव 10वीं शताब्दी में पाया जाता है।

हिन्दी को हिन्दवी, हिन्दुस्तान और खड़ी बोली के रूप में भी जाना जाता था। देवनागरी लिपि में लिखी गई हिन्दी (जो विश्व की वर्तमान लेखन प्रणाली के बीच सबसे वैज्ञानिक लेखन प्रणाली है) भारत गणराज्य की राष्ट्रीय आधिकारिक भाषा है और इसे दुनिया के सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा के रूप में स्थान दिया गया है। इसके अलावा हिन्दी बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश और राजस्थान राज्य की राज्यभाषा भी है। दुनियाभर में लगभग 600 मिलियन लोग हिन्दी को पहली या दूसरी भाषा के रूप में बोलते हैं।

हिन्दी का साहित्यिक इतिहास 12वीं शताब्दी में पाया जाता है। भारतीय-आर्यन भाषाओं के विकास के तीन अलग-अलग चरणों को विद्वानों द्वारा सुझाया गया है। वे हैं–(ए) प्राचीन (2400 ईसा पूर्व–500 ईसा पूर्व), (बी) मध्ययुगीन (500 ईसा पूर्व–1100 ईस्वी) और (सी) आधुनिक (1100-वर्तमान तक)। प्राचीन काल वैदिक और शास्त्रीय संस्कृत की अवधि है जिसके परिणामस्वरूप मध्यकाल के दौरान पालि, प्राकृत और अपभ्रंश भाषाओं का विकास हुआ। दक्षिण एशिया की अधिकांश आधुनिक भारत-आर्य भाषाएं, जैसे हिन्दी, बंगला, उड़िया, गुजराती, नेपाली, मराठी, पंजाबी, आधुनिक 'काल' में विकसित हुईं।

आज हम जो हिन्दी बोलते हैं, वह ब्रज भाषा एवं अवधी भाषा से परिवर्तित होकर इस स्वरूप में आई है। ब्रज भाषा का विस्तार अवधी भाषा से तुलनात्मक रूप से व्यापक है। बाद में ये भाषाएं अन्य पड़ोसी भाषाओं से प्रभावित हुईं। चूंकि मुगलों, तैमूर और अलेक्जेंडर के भारत पर हमले से भारत में नई संस्कृतियों का आविर्भाव हुआ एवं ब्रज भाषा पर उर्दू, अरब और फारसी भाषा का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगा। अवधी भाषा पर संस्कृत का बेहतर प्रभाव पड़ा। विश्वविद्यालयों और साहित्यिक समृद्ध क्षेत्रों के पास जैसे इलाहाबाद, वाराणसी, नालंदा, पाटलिपुत्र, गया आदि क्षेत्रों में प्रचलन के कारण अवधी भाषा (18वीं शताब्दी तक) संस्कृत मूल को बनाए रखने में सक्षम रही। 18वीं शताब्दी की शुरुआत तक नवाब युग की स्थापना हुई थी। इसके बाद उर्दू और फारसी भाषाओं ने अवधी को प्रभावित किया।

दुनिया का कोई भी देश भारत की भाषायी विविधता की बराबरी नहीं कर सकता। भारत में 'मातृभाषा' की संख्या 1, 652 है (जैसा कि 1961 की जनगणना में सूचीबद्ध है)। भारत का संविधान किसी भी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का दर्जा नहीं देता है, हालांकि भारत गणराज्य की केंद्र सरकार की आधिकारिक

भाषा हिन्दी है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343, राजभाषा अधिनियम 1963 (यथा संशोधित 1967) के अनुसार 8वीं अनुसूची में 22 भाषाओं की सूची है जिन्हें अनुसूचित भाषाओं के रूप में संदर्भित किया गया है। इन भाषाओं को मान्यता, स्थिति और आधिकारिक प्रोत्साहन दिया गया है। इसके अलावा भारत सरकार ने 1500-2000 वर्षों के अपने लंबे इतिहास के कारण तमिल, संस्कृत, कन्नड़, तेलुगू, मलयालम और उड़िया को शास्त्रीय भाषा का गौरव दिया है। सभी भारतीय भाषाएं इन 4 समूहों में से 1 में आती हैं–भारत-आर्य, द्रविड़ियन, चीनी-तिब्बती और अफ्रीका-एशियाटिक।

अंडमान द्वीपों की विलुप्त और लुप्तप्राय भाषाओं में 5वां परिवार है। हिन्दी दुनिया की दूसरी सबसे बोली जाने वाली भाषा है (अंग्रेजी और स्पेनिश के बाद)। डॉ. जयंती प्रसाद नौटियाल ने भाषा शोध अध्ययन 2005 के हवाले से लिखा है कि विश्व में हिन्दी जानने वालों की संख्या 1 अरब 2 करोड़ 25 लाख 10 हजार 352 (1, 02, 25, 10, 352) है, जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या केवल 90 करोड़ 4 लाख 6 हजार 614 (90, 04, 06, 614) है। दुनिया की अन्य प्रमुख भाषाओं की तरह हिन्दी की देशभर में कई अलग-अलग बोली और भाषाएं हैं। ब्रज भाषा (खड़ी बोली) हरियाणवी, बुंदेली, अवधी (बाघेली), (कन्नौजी), (छत्तीसगढ़ी) प्रमुख हैं।

सोशल मीडिया पर हिन्दी भाषा के बढ़ते इस्तेमाल पर भारत में बहुत विवाद हैं। ये कटु सत्य है कि भाषा, भारत में एक विवादास्पद मुद्दा है। 1963 में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343 में 'देवनागरी लिपि में हिन्दी' को भारत की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया था। देवनागरी लिपि संभवतः विश्व की सर्वाधिक वैज्ञानिक लिपि है। यह जैसी लिखी जाती है, वैसी ही पढ़ी जाती है। इसमें अंग्रेजी के GO और TO तथा PUT और BUT जैसा उच्चारण-वैषम्य नहीं हैं। इसी प्रकार CALM और BALM जैसे शब्दों में L के साइलेंट होने जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। हिन्दी में कैपिटल और स्माल लेटर का भी झंझट नहीं है। उच्चारण और एक्सेंट की समस्या नहीं है।

वैश्विक स्तर पर वही भाषा टिक पाएगी जिसका शब्द भंडार या शब्दकोश बड़ा हो। उस भाषा में औदात्य भी होना चाहिए ताकि वह अपने शब्द भंडार को निरंतर बढ़ाता जाए। इस लिहाज से हिन्दी का यह सौभाग्य रहा है कि भारत में अनेक विदेशियों ने आकर शासन किया जिनमें तुर्क, मंगोल, अफगान, मुगल, फ्रांसीसी, पुर्तगीज और विशेषकर अंग्रेज थे। इन शासकों ने अपनी भाषा में दरबार

चलाया और देश पर शासन किया। फलस्वरूप हिन्दी भाषा शासकीय भाषाओं से प्रभावित हुई और उसका शब्द भंडार जो संस्कृत के प्रभाव से पहले ही अत्यधिक समृद्ध था, वह और भी संपन्न होता गया।

अंग्रेजी भारत में फैली हुई है और इसका व्यापक रूप से उपयोग भारत के अभिजात्य वर्ग, नौकरशाही और कंपनियों द्वारा किया जाता है। यह अपने लिखित रूप में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश दस्तावेजों के आधिकारिक संस्करण में अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है। अधिकांश पैन-इंडियन लिखित संचार के साथ-साथ कई प्रमुख मीडिया आउटलेट अंग्रेजी का उपयोग करते हैं। हालांकि बोले जाने वाले स्तर पर अंग्रेजी बहुत कम प्रचलित है और भारतीय भाषाओं का अधिक व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। हिन्दी अपने पूर्वोत्तर और दक्षिण को छोड़कर अधिकांश देश के लिए लिंगुआ फ्रैंका के रूप में उपयोग में लाई जाती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि लगभग 130 करोड़ भारतीयों या आबादी का लगभग 10 प्रतिशत अंग्रेजी बोल या समझ जाता है। इसका मतलब है कि लगभग 90 प्रतिशत भारतीय अंग्रेजी को समझते या बोलते नहीं हैं।

वैश्विक स्तर पर भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण एवं किसी भी भाषा की सम्प्रेषणीय क्षमता के लिए आवश्यक शर्त है कि उस भाषा की निज अभिव्यक्ति क्षमता कितनी है। यदि भाषा विश्व के सभी लोगों को अपनी बात समझाने में असमर्थ है या यूं कहें कि उसमें सम्प्रेषणीयता का स्तर उच्च नहीं है, तो वैश्विक धरातल पर भाषा के टिके रहने का कोई आधार और औचित्य नहीं है।

हिन्दी में ज्ञान-विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं। अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा द्वारा हिन्दी माध्यम में एमबीए का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह 'इकोनॉमिक टाइम्स' तथा 'बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिन्दी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि 'स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरंभ हुए थे, वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णतः हिन्दी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, 'ईएसपीएन' तथा 'स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिन्दी में कमेंट्री देने लगे हैं।

विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए लाखों लोगों को एक नई भाषा सिखाने के लिए समय और संसाधनों को नष्ट करना मूर्खता है। वास्तव में कितनी नौकरियों को अंग्रेजी के ज्ञान की आवश्यकता है? मेरे हिसाब से एकल इकाई के प्रतिशत से ज्यादा नहीं। भारत की वृद्धि अकेले सेवा उद्योग और कॉल सेंटर द्वारा संचालित नहीं की जा सकती है, भारतीयों का 1 प्रतिशत ऐसे उद्योगों में काम करता होगा, जो अपनी नौकरी के लिए कौशल के रूप में अंग्रेजी सीखते हैं। भारत के विकास के लिए यह जरूरी है कि जिस भाषा को आबादी का एक बड़ा हिस्सा बोलता हो उसे उसी में शिक्षित किया जाए ताकि वह अधिक कुशल बनकर अपनी आजीविका कमा सके।

बैंकिंग क्षेत्र में हिन्दी के विकास की बात है, तो वर्ष 2003-04 से लेकर अब तक (2007-08) की आरबीआई की वार्षिक रिपोर्ट तथा दिसंबर 2007 में प्रकाशित 'भारत में बैंकिंग की प्रवृत्ति एवं प्रगति संबंधी रिपोर्ट 2006-07' के हवाले से ज्ञात होता है कि 1990 के दशक से ही विश्व बैंकिंग उद्योग में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। परिचालन, भूमंडलीकरण, विनियमन और सूचना प्रौद्योगिकी के विकास के सहारे यह क्षेत्र निरंतर प्रगति कर रहा है।

हिन्दी में तकनीकी प्रगति के साथ आय के नए तरीके भी सामने आ रहे हैं। हाल ही में हैदराबाद के गूगल ऑफिस में 'गुगल ब्लॉगर्स' की एक मीटिंग हुई। इस मीटिंग में यह बताया गया कि सिर्फ गूगल के हिन्दी ब्लॉगर्स की सालाना आय करोड़ों में होगी। सामान्य रूप से हर ब्लॉग्स का ऑनर जो महीने में 30 से 35 घंटे के लिए देखा जाता है, वह 25 से 200 डॉलर तक कमाई कर सकता है। इस तरह स्पष्ट है कि तकनीकी विकास से हिन्दी भाषा का विकास, राष्ट्र का विकास और रोजगार के नए स्वरूपों का परिचायक है। भारत और हिन्दी के विकास के लिए शासन और समाज को हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओं के प्रति मित्रवत होना होगा ताकि जल्द से जल्द भारतीयों को यह एहसास हो जाए कि आर्थिक और राजनीतिक सफलता के लिए अंग्रेजी आवश्यक नहीं है।

'वॉशिंगटन पोस्ट' के अनुसार हिन्दी 2050 तक अधिकांश व्यावसायिक दुनिया पर हावी रहेगी, इसके बाद स्पेनिश, पुर्तगाली, अरबी और रूसी। यदि आप अपनी भाषा पाठ्यक्रम से अधिक पैसा प्राप्त करना चाहते हैं तो ऊपर सूचीबद्ध भाषाओं में से एक का अध्ययन करना शायद एक सुरक्षित शर्त है।

केंद्र सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों की पहल के साथ कई सामाजिक एवं साहित्यिक संस्थाएं हिन्दी को एक लिंक भाषा के रूप में प्रसार के लिए काम कर रहे हैं। हिन्दी भाषी आबादी का बड़ा भाग विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के लिए एक आकर्षक बाजार बनाता है और इस बाजार का लाभ उठाने के लिए लोगों को भाषा से परिचित होने की जरूरत है।

इस तरह की भूमिका के लिए किसी भी भारतीय भाषा से लगभग कोई प्रतिस्पर्धा नहीं होने के कारण देश के एक बड़े हिस्से पर एक लिंगुआ फ्रैंका के रूप में हिन्दी की पहले से मौजूद स्थिति उन लोगों के लिए आकर्षण का केंद्र बनती जा रही है, जो अपने क्षेत्र के बाहर रोजगार के अवसर तलाशते हैं। कई स्वैच्छिक एजेंसियां हिन्दी के ज्ञान को फैलाने में व्यस्त हैं और फिल्मों तथा रेडियो एवं सोशल मीडिया के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से उनके कार्य में सहायता मिलती है।

हमें हिन्दी भाषा के अस्तित्त्व को बनाए रखना है तो सबसे पहले सैकड़ों बोलियों जैसे बुंदेलखंडी, भोजपुरी, गढ़वाली, अवधी, मगधी आदि की रक्षा करनी होगी। ऐसी क्षेत्रीय बोलियां ही हिन्दी की प्राण वायु हैं। आज हिन्दी का ज्ञान गैर-हिन्दी क्षेत्रों में फैल रहा है और देश में सार्वभौमिक लिंगुआ फ्रैंका के रूप में हिन्दी के उद्‌भव का सूर्य चमक रहा है।

बदलती-बिगड़ती और बिखरती हिंदी

हिन्दी के लिए यह संक्रमण का दौर है। यह ऐसा दौर है जिसमें भूमंडलीकरण की शक्तियां किसी भी ऐसे विचार का विरोध कर उसे नष्ट करने या अप्रासंगिक बनाने पर आमादा हैं, जो मनुष्य को महज उपभोक्ता बनाने का विरोध करता है। हम जानते हैं कि भाषा विचारों की वाहक होती है और किसी भाषा का गद्य जितना परिमार्जित और सुथरा होगा वह भाषा और उसे बोलने वाली जाति उतनी ही प्रभावशाली होती है, अंग्रेजी का उदाहरण हमारे समक्ष है ही। हिन्दी पर इस दौर में जो आक्रमण हुए हैं उनमें मुख्यत: तीन आक्रमण हैं: पहला है इतिहास की गति में स्वत: होने वाले बदलाव, दूसरा है विचार विरोधियों का भाषा को बिगाड़ना और तीसरा मान्यता के नाम पर बोलियों-उपभाषाओं का विखण्डनवादी रवैया।

किसी भी बनती हुई भाषा का स्वरूप स्थिर नहीं रहता और वह समय के साथ बदलती रहती है। हिंदी का जीवन मुश्किल से दो सौ साल का है। एक

युवा भाषा के इस छोटे से जीवन में बनने और बिगड़ने की प्रक्रिया सतत रही है। किसी हिन्दी भाषी के मुंह से अब 'आवेंगे', 'जावेंगे' जैसे शब्द मुश्किल से सुनाई देते हैं, जबकि 70-80 वर्ष पूर्व की हिंदी में ये शब्द अत्यंत स्वाभाविक थे। यह भाषा की स्वाभाविक गति है कि वह कठिनता से सरलता की तरफ बढ़े। इसी तरह एक भाषा में दूसरी भाषाओं-बोलियों के शब्दों का मिलना भी स्वाभाविक है, हिंदी अपने क्षेत्रों की बोलियों से बनी है तो उसमें यह मिलावट और अधिक है। अवधी, ब्रज, राजस्थानी, भोजपुरी, कुमाऊंनी और गढ़वाली के साथ मैथिल तथा पंजाबी के शब्द भी हिंदी में बहुतायत से आते रहे हैं और अभी भी यह प्रक्रिया जारी है। अपने शब्दों, क्रिया पदों का धीरे-धीरे विलोप होते जाना भी इसी प्रसंग में समझना चाहिए। इसमें ध्यान रखना होगा कि देशज भाषाओं-बोलियों के शब्दों का हिंदी में आगमन हिंदी के स्वाभाविक स्वरुप को विकृत न करे। मसलन-'मैंने खाना खाया' के स्थान पर 'हम खाना खा लिया हूँ' को सही मानने की हड़बड़ी न फैल जाए।

इसी तरह हिंदी में दूसरी भाषाओं के शब्दों के घालमेल का सवाल है। आज की हिंदी में संस्कृत, उर्दू, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों की मिलावट अत्यंत सहज और स्वीकार्य लगती है लेकिन कई शुद्धतावादी इसे उचित नहीं समझते। इस पर विचार किया जाना चाहिए और हिंदी की प्रकृति तथा आवश्यकता के अनुसार लचीला रूख अपनाया जाना सही होगा। मसलन ट्रेन के लिए 'रेल' शब्द का उपयोग करने में कोई बुराई नहीं, लेकिन चाय के प्याले या प्याली के लिए 'कप्स' का उपयोग नितांत फूहड़ होगा। इसका सहज तर्क हमारी भाषा के बुनियादी संस्कारों और परिवेशजन्य विशिष्टताओं से है। कंप्यूटर हो या ट्रैक्टर यदि ये पश्चिम से आए हैं अंग्रेजी शब्दावली में इन्हें समझा जा सकता है तो इसमें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए जैसे अरबों के साथ आई जलेबी हमारी भाषा ही नहीं जीवन का अंग हो गई। इस प्रसंग में यह भी विचारणीय है कि ऑक्सफोर्ड द्वारा प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी शब्दकोष के प्रत्येक नए संस्करण में समाहित हिंदी शब्दों पर हम लोगों को प्रसन्नता होती है तो एक युवा और बन रही भाषा हिंदी में दो-चार सौ अंग्रेजी भाषा के शब्द आ जाने में कोई हेठी न समझी जानी चाहिए।

दूसरा सवाल है भाषा का विरूपीकरण। हिन्दी अखबारों और टीवी चैनलों को नये फैशन में ढालने की चाहत और जिद में यह काम दोतरफा हो रहा है। एक तरफ बाजारवादी शक्तियां हैं, जो भाषा को बिगाड़ने में अपने

स्वार्थों की सिद्धि देखती है, वहीं हमारे हिंदी भाषी युवा पत्रकार और टीवी पर समाचार-कार्यक्रम प्रस्तोता अपने को आधुनिक दिखाने की चाह में जिस भाषा का प्रयोग करते हैं वह सर्वथा फूहड़ और हास्यास्पद होती है। असल में वे आधुनिक होने को विचारों से नहीं फैशन से जोड़ते हैं, जबकि आधुनिक होना विचारों से सम्भव होता है। यह हिन्दी बहुत नुकसान करने वाली है जिसमें–'यह दिल मांगे मोर' या 'दिवाली सेलिब्रेशन' जैसे पदबंध होते हैं। असल में यह भाषा को विरूपित और अंततः नष्ट करने का रास्ता है जिसमें भाषा की गति इस तरह की हो जाती है जिसमें वह किसी गंभीर विचार को वहन करने की स्थिति में ही न रह जाए। जब भाषा असमर्थ हो जाएगी तभी तो मानसिक गुलामी सम्भव हो सकेगी। मोबाइल फोन के एसएमएस ने यह काम कर दिया है जहां न हिंदी है और न अंग्रेजी, इस भाषा के साथ आगे आने वाली पीढ़ियाँ क्या अपनी बात किसी समर्थ ढंग से कह भी सकेंगी? बिगड़ी हुई भाषा में संवादोत्सुक युवा इस अभ्यास के बाद क्या एक प्रेम पत्र लिखने में भी समर्थ रह जायेंगे? अभी चिट्ठियाँ खत्म हुई हैं और उनके साथ विचार करने की आत्मीयता, संबंधों की गर्मजोशी और कल्पना-लालित्य की भी जैसे भाषा से विदाई की शुरुआत हो गई है। हालत यह है कि एक युवा अपने बारे में 10 मिनट नहीं बोल सकता। यह भाषा को बिगाड़ने और उसे 'फन' की चीज बनाने का ही परिणाम है। अनेक ऐसे युवा मिलेंगे जो किसी विषय पर विचार करने की कोशिश तो करते हैं लेकिन गंभीर भाषा का अभ्यास न होने से वे कोई कायदे की बात कह पाने में असमर्थ ही रहते हैं। इस कारण उनका विचार भी आधा-अधूरा और अपरिपक्व रह जाता है, उनकी हालत कुछ ऐसी होती है कि वे विडंबनाओं के अजब पुतले भर रह जाते हैं। यह विचार शून्य युवा समूह केवल उपभोक्ता हो सकता है, जो बाजार की चाहतों को पूरा करने के अलावा कुछ भी करने में असमर्थ रहता है। वह न कला संस्कृति की समझ रख पाता है और न ही किसी गंभीर कला सृजन का आस्वादन कर ले पाने में ही समर्थ हो पाता है।

भाषा के असमर्थ होते जाने का ही परिणाम है कि हल्का और अगंभीर बोलने वाले राजनेता भी उच्च पदों पर पहुँचते जा रहे हैं। आजादी के बाद बनी संसद में जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद और राममनोहर लोहिया ही नहीं अनेक ऐसे नेता थे जिन्होंने समर्थ भाषा के कारण अपनी मान्यताओं को देश के सामने रखा।

तीसरा खतरा भीतर से है और जिसे बहुत चिंताजनक मानना चाहिए। हिन्दी की बोलियाँ रही विभिन्न उपभाषाएँ-भाषाएँ अब अपने स्वतन्त्र अस्तित्त्व की आकांक्षा में हिन्दी से अलग होना चाहती हैं और इसके लिए वे संविधान से मान्यता चाहती हैं। ऊपर से इसमें अधिक बुराई न देख सकने वाले मित्र विखंडन की इस प्रक्रिया को भाषाओं के विकास से जोड़ देते हैं। लेकिन क्या यह सचमुच भाषाओं का विकास है?

भारतीय गणराज्य के समर्थन और लगभग अधिकांश लोगों द्वारा नैतिक रूप से राष्ट्रभाषा मान ली गई हिन्दी को जब हम 60 साल में ज्ञान-विज्ञान की भाषा बनाने में सफल नहीं हो सके तब राजस्थानी और भोजपुरी जैसी भाषाओं में इस बात की कल्पना ही कठिन है कि वैज्ञानिक विचार या राजनैतिक दर्शन पर कोई आधुनिक अध्ययन इन भाषाओं में मिले। दैनंदिन जीवन के तमाम काम भी जब हम इन भाषाओं में नहीं कर पा रहे हैं तब पुराने साहित्य के भरोसे अलग अस्तित्व की मांग करना सचमुच अनोखा है। यह सही है कि ये भाषाएँ माँ के दूध के साथ हमें मिली हैं लेकिन हमें भूलना नहीं चाहिए कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए ब्रज और अवधी ने अपने को हिंदी ही मान लिया था।

आज भी कुछ लोगों को लगता है कि सुनहरे अतीत वाली इन भाषाओं का स्वतंत्र अस्तित्व अधिक समीचीन होता लेकिन विचारणीय है कि जिस आधुनिक संवेदना ने हिंदी का स्वरूप निर्मित किया था उस संवेदना का निर्वाहन गद्य में इन भाषाओं के लिए कितना सम्भव था। कवि सुमित्राननदन पंत ने इस बात पर लम्बी बहस की है कि काव्य भाषा ब्रज के स्थान पर खड़ी बोली हिंदी को क्यों होना चाहिए। रोजमर्रा की आवश्यकता पूर्ति के साथ ज्ञान-विज्ञान की शब्दावली से संपन्न होकर ही कोई भाषा सचमुच भाषा हो सकती है, कविताओं से साहित्य का निर्माण हो सकता है, लेकिन जीवन की कठोर वास्तविकताएं भाषा को व्यापक और मजबूत गद्य वाली होने की मांग करती हैं। भला आज भी सूरदास और तुलसीदास सरीखा लेखन किन बोलियों-भाषाओं में कोई कर पाया है?

इस दौर में असल चुनौती मनुष्य को उपभोक्ता बन जाने से रोकने की है जिसकी अंतिम परिणति धन पशु हो जाने में है। भाषा वह औजार है, जो मनुष्य को पशु से भिन्न करती है और विचारवान बनाती है। इस चुनौती के समय हमें विखंडन का नहीं सामूहिकता का मार्ग चुनना होगा जो हमारी भाषा को सचमुच आधुनिक बनाए और जिसमें ज्ञान-विज्ञान का निर्माण सुगम बन सके।

भाषाओं का वैश्विक परिपृश्य और हिन्दी

जब हम भाषा के वैश्विक परिदृश्य की बात करते हैं तो सबसे पहले हमें भाषा विशेष की क्षमताओं के बारे में आश्वस्त होना पड़ता है। वैश्विक धरातल पर कोई भी भाषा यूँ ही अनायास उभर कर अपना वर्चस्व नहीं बना सकती। इसके पीछे भाषा की सनातनता का भी महत्त्वपूर्ण हाथ है। स्वतंत्र भारत में जब पहला लोक-सभा निर्वाचन हुआ था उस समय हिन्दी भाषा विश्व में पाँचवें पायदान पर थी। आज उसे प्रथम स्थान का दावेदार माना जा रहा है। भाषा की वैश्विकता के दो प्रमुख आधार हैं। प्रथम यह कि आलोच्य भाषा कितने बड़े भू-भाग में बोली जा रही है और उस पर कितना साहित्य रचा जा रहा है। दूसरी अहम् बात यह है कि वह भाषा कितने लोगों द्वारा व्यवहृत हो रही है। इस पर विचार करने से पूर्व किसी भाषा का वैश्विक परिदृश्य क्या होना चाहिए और एतदर्थ किसी भाषा विशेष से क्या-क्या अपेक्षाएँ हैं, इस पर चर्चा होना प्रासंगिक एवं समीचीन है।

विश्व स्तर पर किसी भाषा के प्रख्यापित होने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि उसका एक विशाल और प्रबुद्ध काव्य-शास्त्र हो, उसमें लेखन की एक सुदीर्घ और सुगठित परंपरा हो, साहित्य-भंडार समृद्ध हो। उसमें अनेक वैविध्यपूर्ण विधाएँ हों और उन विधाओं पर सतत एवं अव्याहत प्रचुर लेखन प्रवहमान हो। साथ ही, उस भाषा की कम से कम एक विधा ऐसी अवश्य हो जो विश्व स्तर पर स्वीकार्यता पा चुकी हो। वैश्विक स्तर पर वही भाषा टिक पाएगी जिसका शब्द-भंडार या शब्द-कोश बड़ा हो। उस भाषा में औदात्य भी होना चाहिए ताकि वह अपने शब्द-भंडार को निरंतर बढ़ाता जाए। इस लिहाज से हिन्दी का यह सौभाग्य रहा है कि भारत में अनेक विदेशियों ने आकर शासन किया जिनमें तुर्क, मंगोल, अफगान, मुगल, फ्रांसीसी, पुर्तगीज और विशेषकर अंग्रेज थे। इन शासकों ने अपनी भाषा में दरबार चलाया और देश का शासन किया। फलस्वरूप हिन्दी भाषा शासकीय भाषाओं से प्रभावित हुई और उसका शब्द भंडार जो संस्कृत के प्रभाव से पहले ही अत्यधिक समृद्ध था, वह और भी संपन्न होता गया। आज अरबी, फारसी, उर्दू, फ्रांसीसी, पुर्तगाली और अंग्रेजी आदि भाषाओं के शब्दों को आत्मसात कर हिन्दी विश्व की श्रेष्ठ भाषाओं की जमात में शामिल है।

वैश्विक स्तर पर भाषा को जमने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक शर्त है वह है भाषा की निज अभिव्यक्ति क्षमता। यदि भाषा विश्व के

सभी लोगों को अपनी बात समझाने में असमर्थ है या यूँ कहें कि उसमे संप्रेषणीयता का स्तर उच्च नहीं है और भाषा में विचार-विनिमय की आप्यायिनी शक्ति नहीं है, हमारा संलाप एक-दूसरे को सही तरीके से प्रभावित नहीं कर पा रहा है तो वैश्विक धरातल पर भाषा के टिके रहने का न कोई आधार है और न औचित्य।

विश्व में हजारों भाषाएँ हैं लेकिन कुछ ही भाषाओं के साहित्य का स्तर इतना समुन्नत है कि उस भाषा की रचनाओं का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो। जिस भाषा का जितना अधिक साहित्य विश्व की अन्यान्य भाषाओं में अनूदित किए जाने की एक निरंतर परंपरा रहेगी, निश्चित रूप से उसकी प्रयोजनीयता प्रामाणिक मानी जाएगी और विश्व स्तर पर उसकी प्रतिष्ठा अक्षुण्ण बनी रहेगी। डॉ. करुणाशंकर उपाध्याय के अनुसार विश्वस्तरीय भाषा ऐसी होनी चाहिए कि 'उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके।'

वैश्विक परिदृश्य के अंतर्गत भाषा में यह गुण होना भी अपरिहार्य है कि वह आवश्यकता के अनुरूप अपने ही शब्द भंडार से नए शब्द गठित कर सके जैसे हिन्दी ने 'ट्रेजेडी' को 'त्रासदी' और 'रोमांटिक' को 'रूमानी' बनाया। भाषा के इस लचीले गुण से ही पारिभाषिक शब्दावलियाँ गठित होती हैं। शासन के कार्य में आने वाले अनेक शब्दों की बड़ी व्यापक पारिभाषिक शब्दावली हिन्दी में उपलब्ध है। यही नहीं विज्ञान और प्रौद्योयोगिकी की नित्य संवर्धनशील शब्दावलियाँ हिन्दी भाषा में गठित हुई हैं। वैश्विक भाषा के लिए यह भी आवश्यक है कि वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में भी समर्थ हो।

भाषा-लिपि का भी वैश्विक परिदृश्य में बड़ा महत्त्व है। लिपि का संगठन वैज्ञानिक आधार पर होना चाहिए। लिपि का सरल एवं सुबोध होना भी आवश्यक है। लिपि ऐसी न हो कि जिसके विलेखन में आर्टिस्टिक प्रतिभा की आवश्यकता पड़े। लिपि सरल एवं आयास रहित होनी चाहिए और उसमें परिष्कार की

संभावनाएं भी हों जो विलेखन की दुरुहता का परिहार कर सकें। अक्षर ऐसे हों, जिनके उच्चारण में विशेष आयास की आवश्यकता न हो और जिनका शुद्ध एवं परिष्कृत उच्चारण संभव हो और उनमें संगीतात्मकता एवं लय हो जैसे हिन्दी में स रे ग म---संगीतात्मक हैं।

इस संचार युग में जो भाषा समय के साथ ताल से ताल मिलाकर चल सके जिसमें नवीन प्रयोगों और अनुसंधानों को आत्मसात करने की क्षमता हो केवल वही भाषा वैश्विक परिदृश्य पर टिक सकती है। अतः भाषा को ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासनों के अधीन वांग्मय सृजित एवं प्रकाशित करने तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने हेतु सक्षम होना आवश्यक है। वैश्विक स्तर के धरातल पर टिकने वाली भाषा से यह भी अपेक्षित है कि वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो और वह अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक भी हो, साथ ही वह जनसंचार माध्यमों में बडे पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।

वैश्विक भाषा के लिए जो सर्वाधिक अपेक्षित बात है, वह यह है कि वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त कर मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में भी समर्थ हो तथा उसमे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' जैसी उदात्त भावनाओं का समावेश भी हो।

बीसवीं शती के अंतिम दो दशकों में हिंदी का अंतर्राष्ट्रीय विकास बहुत तेजी से हुआ है। वेब, विज्ञापन, संगीत, सिनेमा और बाजार के क्षेत्र में हिंदी की मांग जिस तेजी से बढ़ी है वैसी किसी और भाषा में नहीं हुआ है। आज हिन्दी विश्व के सभी महाद्वीपों एवं उनमें स्थित लगभग 140 देशों में बोली जाती है। विश्व के लगभग 150 विश्वविद्यालयों तथा सैकड़ों छोटे-बड़े केंद्रों में विश्वविद्यालय स्तर से लेकर शोध स्तर तक हिंदी के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था हुई है। विदेशों से 25 से अधिक पत्र-पत्रिकाएँ लगभग नियमित रूप से हिंदी में प्रकाशित हो रही हैं। यूएई के 'हम एफ एम' सहित अनेक देश हिंदी कार्यक्रम प्रसारित कर रहे हैं, जिनमें बीबीसी, जर्मनी के डॉयचे वेले, जापान के एनएचके वर्ल्ड और चीन के चाइना रेडियो इंटरनेशनल की हिंदी सेवा विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

आज वह विश्व के आकाश में चन्द्रिका की तरह छिटक रही है। तेजी से विकसित होती अर्थव्यवस्था, मीडिया के वर्चस्व, वैश्वीकरण एवं उदारीकरण ने हिंदी के विकास में अहम भूमिका निभायी है। उदारीकरण ने हिंदी को बाजार की भाषा बनाया, क्योंकि विश्व के पूंजीवादी देशों की व्यावसायिक दृष्टि भारत को एक बड़े बाजार के रूप में देखती है। प्रयोगकर्ताओं की संख्या के आधार पर 1952 में हिंदी विश्व में पाँचवें स्थान पर थी। 1980 के आस-पास वह चीनी और अंग्रेजी के बाद तीसरे स्थान पर आई। 1991 की जनगणना में हिंदी को मातृभाषा घोषित करने वालों की संख्या के आधार पर पाया गया कि यह पूरे विश्व में अंग्रेजी भाषियों की संख्या से अधिक है। सन् 1998 में यूनेस्को प्रश्नावली को दिए गए जवाब में भारत सरकार के केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के तत्कालीन निदेशक प्रोफेसर महावीर सरन जैन ने 'संयुक्त राष्ट्र संघ की आधिकारिक भाषाएँ एवं हिन्दी' शीर्षक जो विस्तृत आलेख भेजा उसके बाद विश्व स्तर पर यह स्वीकृत हो चुका है कि वाचकों की संख्या के आधार पर चीनी भाषा के बाद हिन्दी का विश्व में दूसरा स्थान है। सन 1999 में 'मशीन ट्रांसलेशन समिट' अर्थात् 'यांत्रिक अनुवाद' नामक संगोष्ठी में टोकियो विश्वविद्यालय के प्रो. होजुमि तनाका ने भाषाई आँकड़े पेश करके सिद्ध किया कि विश्व में चीनी भाषा बोलने वालों का स्थान प्रथम और हिंदी का द्वितीय है और अंग्रेजी तीसरे क्रमांक पर पहुँच गई है, किन्तु यहाँ यह जान लेना भी आवश्यक है कि चीनी भाषा का प्रयोग क्षेत्र हिन्दी की अपेक्षा काफी सीमित है।

डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल ने अपने भाषा शोध अध्ययन 2005 में हिन्दी वाचकों की संख्या एक अरब दो करोड़ पच्चीस लाख दस हजार तीन सौ बावन घोषित की है, जबकि चीनी बोलने वालों की संख्या मात्र नब्बे करोड़ चार लाख छह हजार छह सौ चौदह बताया है। किन्तु आँकड़ों के खेल यदि मान लिया जाए कि रहस्यमय होते हैं तो भी उन्हें बिलकुल ही दरकिनार तो नहीं किया जा सकता। हम इस सच्चाई से तो मुख नहीं मोड़ सकते कि हिंदी भाषियों की संख्या विश्व की दो सबसे अधिक बोली जाने वाली भाषाओं में से एक है। उपर्युक्त विचारों और अनुसंधानों के निष्कर्ष यदि हमें आत्माश्लाघा में न डालें तो भले ही अंग्रेजी का नंबर वाचकों की संख्या की दृष्टि से तीसरा भासित होता है पर उसका क्षेत्र इतना व्यापक है कि हिन्दी और चीनी भाषाओं को उतना प्रसार बनाने में बड़ा भागीरथ यत्न करना होगा।

भाषा के वैश्विक संदर्भ की विशेषताएँ

आखिर, वे कौन सी विशेषताएँ हैं, जो किसी भाषा को वैश्विक संदर्भ प्रदान करती हैं। ऐसा करके हम हिंदी के विश्व संदर्भ का वस्तुपरक विश्लेषण कर सकते हैं। जब हम हिंदी को विश्व भाषा में रूपांतरित होते हुए देख रहे हैं और यथावसर उसे विश्व भाषा की संज्ञा प्रदान कर रहे हैं, तब यह जरूरी हो जाता है कि हम सर्वप्रथम विश्व भाषा का स्वरूप विश्लेषण कर लें। संक्षेप में विश्व भाषा के निम्नलिखित लक्षण निर्मित किए जा सकते हैं–

(1) उसके बोलने-जानने तथा चाहने वाले भारी तादाद में हों और वे विश्व के अनेक देशों में फैले हों।

(2) उस भाषा में साहित्य-सृजन की प्रदीर्घ परंपरा हो और प्रायः सभी विधाएँ वैविध्यपूर्ण एवं समृद्ध हों। उस भाषा में सृजित कम-से-कम एक विधा का साहित्य विश्वस्तरीय हो।

(3) उसकी शब्द-संपदा विपुल एवं विराट हो तथा वह विश्व की अन्यान्य बड़ी भाषाओं से विचार-विनिमय करते हुए एक–दूसरे को प्रेरित–प्रभावित करने में सक्षम हो।

(4) उसकी शाब्दी एवं आर्थी संरचना तथा लिपि सरल, सुबोध एवं वैज्ञानिक हो। उसका पठन-पाठन और लेखन सहज-संभाव्य हो। उसमें निरंतर परिष्कार और परिवर्तन की गुंजाइश हो।

(5) उसमें ज्ञान-विज्ञान के तमाम अनुशासनों में वाग्मय सृजित एवं प्रकाशित हो तथा नए विषयों पर सामग्री तैयार करने की क्षमता हो।

(6) वह नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकी उपलब्धियों के साथ अपने-आपको पुरस्कृत एवं समायोजित करने की क्षमता से युक्त हो।

(7) वह अंतर्राष्ट्रीय राजनीतिक संदर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं तथा आर्थिक विनिमय की संवाहक हो।

(8) वह जनसंचार माध्यमों में बड़े पैमाने पर देश-विदेश में प्रयुक्त हो रही हो।

(9) उसका साहित्य अनुवाद के माध्यम से विश्व की दूसरी महत्त्वपूर्ण भाषाओं में पहुँच रहा हो।

(10) उसमें मानवीय और यांत्रिक अनुवाद की आधारभूत तथा विकसित सुविधा हो जिससे वह बहुभाषिक कम्प्यूटर की दुनिया में अपने समग्र सूचना स्रोत तथा प्रक्रिया सामग्री (सॉफ्टवेयर) के साथ उपलब्ध हो। साथ ही, वह

इतनी समर्थ हो कि वर्तमान प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों मसलन ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट तथा एस.एम.एस. एवं वेब जगत में प्रभावपूर्ण ढंग से अपनी सक्रिय उपस्थिति का अहसास करा सके।

(11) उसमें उच्चकोटि की पारिभाषिक शब्दावली हो तथा वह विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की नवीनतम आविष्कृतियों को अभिव्यक्त करते हुए मनुष्य की बदलती जरूरतों एवं आकांक्षाओं को वाणी देने में समर्थ हो।

(12) वह विश्व चेतना की संवाहिका हो। वह स्थानीय आग्रहों से मुक्त विश्व दृष्टि सम्पन्न कृतिकारों की भाषा हो, जो विश्वस्तरीय समस्याओं की समझ और उसके निराकरण का मार्ग जानते हों।

आने वाली पीढ़ी की भाषा

वर्तमान उत्तर आधुनिक परिवेश में विशाल जनसंख्या भारत और चीन के साथ-साथ हिंदी और चीनी के लिए भी फायदेमंद सिद्ध हो रही है। हमारे देश में 1980 के बाद 65 करोड़ से ज्यादा बच्चे पैदा हुए हैं, जो विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा अंतर्राष्ट्रीय शैक्षणिक संस्थानों में शिक्षित प्रशिक्षित हो रहे हैं। वे सन् 2025 तक विधिवत प्रशिक्षित पेशेवर के रूप में अपनी सेवाएँ देने के लिए विश्व के समक्ष उपलब्ध होंगे। दूसरी ओर जापान की साठ प्रतिशत से ज्यादा आबादी साठ साल पार करके बुढ़ापे की ओर बढ़ रही है। यही हाल आगामी पंद्रह सालों में अमेरिका और यूरोप का भी होने वाला है। ऐसी स्थिति में विश्व का सबसे तरुण मानव संसाधन होने के कारण भारतीय पेशेवरों की तमाम देशों में लगातार मांग बढ़ेगी। जाहिर है कि जब भारतीय पेशेवर भारी तादाद में दूसरे देशों में जाकर उत्पादन के स्रोत बनेंगे। वहाँ की व्यवस्था परिचालन का सशक्त पहिया बनेंगे तब उनके साथ हिंदी भी जाएगी। ऐसी स्थिति में जहाँ भारत आर्थिक महाशक्ति बनने की प्रक्रिया में होगा वहाँ हिंदी स्वत: विश्वमंच पर प्रभावी भूमिका का वहन करेगी। इस तरह यह माना जा सकता है कि हिंदी आज जिस दायित्व बोध को लेकर संकल्पित है वह निकट भविष्य में उसे और भी बड़ी भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान करेगा। हिंदी जिस गति तथा आंतरिक ऊर्जा के साथ अग्रसर है उसे देखकर यही कहा जा सकता है कि भविष्य में वह दुनिया की सबसे ज्यादा बोली व समझी जाने वाली भाषा बन जाएगी।

समर्थ भाषा और वैज्ञानिक लिपि

यदि हम इन आँकड़ों पर विश्वास करें तो संख्याबल के आधार पर हिंदी विश्वभाषा है। हाँ, यह जरूर संभव है कि यह मातृभाषा न होकर दूसरी, तीसरी अथवा चौथी भाषा भी हो सकती है। हिंदी में साहित्य-सृजन की परंपरा भी बारह सौ साल पुरानी है। वह 8वीं शताब्दी से लेकर वर्तमान 21वीं शताब्दी तक गंगा की अनाहत-अविरल धारा की भाँति प्रवाहमान है। उसका काव्य साहित्य तो संस्कृत के बाद विश्व के श्रेष्ठतम साहित्य की क्षमता रखता है। उसमें लिखित उपन्यास एवं समालोचना भी विश्वस्तरीय है। उसकी शब्द संपदा विपुल है। उसके पास पच्चीस लाख से ज्यादा शब्दों की सेना है। उसके पास विश्व की सबसे बड़ी कृषि विषयक शब्दावली है। उसने अन्यान्य भाषाओं के बहुप्रयुक्त शब्दों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया है और जो शब्द अप्रचलित अथवा बदलते जीवन संदर्भों से दूर हो गए हैं, उनका त्याग भी कर दिया है। आज हिंदी में विश्व का महत्त्वपूर्ण साहित्य अनुसृजनात्मक लेखन के रूप में उपलब्ध है और उसके साहित्य का उत्तमांश भी विश्व की दूसरी भाषाओं में अनुवाद के माध्यम से जा रहा है।

जहाँ तक देवनागरी लिपि की वैज्ञानिकता का सवाल है तो वह सर्वमान्य है। देवनागरी में लिखी जाने वाली भाषाएँ उच्चारण पर आधारित हैं। हिंदी की शाब्दी और आर्थी संरचना प्रयुक्तियों के आधार पर सरल व जटिल दोनों है। हिंदी भाषा का अन्यतम वैशिष्ट्य यह है कि उसमें संस्कृत के उपसर्ग तथा प्रत्ययों के आधार पर शब्द बनाने की अभूतपूर्व क्षमता है। हिंदी और देवनागरी दोनों ही पिछले कुछ दशकों में परिमार्जन व मानकीकरण की प्रक्रिया से गुजरी हैं जिससे उनकी संरचनात्मक जटिलता कम हुई है। हम जानते हैं कि विश्व मानव की बदलती चिंतनात्मकता तथा नवीन जीवन स्थितियों को व्यंजित करने की भरपूर क्षमता हिंदी भाषा में है, बशर्ते इस दिशा में अपेक्षित बौद्धिक तैयारी तथा सुनियोजित विशेषज्ञता हासिल की जाए। आखिर, उपग्रह चैनल हिंदी में प्रसारित कार्यक्रमों के जरिए यही कर रहे हैं।

मीडिया और वेब पर हिंदी

यह सत्य है कि हिंदी में अंग्रेजी के स्तर की विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर आधारित पुस्तकें नहीं हैं। उसमें ज्ञान विज्ञान से संबंधित विषयों पर उच्चस्तरीय सामग्री की दरकार है। विगत कुछ वर्षों से इस दिशा में उचित प्रयास हो रहे हैं।

अभी हाल ही में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा द्वारा हिंदी माध्यम में एम.बी.ए.का पाठ्यक्रम आरंभ किया गया। इसी तरह "इकोनामिक टाइम्स' तथा "बिजनेस स्टैंडर्ड' जैसे अखबार हिंदी में प्रकाशित होकर उसमें निहित संभावनाओं का उद्घोष कर रहे हैं। पिछले कई वर्षों में यह भी देखने में आया कि "स्टार न्यूज' जैसे चैनल जो अंग्रेजी में आरंभ हुए थे वे विशुद्ध बाजारीय दबाव के चलते पूर्णत: हिंदी चैनल में रूपांतरित हो गए। साथ ही, "ई. एस.पी.एन' तथा "स्टार स्पोर्ट्स' जैसे खेल चैनल भी हिंदी में कमेंट्री देने लगे हैं। हिंदी को वैश्विक संदर्भ देने में उपग्रह-चैनलों, विज्ञापन एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय निगमों तथा यांत्रिक सुविधाओं का विशेष योगदान है। वह जनसंचार-माध्यमों की सबसे प्रिय एवं अनुकूल भाषा बनकर निखरी है।

आज विश्व में सबसे ज्यादा पढ़े जानेवाले समाचार पत्रों में आधे से अधिक हिन्दी के हैं। इसका आशय यही है कि पढ़ा-लिखा वर्ग भी हिन्दी के महत्त्व को समझ रहा है। वस्तुस्थिति यह है कि आज भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि दक्षिण पूर्व एशिया, मॉरीशस, चीन, जापान, कोरिया, मध्य एशिया, खाड़ी देशों, अफ्रीका, यूरोप, कनाडा तथा अमेरिका तक हिंदी कार्यक्रम उपग्रह चैनलों के जरिए प्रसारित हो रहे हैं और भारी तादाद में उन्हें दर्शक भी मिल रहे हैं। आज मॉरीशस में हिंदी सात चैनलों के माध्यम से धूम मचाए हुए है। विगत कुछ वर्षों में एफ.एम. रेडियो के विकास से हिंदी कार्यक्रमों का नया श्रोता वर्ग पैदा हो गया है। हिंदी अब नई प्रौद्योगिकी के रथ पर आरूढ़ होकर विश्वव्यापी बन रही है। उसे ई-मेल, ई-कॉमर्स, ई-बुक, इंटरनेट, एस.एम.एस. एवं वेब जगत में बड़ी सहजता से पाया जा सकता है। इंटरनेट जैसे वैश्विक माध्यम के कारण हिंदी के अखबार एवं पत्रिकाएँ दूसरे देशों में भी विविध साइट्स पर उपलब्ध हैं।

माइक्रोसॉफ्ट, गूगल, सन, याहू, आईबीएम तथा ओरेकल जैसी विश्वस्तरीय कंपनियाँ अत्यंत व्यापक बाजार और भारी मुनाफे को देखते हुए हिंदी प्रयोग को बढावा दे रही हैं। संक्षेप में, यह स्थापित सत्य है कि अंग्रेजी के दबाव के बावजूद हिंदी बहुत ही तीव्र गति से विश्वमन के सुख-दु:ख, आशा-आकांक्षा की संवाहक बनने की दिशा में अग्रसर है। आज विश्व के दर्जनों देशों में हिंदी की पत्रिकाएँ निकल रही हैं तथा अमेरिका, इंग्लैंड, जर्मनी, जापान, आस्ट्रिया जैसे विकसित देशों में हिंदी के कृति रचनाकार अपनी सृजनात्मकता द्वारा उदारतापूर्वक विश्व मन का संस्पर्श कर रहे हैं। हिंदी के शब्दकोश तथा विश्वकोश निर्मित करने में भी विदेशी विद्वान सहायता कर रहे हैं।

राजनीतिक व सामाजिक क्षेत्र में हिंदी

जहाँ तक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विनिमय के क्षेत्र में हिंदी के अनुप्रयोग का सवाल है तो यह देखने में आया है कि हमारे देश के नेताओं ने समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हिंदी में भाषण देकर उसकी उपयोगिता का उद्घोष किया है। यदि अटल बिहारी वाजपेयी तथा पी.वी.नरसिंहराव द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में दिया गया वक्तव्य स्मरणीय है तो श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा राष्ट्र मंडल देशों की बैठक तथा चन्द्रशेखर द्वारा दक्षेस शिखर सम्मेलन के अवसर पर हिंदी में दिए गए भाषण भी उल्लेखनीय हैं। यह भी सर्वविदित है कि यूनेस्को के बहुत सारे कार्य हिंदी में सम्पन्न होते हैं। इसके अलावा अब तक विश्व हिंदी सम्मेलन मॉरीशस, त्रिनिडाड, लंदन, सुरीनाम तथा न्यूयार्क जैसे स्थलों पर सम्पन्न हो चुके हैं जिनके माध्यम से विश्व स्तर पर हिंदी का स्वर सम्भार महसूस किया गया। अभी आठवें विश्व हिंदी सम्मेलन न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्रसंघ के महासचिव बान की मून ने दो-चार वाक्य हिंदी में बोलकर उपस्थित विश्व हिंदी समुदाय की खूब वाह-वाही लूटी। हिंदी को वैश्विक संदर्भ और व्याप्ति प्रदान करने में भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद द्वारा विदेशों में स्थापित भारतीय विद्यापीठों की केन्द्रीय भूमिका रही है, जो विश्व के अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों में फैली हुई है। इन विश्वविद्यालयों में शोध स्तर पर हिन्दी अध्ययन अध्यापन की सुविधा है जिसका सर्वाधिक लाभ विदेशी अध्येताओं को मिल रहा है।

5

सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का महत्त्व

भारत में 'हिन्दी' बहुत पहले सम्पर्क भाषा के रूप में रही है और इसीलिए यह बहुत पहले से 'राष्ट्रभाषा' कहलाती है, क्योंकि हिन्दी की सार्वदेशिकता सम्पूर्ण भारत के सामाजिक स्वरूप का प्रतिफल है। भारत की विशालता के अनुरूप ही राष्ट्रभाषा विकसित हुई है जिससे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम कहीं भी होने वाले मेलों–चाहे वह प्रयाग में कुम्भ हो अथवा अजमेर शरीफ की दरगाह हो या विभिन्न प्रदेशों की हमारी सांस्कृतिक एकता के आधार स्तंभ तीर्थस्थल हों, सभी स्थानों पर आदान-प्रदान की भाषा के रूप में हिन्दी का ही अधिकतर प्रयोग होता है। इस प्रकार इन सांस्कृतिक परम्पराओं से हिन्दी ही सार्वदेशिक भाषा के रूप में लोकप्रिय है, विशेषकर दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक सम्बन्धों की दृढ़शृंखला के रूप में हिन्दी ही सशक्त भाषा बनीं। हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है।

सम्पर्क भाषा हिन्दी का आयाम सबसे व्यापक और लोकप्रिय है जिसका प्रसार क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर से बढ़कर भारतीय उपमहाद्वीप तक है। शिक्षित, अर्धशिक्षित, अशिक्षित, तीनों वर्गों के लोग परस्पर बातचीत आदि के लिए और इस प्रकार मौखिक माध्यम में जनभाषा हिन्दी का व्यवहार करते हैं। भारत की लिंग्वे फ्रांका, लैंग्विज आव वाइडर कम्यूनिकेशन, पैन इंडियन लैंग्विज, अन्तर

प्रादेशिक भाषा, लोकभाषा, भारत-व्यापी भाषा, अखिल भारतीय भाषा, ये नाम 'जनभाषा' हिन्दी के लिए प्रयुक्त होते हैं। भारत की बहुभाषिकता के ढाँचे में हिन्दी की विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक क्षेत्रों के अतिरिक्त भाषा-व्यवहार के क्षेत्रों में भी सम्पर्क सिद्धि का ऐसा प्रकार्य निष्पादित कर रही है जिसका, न केवल कोई विकल्प नहीं, अपितु जो हिन्दी की विविध भूमिकाओं को समग्रता के साथ निरूपित करने में भी समर्थ है।

हिन्दी ने पिछले हजार वर्षों में विचार-विनिमय का जो उत्तरदायित्व निभाया है वह एक अनूठा उदाहरण है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी पहले 'राष्ट्रभाषा' कहलाती थी, बाद में इसे 'सम्पर्क भाषा' कहा जाने लगा और अब इसे 'राजभाषा' बना देने से इसका क्षेत्र सीमित हो गया है। वस्तुतः यह उनका भ्रम है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी सदियों से सम्पर्क भाषा और राष्ट्रभाषा एक साथ रही है और आज भी है। भारतीय संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर, 1949 को इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लेने से उसके प्रयोग का क्षेत्र और विस्तृत हुआ है। जैसे बंगला, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम आदि को क्रमशः बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल आदि की राजभाषा बनाया गया है। ऐसा होने से क्या उन भाषाओं का महत्त्व कम हो गया है? निश्चय ही नहीं। बल्कि इससे उन सभी भाषाओं का उत्तरदायित्व और प्रयोग क्षेत्र पहले से अधिक बढ़ गया है। जहाँ पहले केवल परस्पर बोलचाल में काम आती थी या उसमें साहित्य की रचना होती थी, वहीं अब प्रशासनिक कार्य भी हो रहे हैं। यही स्थिति हिन्दी की भी है। इस प्रकार हिन्दी सम्पर्क और राष्ट्रभाषा तो है ही, राजभाषा बनाकर इसे अतिरिक्त सम्मान प्रदान किया गया है।

आन्तरिक स्तर पर हिन्दी अपनी बोलियों के व्यवहारकर्ताओं के बीच सम्पर्क की स्थापना करती रही है और अब भी कर रही है, तथा बाह्य स्तर पर वह अन्य भारतीय भाषा भाषी समुदायों के मध्य एकमात्र सम्पर्क भाषा के रूप में उभर आई है जिसके अब विविध आयाम विकसित हो चुके हैं। कुल मिलाकर हिन्दी का वर्तमान गौरवपूर्ण है। उसकी भूमिका आज भी सामान्य-जन को जोड़ने में सभी भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक कारगर है।

संपर्क भाषा का अर्थ

संपर्क भाषा शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के लिंग्वा फ्रेका (Lingua Franca) के प्रतिशब्द के रूप में किया जाता है। 'लिंग्वा फ्रेका' से तात्पर्य है, लोक बोली

अथवा सामान्य बोली। जिस भाषा के माध्यम से एक क्षेत्र के लोग देश के अन्य क्षेत्रों के निवासियों से अथवा एक भाषा के बोलने वाले लोग अन्य भाषा-भाषियों से अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं, उसे लिंग्वा फ्रेका अथवा संपर्क भाषा कहा जाता है।

भारत विभिन्नताओं का देश है। यहाँ भाषाओं की संख्या सैकड़ों में है। बाइस भाषाएँ तो संविधान की अष्टम सूची में ही उल्लिखित हैं। इस दृष्टि में यहाँ संपर्क भाषा का विशेष महत्त्व है। भारत के इतिहास का अवलोकन करें तो हम पाते हैं कि यहाँ युगों से 'मध्य देश' की भाषा सारे देश की माध्यम भाषा अथवा संपर्क भाषा रही है। संस्कृत, पालि अथवा प्राकृत किसी क्षेत्र-विशेष तक सीमित नहीं थीं।

डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार यास्क के समय में संस्कृत उत्तर में कम्बोज (मध्य एशिया के पामेर पर्वत के निकट) से लेकर पूर्व में कलिंग के सूरमस (असम की सूरमस नदी) प्रदेश तक बोली जाती थी (पाणिनी और उसका शास्त्र)। पाणिनी के समय तक भी संस्कृत के प्रसार का यह क्षेत्र लगभग इतना ही था। पाणिनी ने प्राच्य-शरावती के दक्षिण पूर्व कलिंग-बंग तक-उदीच्च-शरावती के पश्चिमोत्तर से गान्धर तक के विस्तृत भूभाग की भाषा को शिष्ट एवं व्याकरण सम्मत भाषा कहा है। पतंजलि के समय तक यद्यपि शकों, यवनों आदि की विजयों के कारण उत्तर में आर्यों का क्षेत्र सीमित हो चला था पर संस्कृत का क्षेत्र दक्षिण तक जा पहुँचा था।

तमिलभाषी प्रदेशों में 200 ई. से ही संस्कृत राजभाषा के रूप में स्वीकार कर ली गई थी। शिक्षा, दीक्षा, प्रशासकीय और सांस्कृतिक कार्यों में ही नहीं वरन शिष्ट काव्य और शास्त्रों के प्रणयन में भी संस्कृत भाषा का प्रयोग होने लगा था। स्पष्ट है कि तमिल प्रदेशों ने संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लिया था।

हिंदी को संस्कृत की यह परंपरा विरासत के रूप में मिली है। डॉ. सूर्य प्रसाद दीक्षित के अनुसार, गौतमबुद्ध से लेकर मध्यकाल तक के सभी शासकों, संतों व समाज-सुधारकों ने जनसंपर्क के लिए जनभाषा का उपयोग किया। हिंदी साहित्य का आरंभ करने वाले सिद्धों, जैनियों और नाथपंथी योगियों ने आठवीं से बारहवीं शताब्दी तक समस्त भारत में घूम-घूमकर एक ऐसी संपर्क भाषा का विकास किया जिसमें भारत की सभी भाषाओं के बहुप्रचलित शब्दों के लिए प्रवेश द्वार खुला हुआ था। यह समन्वित भाषा थी 'हिंदी'।

हिंदी अपने उद्‌भव के समय से ही हिंदू-मुस्लिम, पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण को जोड़ने वाली कड़ी रही है। शंकराचार्य और रामानंद ने संपूर्ण भारत में भ्रमण कर हिंदी के विकास-विस्तार में अपना पूर्ण सहयोग दिया। आदिकाल में हिंदी का अधिकांश साहित्य हिंदी क्षेत्र के बाहर ही लिखा गया है। स्वयंभू के 'पउम चरिउ' की रचना महाराष्ट्र और कर्नाटक में हुई, तो अब्दुर्रहमान ने 'संदेश रासक' पंजाब में लिखा। सिद्ध साहित्य पूर्व, नाथ साहित्य पश्चिम में और पर्याप्त भक्ति साहित्य, उड़ीसा, असम, महाराष्ट्र तथा गुजरात में लिखा गया है।

मध्यकाल हिंदी के विकास और अन्य क्षेत्रों से संपर्क का काल रहा है। इस काल में दक्षिण के आचार्यों-वल्लभाचार्य, रामानुज, निंबार्क, रामानंद आदि ने संपर्क-भाषा के महत्त्व को समझा और भरसक इसे संप्रेषण का माध्यम बनाया। दक्षिण में राष्ट्रकूटों और यादवों के राज्य में हिंदी का प्रचार हुआ। विजयनगर दरबार में हिंदी को विशिष्ट स्थान प्राप्त था। मछलीपट्टनम के नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि ने बत्तीस हिंदी नाटकों की रचना की।

क्षेत्रवार दृष्टि डालें तो मध्यकाल में ब्रजभाषा के सार्वदेशिक प्रसार को देखा जा सकता है। बंगाल, असम, उड़ीसा, केरल, आंध्र सर्वत्र हिंदी साहित्य की रचना हुई है। आंध्र प्रदेश में हिंदी में काव्य-रचना का सर्वप्रथम रूप हमें तंजौर के भोंसल वंशीय मराठा शासक शाहजी महाराजा के यक्ष गानों में मिलता है। चौदहवीं-पंद्रहवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में जिस दक्खिनी भाषा का अस्तित्व पाया जाता है, वह भी खड़ी बोली हिंदी का ही एक रूप है। दक्खिनी के प्रारंभिक साहित्यकार ख्वाजा बंदानवाज गेसूदराज (1318-1430 ई.) की 'मिराजुल आशिकीन' को दक्खिनी गद्य ही नहीं, खड़ी बोली गद्य की भी पहली रचना स्वीकार किया जाता है। खड़ी बोली, अरबी-फारसी और दक्षिणी भाषाओं के मिश्रण से इस भाषा ने भी उत्तर और दक्षिण के बीच एक कड़ी का काम किया है।

केरल की भाषा मलयालम शब्दावली की दृष्टि से अन्य द्रविड़ भाषाओं की तुलना में हिंदी के अधिक निकट स्वीकार की जाती है। केरल में तिरुविनांकुर के राजा तिरुनाल श्रीराम वर्मा ने ब्रज भाषा में अनेक पदों की रचना की है—रामचन्द्र प्रभु तुम बिन और कौन खबर ले मोरी। बाज रही जिनकी नगरी मों सदा धरम की भेरी। जाके चरण कमल की रज से तिरिया तन कू फैरो और न के कछु और भरोसा हमें भरोसा तेरो।

महाराष्ट्र में नाथयोगियों, महानुभाव संप्रदाय, आदि ने हिंदी के प्रचार में पर्याप्त रुचि ली है। शिवाजी तथा उनके पुत्र शम्भा जी हिंदी के प्रबल समर्थक थे। संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम और संत नामदेव की रचनाओं में हिंदी के भी अनेक पद्य लिखते हैं–

जागो हो गोपाल लाल जसुदा बलि आई,
उठो तात प्रात भयो,
रजनि को तिमिर गयो,
हेरत सब ग्वाल बाल मोहना कन्हाई।

गुजरात इस दृष्टि से किसी से कम नहीं है। नरसी मेहता और दयाराम गुजरात के ही कवि हैं जिनकी हिंदी रचनाएँ आज भी प्रसिद्ध हैं। मीरा की जन्म स्थली गुजरात है। अष्टछाप के कवि कृष्णदास जी की भूमि भी गुजरात थी। महेरावण सह ने डिंगल मिश्रित ब्रज में 'प्रणीण सागर' महाकाव्य की रचना की। यहाँ अनेक विद्यालयों में हिंदी का अध्यापन होता था तथा अन्य अनेक मौलिक हिंदी ग्रथों की भी रचना हुई।

पंजाब तो हिंदी क्षेत्र का पड़ोसी ही है। हिंदी और पंजाबी क्षेत्र के लोगों का एक-दूसरे के क्षेत्र में जाना सहज रहा है। दोनों भाषाओं ने एक-दूसरे को दूर तक प्रभावित किया है। पंजाब के गुरु गोविन्द सिंह की गिनती हिंदी के मूर्धन्य कवियों में होती है। मिर्जा खाँ ने भी 'तोहफतुल हिन्द' में ब्रजभाषा के काव्यशास्त्र का प्रतिपादन किया है।

इसी प्रकार भारत के पूर्वी क्षेत्रों बंगाल, उड़ीसा आदि में हिंदी का पर्याप्त प्रचार-प्रसार रहा है। कुमार चटर्जी के अनुसार 1575 ई. में बंगाल से पठान राज्य की समाप्ति के बाद व मुगल राज्य के प्रसार के साथ बंगाल में हिंदी को बढ़ावा मिला। उड़ीसा में हिंदी का प्रवेश भक्ति कविता के माध्यम से हुआ। राय रामानंद (15वीं सदी), जगन्नाथ दास, वंशी लाल मिश्र, ब्रजनाथ बड़जेना, रामदास, कविचंद्र नरसिंह राय गुरु आदि इस क्षेत्र के प्रमुख हिंदी कवि रहे हैं।

हिंदी के अन्य भाषा-भाषी क्षेत्रों से संपर्क की यह कड़ी आधुनिक काल में और मजबूत हुई है। अंग्रेजों के विरुद्ध स्वाधीनता संग्राम में हिंदी ने ही सभी क्षेत्रों में जाकर राष्ट्रीय एकता को मजबूत करने का कार्य किया है। हिंदीतर क्षेत्रों के स्वाधीनता सेनानियों, नेताओं, भाषाविदों, साहित्यकारों सभी ने एकमत से हिंदी को राष्ट्रभाषा स्वीकार करते हुए कभी क्षेत्रों के निवासियों को हिंदी में काम

और बात करने को प्रोत्साहित किया। सन् 1826 ई. में हिंदी का पहला समाचार पत्र 'उदंत मार्तण्ड' बंगाल के कोलकाता से प्रकाशित हुआ। एम.ए. हिंदी का पाठ्यक्रम सबसे पहले कोलकाता विश्वविद्यालय में प्रारंभ हुआ। हिंदी के अनेक प्रमुख रचनाकार गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के रहे हैं। हिंदुओं के अनेक प्रमुख तीर्थ अहिंदी भाषी क्षेत्रों में ही हैं। द्वारका पुरी, रामेश्वरम और जगन्नाथपुरी में प्रतिदिन हजारों लोग प्रतिदिन हिंदी भाषी क्षेत्रों के तीर्थों में आते हैं और उनके लिए भी हिंदी संपर्क भाषा का काम रकती है। यही स्थिति व्यापार के क्षेत्र की भी है। हिंदी और अहिंदी क्षेत्रों के निवासी एक-दूसरे क्षेत्रों में जाकर हिंदी के माध्यम से ही संपर्क करते हैं। कुछ लोगों को लगता है कि व्यापार आदि में अंग्रेजी संपर्क का काम करती है अथवा कर सकती है। परंतु यह धरणा सही नहीं है। आज भी देश में अंग्रेजी बोलने वाले लोग काफी मिल जाते हैं, किंतु उनकी संख्या बहुत ही थोड़ी है और हमेशा थोड़ी ही रहेगी। इसका मुख्य कारण यह है कि यह भाषा कठिन और विदेशी है। साधारण मनुष्य इसे ग्रहण नहीं कर सकता। इसलिए यह संभव नहीं कि अंग्रेजी के जरिए भारत एक राष्ट्र बन जाए। अतः भारतीयों को भारत की ही कोई भाषा पसंद करनी होगी।

हिंदी को संपर्क भाषा बनाने में बॉलीवुड का बहुत बड़ा हाथ रहा है। हिंदी फिल्मों का सबसे अधिक निर्माण महाराष्ट्र की मुम्बई नगरी में होता है। मुम्बई व्यापार का भी गढ़ है। रेडियो और टी.वी. के माध्यम से भी हिंदी का प्रसार हुआ है और सारे भारत के लोग हिंदी को थोड़ा बहुत जानते-समझते हैं। दिल्ली में ही लगभग पूरे भारत के लोग एक साथ रहते हैं और हिंदी के माध्यम से अपने सारे कार्य निपटाते हैं। गुजरात का तो हिन्दी प्रचार में विशेष योगदान रहा है।

संपर्क भाषा राष्ट्रभाषा से एक अर्थ में भिन्न होती है। राष्ट्रभाषा में भाषा के मानक रूप को महत्त्व दिया जाता है, परंतु संपर्क भाषा दो भिन्न भाषा-भाषियों के मध्य सेतु का काम करती है। इसका एकमात्र उद्देश्य अपनी बात को दूसरे तक संप्रेषित करना होता है। अतः असमें अनगढ़ता, व्याकरण-दोष और अन्य भाषाओं का मिश्रण स्वाभाविक है। संपर्क भाषा हिंदी भी इससे अछूती नहीं है। इसमें भारत की अनेक भाषाओं के शब्दों का समावेश हुआ है। हिंदी ने बंगाली, पंजाबी, गुजराती, मराठी, तमिल, मलयालम आदि भाषाओं के अनेकानेक शब्दों को ग्रहण किया है। यह हिंदी की सर्वदेशिकता और संपर्क भाषा के रूप में उसकी क्षमता का परिचायक हैं।

सम्पर्क भाषा की परिभाषा एवं सामान्य परिचय

भाषा की सामान्य परिभाषा में यह कहा जा चुका है कि 'भाषा मनुष्य के विचार-विनिमय और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है।' सम्पर्क भाषा का आशय जनभाषा है। किसी क्षेत्र का सामान्य व्यक्ति प्रचलित शैली में जो भाषा बोलता है वह जनभाषा है। दूसरे शब्दों में क्षेत्र विशेष की संपर्क भाषा ही जनभाषा है। इसलिए जरूरी नहीं कि जनभाषा शुद्ध साहित्यिक रूप वाली ही हो या वह व्याकरण के नियम से बंधी हो।

सम्पर्क भाषा या जनभाषा वह भाषा होती है, जो किसी क्षेत्र, प्रदेश या देश के ऐसे लोगों के बीच पारस्परिक विचार-विनिमय के माध्यम का काम करे जो एक-दूसरे की भाषा नहीं जानते। दूसरे शब्दों में विभिन्न भाषा-भाषी वर्गों के बीच सम्प्रेषण के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, वह सम्पर्क भाषा कहलाती है। इस प्रकार 'सम्पर्क भाषा' की सामान्य परिभाषा होगी–'एक भाषा-भाषी जिस भाषा के माध्यम से किसी दूसरी भाषा के बोलने वालों के साथ सम्पर्क स्थापित कर सके, उसे सम्पर्क भाषा या जनभाषा कहते हैं।'

बकौल डॉ. पूरनचंद टंडन के अनुसार–'सम्पर्क भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है, जो समाज के विभिन्न वर्गों या निवासियों के बीच सम्पर्क के काम आती है। इस दृष्टि से भिन्न-भिन्न बोली बोलने वाले अनेक वर्गों के बीच हिन्दी एक सम्पर्क भाषा है और अन्य कई भारतीय क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलने वालों के बीच भी सम्पर्क भाषा है।'

डॉ. महेन्द्र सिंह राणा ने सम्पर्क भाषा को इन शब्दों में परिभाषित किया है–'परस्पर अबोधगम्य भाषा या भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से दो व्यक्ति, दो राज्य, कोई राज्य और केन्द्र तथा दो देश सम्पर्क स्थापित कर पाते हैं, उस भाषा विशेष को सम्पर्क भाषा या सम्पर्क साधक भाषा कहा जा सकता है।'

इस क्रम में डॉ. दंगल झाल्टे द्वारा प्रतिपादित परिभाषा उल्लेखनीय है–'अनेक भाषाओं की उपस्थिति के कारण जिस सुविधाजनक विशिष्ट भाषा के माध्यम से व्यक्ति-व्यक्ति, राज्य-राज्य, राज्य-केन्द्र तथा देश-विदेश के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है, उसे सम्पर्क भाषा की संज्ञा दी जा सकती है।'

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सम्पर्क भाषा मात्र दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषियों के बीच सम्पर्क का माध्यम नहीं बनती, जो

एक-दूसरे की भाषा से परिचित नहीं है, अपितु दो या दो से अधिक भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी राज्यों के बीच तथा केन्द्र और राज्यों के बीच भी सम्पर्क स्थापित करने का माध्यम बन सकती है।

भारत में हिंदी को जानने और बोलने वालों की संख्या

यदि आँकड़ों पर दृष्टि डालें तो भी यही स्पष्ट होता है कि हिंदी ही भारत की एकमात्र संपर्क भाषा है। लगभग संपूणर्क भारत में हिंदी को जानने और बोलने वाले बड़ी संख्या में है। 1991 की जनगणना के अनुसार अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिंदी जानने वालों की संख्या इस प्रकार है-

(1) जम्मू एवं कश्मीर 90 प्रतिशत,
(2) गुजरात, महाराष्ट्रा पंजाब, चंडीगढ़ 80 प्रतिशत,
(3) गोवा 70 प्रतिशत, दीव व दमन 65 प्रतिशत,
(4) दादर एवं नगर हवेली, प. बंगाल, सिक्किम, उड़ीसा 60 प्रतिशत,
(5) असम 50 प्रतिशत,
(6) कर्नाटक 45 प्रतिशत,
(7) आंध्र प्रदेश 40 प्रतिशत,
(8) केरल, मिजोरम 35 प्रतिशत,
(9) अरुणाचल, मणिपुर, मेघालय 30 प्रतिशत,
(10) नगालैंड, त्रिपुरा, लक्षद्वीप 20 प्रतिशत,
(11) पांडिचेरी, तमिलनाडु 20 प्रतिशत।

हिंदी भाषी क्षेत्रों में बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली तथा अंडमान-निकोबार आदि में तो 100 प्रतिशत, लोग हिंदी जानते हैं।

इस प्रकार संपूर्ण भारत में हिंदी जानने वालों की संख्या 73.31 प्रतिशत है। हिंदी के संपर्क भाषा होने का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है।

बोलचाल की भाषा का सामान्य परिचय

आमतौर से सामान्य भाषा के अन्तर्गत भाषा के कई रूप उभर कर आते हैं। डॉ. भोलानाथ के अनुसार, ये रूप प्रमुखतः चार आधारों पर आधारित हैं–इतिहास, भूगोल, प्रयोग और निर्माता। इनमें प्रयोग क्षेत्र सबसे विस्तृत है। जब कई व्यक्ति-बोलियों में पारम्पारिक सम्पर्क होता है, तब बोलचाल की भाषा का

प्रसार होता है। दूसरे शब्दों में, आपस में मिलती-जुलती बोली या उपभाषाओं में हुए व्यवहार से बोलचाल की भाषा को विस्तार मिलता है। इसे 'सामान्य भाषा' के नाम से जाना जाता है। पर किसी भी भाषा की भाँति यह परिवर्तनशील है, समकालीन, प्रयोगशील तथा भाषा का आधुनिकतम रूप है।

साधारणत: हिन्दी की तीन शैलियों की चर्चा की जाती है। हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी। शिक्षित हिन्दी भाषी अक्सर औपचारिक स्तर पर (भाषण, कक्षा में अध्ययन, रेडियो वार्ता, लेख आदि में) हिन्दी या उर्दू शैली का प्रयोग करते हैं। अनौपचारिक स्तर पर (बाजार में, दोस्तों में गपशप करते समय) प्राय: हिन्दुस्तानी का प्रयोग करते हैं। जिसमें हिन्दुस्तानी के दो रूप पाये जाते हैं। एक रूप वह है जिसमें अंग्रेजी के प्रचलित शब्द हैं और दूसरे में अगृहीत अंग्रजी शब्द का प्रचलन है। बोलचाल की हिन्दी में ये सारी शैलियाँ मौजूद रहती हैं अर्थात् इसमें सरल बहुप्रचलित शब्दों का प्रयोग होता है। चाहे वह तत्सम प्रधान हिन्दी हो या परिचित उर्दू अथवा अंग्रजी-मिश्रित हिन्दुस्तानी, व्याकरण तो हिन्दी का ही रहता है।

बोलचाल की भाषा बड़े पैमाने पर विस्तृत क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। भक्तों द्वारा, साधु-संतों द्वारा, व्यापारियों के जरिए, तीर्थस्थानों में, मेला-महोत्सव में, रेल के डिब्बों में, सेना द्वारा, शिक्षितों में, मजदूर और मालिक के बीच, किसान और जमींदार के बीच बोलचाल की भाषा बड़ी तेजी से फैलने लगती है। यह प्रेम की, भाई-चारे की, इस मिट्टी की तथा हमारी संस्कृति की भाषा है। चूंकि भारतीय संस्कृति सामाजिक संस्कृति के रूप में समूचे विश्व में शुमार होती है, इसमें भाषाई अनेकरूपता का दृष्टिगत होना स्वाभाविक है। हमारी संस्कृति की भाँति हमारी भाषा हिन्दी भी अनेकता को अपने में समाहित कर राष्ट्रीय एकता की पहचान कराती है। बहुभाषी राष्ट्र की विविधता, सांस्कृतिक विशालता एवं भौगोलिक वैभिन्न्य के कारण सृष्ट बहुविध शब्दों में से कई मधुर क्षेत्रीय शब्द हमारी बोलचाल की भाषा में समाये हुए हैं। इससे सहजता, बोधगम्यता के साथ-साथ एक अपनापन भी अनायास आ जाता है।

संसार की प्रत्येक बोलचाल की भाषा आगे चलकर मानक भाषा बन जाती है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है–इसकी सहजता और सरलता। मौखिक प्रयोग के कारण कहीं-कहीं शुद्धता भले ही न हो, पर बोधगम्यता और सम्प्रेषणीयता में यह सबसे आगे है, जो भाषा जितनी सम्प्रेषणीय है, वह उतनी ही समर्थ है। सम्प्रेषणीयता के बिना भाषा की उपयोगिता कहाँ रह जायगी? सच पूछिये तो भाषा दूसरे के लिए अभिप्रेत है। वक्ता और श्रोता के बिना भाषा की कोई

परिचिति नहीं है। इसी सम्प्रेषण के चलते मनुष्य अपने आस-पास से लेकर सारे संसार से जुड़ता है। अपने को अच्छी तरह अभिव्यक्त करने हेतु वह अन्यन्त प्रभावशाली ढंग से भाषा का प्रयोग करता है।

सतत परिवर्तनशील होने के कारण भाषा में भिन्नता पायी जाती है। भाषा पर क्षेत्रीय प्रभाव को भी झूठलाया नहीं जा सकता। लेकिन यह भी सत्य है कि भाषा की इन विविधताओं के बावजूद उसका एक मानक रूप होता है। फिर भी 'भाषा बहता नीर' कभी स्थिर कैसे रह सकता है। जन-जन तक फैलकर सबसे घुलमिल कर उसका एक मौखिक रूप सदा बरकरार रहता है, जो सरल, सहज, बोधगम्य और मधुर भी है।

सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी

भारत एक बहुभाषी देश है और बहुभाषा-भाषी देश में सम्पर्क भाषा का विशेष महत्त्व है। अनेकता में एकता हमारी अनुपम परम्परा रही है। वास्तव में सांस्कृतिक दृष्टि से सारा भारत सदैव एक ही रहा है। हमारे इस विशाल देश में जहाँ अलग-अलग राज्यों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं और जहाँ लोगों के रीति-रीवाजों, खान-पान, पहनावे और रहन-सहन तक में भिन्नता हो वहाँ सम्पर्क भाषा ही एक ऐसी कड़ी है, जो एक छोर से दूसरे छोर के लोगों को जोड़ने और उन्हें एक-दूसरे के समीप लाने का काम करती है।

डॉ. भोलानाथ ने सम्पर्क भाषा के प्रयोग क्षेत्र को तीन स्तरों पर विभाजित किया है—एक तो वह भाषा जो एक राज्य (जैसे महाराष्ट्र या असम) से दूसरे राज्य (जैसे बंगाल या असम) के राजकीय पत्र-व्यवहार में काम आए। दूसरे वह भाषा जो केन्द्र और राज्यों के बीच पत्र-व्यवहारों का माध्यम हो और तीसरे वह भाषा जिसका प्रयोग एक क्षेत्र/प्रदेश का व्यक्ति दूसरे क्षेत्र/प्रदेश के व्यक्ति से अपने निजी कामों में करें।

आजादी की लड़ाई लड़ते समय हमारी यह कामना थी कि स्वतंत्र राष्ट्र की अपनी एक राष्ट्रभाषा होगी जिससे देश एकता के सूत्र में सदा के लिए जुड़ा रहेगा। महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस आदि सभी महापुरुषों ने एक मत से इसका समर्थन किया, क्योंकि हिन्दी हमारे सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आन्दोलनों की ही नहीं अपितु राष्ट्रीय चेतना एवं स्वाधीनता आन्दोलन की अभिव्यक्ति की भाषा भी रही है।

भारत में 'हिन्दी' बहुत पहले सम्पर्क भाषा के रूप में रही है और इसीलिए यह बहुत पहले से 'राष्ट्रभाषा' कहलाती है, क्योंकि हिन्दी की सार्वदेशिकता सम्पूर्ण भारत के सामाजिक स्वरूप का प्रतिफल है। भारत की विशालता के अनुरूप ही राष्ट्रभाषा विकसित हुई है जिससे उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम कहीं भी होने वाले मेलों–चाहे वह प्रयाग में कुंभ हो अथवा अजमेर शरीफ की दरगाह हो या विभिन्न प्रदेशों की हमारी सांस्कृतिक एकता के आधार स्तंभ तीर्थस्थल हों–सभी स्थानों पर आदान-प्रदान की भाषा के रूप में हिन्दी का ही अधिकतर प्रयोग होता है। इस प्रकार इन सांस्कृतिक परम्पराओं से हिन्दी ही सार्वदेशिक भाषा के रूप में लोकप्रिय है विशेषकर दक्षिण और उत्तर के सांस्कृतिक सम्बन्धों की दृढ़ शृंखला के रूप में हिन्दी ही सशक्त भाषा बनीं। हिन्दी का क्षेत्र विस्तृत है।

सम्पर्क भाषा हिन्दी का आयाम, जनभाषा हिन्दी, सबसे व्यापक और लोकप्रिय है जिसका प्रसार क्षेत्रीय तथा राष्ट्रीय स्तर से बढ़कर भारतीय उपमहाद्वीप तक है। शिक्षित, अर्धशिक्षित, अशिक्षित, तीनों वर्गों के लोग परस्पर बातचीत आदि के लिए और इस प्रकार मौखिक माध्यम में जनभाषा हिन्दी का व्यवहार करते हैं। भारत की लिंग्वे फ्रांका, लैंग्विज आव वाइडर कम्युनिकेशन, पैन इंडियन लैंग्विज, अन्तर प्रादेशिक भाषा, लोकभाषा, भारत-व्यापी भाषा, अखिल भारतीय भाषा–ये नाम 'जनभाषा' हिन्दी के लिए प्रयुक्त होते हैं। हमारे देश की बहुभाषिकता के ढाँचे में हिन्दी की विभिन्न भौगोलिक और सामाजिक क्षेत्रों के अतिरिक्त भाषा-व्यवहार के क्षेत्रों में भी सम्पर्क सिद्धि का ऐसा प्रकार्य निष्पादित कर रही है जिसका, न केवल कोई विकल्प नहीं, अपितु जो हिन्दी की विविध भूमिकाओं को समग्रता के साथ निरूपित करने में भी समर्थ है।

हिन्दी ने पिछले हजार वर्षों में विचार-विनिमय का जो उत्तरदायित्व निभाया है वह एक अनूठा उदाहरण है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि हिन्दी पहले 'राष्ट्रभाषा' कहलाती थी, बाद में इसे 'सम्पर्क भाषा' कहा जाने लगा और अब इसे 'राजभाषा' बना देने से इसका क्षेत्र सीमित हो गया है। वस्तुतः यह उनका भ्रम है। जैसाकि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि हिन्दी सदियों से सम्पर्क भाषा और राष्ट्रभाषा एक साथ रही है और आज भी है।

भारत की संविधान सभा द्वारा 14 सितम्बर, 1949 को इसे राजभाषा के रूप में स्वीकार कर लेने से उसके प्रयोग का क्षेत्र और विस्तृत हुआ है। जैसे बंगला, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम आदि को क्रमशः बंगाल, तमिलनाडु,

कर्नाटक, केरल आदि की राजभाषा बनाया गया है। ऐसा होने से क्या उन भाषाओं का महत्त्व कम हो गया है? निश्चय ही नहीं। बल्कि इससे उन सभी भाषाओं का उत्तरदायित्व और प्रयोग क्षेत्र पहले से अधिक बढ़ गया है। जहाँ पहले केवल परस्पर बोलचाल में काम आती थी या उसमें साहित्य की रचना होती थी, वहीं अब प्रशासनिक कार्य भी हो रहे हैं। यही स्थिति हिन्दी की भी है। इस प्रकार हिन्दी सम्पर्क और राष्ट्रभाषा तो है ही, राजभाषा बनाकर इसे अतिरिक्त सम्मान प्रदान किया गया है।

इस प्रसंग में डॉ. सुरेश कुमार का कथन बहुत ही प्रासंगिक है–'हिन्दी को केवल सम्पर्क भाषा के रूप में देखना भूल होगी। हिन्दी, आधुनिक भारतीय भाषाओं के उद्‌भव काल से मध्यदेश के निवासियों के सामाजिक सम्प्रेषण तथा साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की भाषा रही है और अब भी है। भाषा-सम्पर्क की बदली हुई परिस्थितियों में (जो पहले फारसी-तुर्की–अरबी तथा बाद में मुख्य रूप से अंग्रेजी के साथ सम्पर्क के फलस्वरूप विकसित हुई) तथा स्वतंत्र भारतीय गणराज्य में सभी भारतीय भाषाओं को अपने-अपने भौगोलिक क्षेत्र में व्यावसायिक और सांस्कृतिक व्यवहार की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग में लाने के निर्णय के बाद, हिन्दी का सम्पर्क भाषा प्रकार्य, गुण और परिमाण की दृष्टि से इतना विकसित हो गया है कि उसके सम्बन्ध में चिन्तन तथा अनुवर्ती कार्य, एक सैद्धान्तिक और व्यावहारिक आवश्यकता बन गए हैं।'

वास्तव में भाषा सम्पर्क की स्थिति ही किसी सम्पर्क भाषा के उद्‌भव और विकास को प्रेरित करती है या एक सुप्रतिष्ठित भाषा के सम्पर्क प्रकार्य को संपुष्ट करती है। हिन्दी के साथ दोनों स्थितियों का सम्बन्ध है। आन्तरिक स्तर पर हिन्दी अपनी बोलियों के व्यवहारकर्ताओं के बीच सम्पर्क की स्थापना करती रही है और अब भी कर रही है, तथा बाह्य स्तर पर वह अन्य भारतीय भाषा-भाषी समुदायों के मध्य एकमात्र सम्पर्क भाषा के रूप में उभर आई है जिसके अब विविध आयाम विकसित हो चुके हैं। कुल मिलाकर हिन्दी का वर्तमान गौरवपूर्ण है। उसकी भूमिका आज भी सामान्य-जन को जोड़ने में सभी भाषाओं की अपेक्षा सबसे अधिक कारगर है।

हिन्दी संपर्क के माध्यम

संचार के सभी माध्यमों में हिन्दी ने मजबूत पकड़ बना ली है। चाहे वह हिन्दी के समाचार पत्र हो, रेडियो हो, दूरदर्शन हो, हिन्दी सिनेमा हो, विज्ञापन

हो या ओटीटी हो, सर्वत्र हिन्दी छायी हुई है। वर्तमान समय में हिन्दी को वैश्विक संदर्भ प्रदान करने में उसके बोलने वालों की संख्या, हिदी फिल्में, पत्र-पत्रिकाएँ, विभिन्न हिन्दी चैनल, विज्ञापन एजेंसियाँ, हिन्दी का विश्वस्तरीय साहित्य तथा साहित्यकार आदि का विशेष योगदान है। इसके अतिरिक्त हिन्दी को विश्व भाषा बनाने में इंटरनेट की भूमिका भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

आज हिंदी अभिव्यक्ति का सब से सशक्त माध्यम बन गई है। हिंदी चैनलों की संख्या लगातार बढ़ रही है। बाजार की स्पर्धा के कारण ही सही, अंग्रेजी चैनलों का हिंदी में रूपांतरण हो रहा है। इस समय हिंदी में भी एक लाख से ज्यादा ब्लॉग सक्रिय हैं। अब सैकड़ों पत्र-पत्रिकाएं इंटरनेट पर उपलब्ध हैं।

हिंदी के वैश्विक स्वरूप को संचार माध्यमों में भी देखा जा सकता है। संचार माध्यमों ने हिंदी के वैश्विक रूप को गढ़ने में पर्याप्त योगदान दिया है। भाषाएं संस्कृति की वाहक होती हैं और संचार माध्यमों पर प्रसारित कार्यक्रमों से समाज के बदलते सच को हिंदी के बहाने ही उजागर किया गया।

डिजिटल दुनिया में हिंदी की मांग अंग्रेजी की तुलना में पांच गुना ज्यादा तेज है। अंग्रेजी की तुलना में हिंदी 5 गुना तेजी से बढ़ रही है। भारत में हर पांचवां इंटरनेट प्रयोगकर्ता हिंदी का उपयोग करता है। देश में जहाँ हिंदी सामग्री की डिजिटल मीडिया में खपत 94 फीसद की दर से बढ़ी है, वहीं अंग्रेजी सामग्री की खपत केवल 19 फीसद की दर से ही बढ़ी है।

आज स्मार्टफोन के रूप में हर हाथ में एक तकनीकी डिवाइस मौजूद है। सभी आपरेटिंग सिस्टमों में हिंदी में संदेश भेजना, हिंदी की सामग्री को पढ़ना, सुनना या देखना लगभग उतना ही आसान है जितना अंग्रेजी की सामग्री को। हालांकि कंप्यूटरों पर भी हिंदी का व्यापक प्रयोग हो रहा है और इंटरनेट पर भी, लेकिन मोबाइल ने हिंदी के प्रयोग को अचानक जो गति दे दी है उसकी कल्पना अभी पांच साल पहले तक किसी ने नहीं की थी। इंटरनेट पर भारतीय भाषाओं की सामग्री की वृद्धि दर प्रभावशाली है। अंग्रेजी के 19 फीसद सालाना के मुकाबले भारतीय भाषाओं की सामग्री 90फीसद की रफ्तार से बढ़ रही है।

दूसरी ओर भारतीयों में हिंदी के प्रति रुझान बढ़ा है। भारत में 50 करोड़ से ज्यादा लोग हिंदी बोलते हैं, जबकि करीब 21 प्रतिशत भारतीय हिंदी में इंटरनेट का प्रयोग करना चाहते हैं। भारतीय युवाओं के स्मार्टफोन में औसतन 32 एप होते हैं, जिसमें 8-9 हिंदी के होते हैं। भारतीय युवा यूट्यूब पर 93 फीसद हिंदी वीडियो देखते हैं।

हिन्दी सिनेमा

हिन्दी सिनेमा, जिसे बॉलीवुड के नाम से भी जाना जाता है, हिन्दी भाषा में फिल्म बनाने का उद्योग है। बॉलीवुड नाम अंग्रेजी सिनेमा उद्योग हॉलिवुड के तर्ज पर रखा गया है। हिन्दी फिल्म उद्योग मुख्यत: मुम्बई शहर में बसा है। ये फिल्में हिन्दुस्तान, पाकिस्तान और दुनिया के कई देशों के लोगों के दिलों की धड़कन हैं। हर फिल्म में कई संगीतमय गाने होते हैं। इन फिल्मों में हिन्दी की "हिन्दुस्तानी" शैली का चलन है। हिन्दी और उर्दू (खड़ीबोली) के साथ-साथ अवधी, बम्बइया हिन्दी, भोजपुरी, राजस्थानी, पंजाबी, जैसी बोलियाँ भी संवाद और गानों में उपयुक्त होते हैं। प्यार, देशभक्ति, परिवार, अपराध, भय, इत्यादि मुख्य विषय होते हैं। ज्यादातर गाने उर्दू शायरी पर आधारित होते हैं।भारत में सबसे बड़ी फिल्म निर्माताओं में से एक, शुद्ध बॉक्स ऑफिस राजस्व का 43प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि तमिल और तेलुगू सिनेमा 36 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व करते हैं, क्षेत्रीय सिनेमा के बाकी 2014 के रूप में 21 प्रतिशत का गठन है। बॉलीवुड भी दुनिया में फिल्म निर्माण के सबसे बड़े केंद्रों में से एक है। बॉलीवुड कार्यरत लोगों की संख्या और निर्मित फिल्मों की संख्या के मामले में दुनिया में सबसे बड़ी फिल्म उद्योगों में से एक है। Matusitz, जे और पायानो, पी के अनुसार, वर्ष 2011 में 3.5 अरब से अधिक टिकट ग्लोब जो तुलना में हॉलीवुड 900, 000 से अधिक टिकट है, भर में बेच दिया गया था। बॉलीवुड 1969 में भारतीय सिनेमा में निर्मित फिल्मों की कुल के बाहर 2014 में 252 फिल्मों का निर्माण।

हिंदी रेडियो

24 दिसम्बर 1906 की संध्या कनाडा के वैज्ञानिक रेगिनाल्ड फेसेंडेन ने जब अपना वॉयलिन बजाया और अटलांटिक महासागर में बहुत सारी समुद्री जहाजों के रेडियो ऑपरेटरों ने उस संगीत को अपने रेडियो सेट पर सुना, वह दुनिया में रेडियो प्रसारण की शुरुआत थी।

इससे पहले जगदीश चन्द्र बसु ने भारत में तथा गुल्येल्मो मार्कोनी ने सन 1900 में इंग्लैंड से अमरीका बेतार संदेश भेजकर व्यक्तिगत रेडियो संदेश भेजने की शुरुआत कर दी थी, पर एक से अधिक व्यक्तियों को एक साथ संदेश भेजने या ब्रॉडकास्टिंग की शुरुआत 1906 में फेसेंडेन के साथ हुई। ली द फोरेस्ट और चार्ल्स हेरॉल्ड जैसे लोगों ने इसके बाद रेडियो प्रसारण के प्रयोग करने शुरु किए।

तब तक रेडियो का प्रयोग सिर्फ नौसेना तक ही सीमित था। 1917 में प्रथम विश्व युद्ध की शुरुआत के बाद किसी भी गैर-फौजी के लिये रेडियो का प्रयोग निषिद्ध कर दिया गया।

भारत और रेडियो

1927 तक भारत में भी ढेरों रेडियो क्लबों की स्थापना हो चुकी थी। 1936 में भारत में सरकारी 'इम्पेरियल रेडियो ऑफ इंडिया' की शुरुआत हुई जो आजादी के बाद ऑल इंडिया रेडियो या आकाशवाणी बन गया।

1939 में द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत होने पर भारत में भी रेडियो के सारे लाइसेंस रद्द कर दिए गए और ट्रांसमीटरों को सरकार के पास जमा करने के आदेश दे दिए गए।

नरीमन प्रिंटर उन दिनों बॉम्बे टेक्निकल इंस्टीट्यूट बायकुला के प्रिंसिपल थे। उन्होंने रेडियो इंजीनियरिंग की शिक्षा पाई थी। लाइसेंस रद्द होने की खबर सुनते ही उन्होंने अपने रेडियो ट्रांसमीटर को खोल दिया और उसके पुर्जे अलग-अलग जगह पर छुपा दिए। इस बीच गांधी जी ने अंग्रेजों भारत छोडो का नारा दिया। गांधी जी समेत तमाम नेता 9 अगस्त 1942 को गिरफ्तार कर लिए गए और प्रेस पर पाबंदी लगा दी गई।

कांग्रेस के कुछ नेताओं के अनुरोध पर नरीमन प्रिंटर ने अपने ट्रांसमीटर के पुर्जे फिर से एकजुट किया। माइक जैसे कुछ सामान की कमी थी जो शिकागो रेडियो के मालिक नानक मोटवानी की दुकान से मिल गई और मुंबई के चौपाटी इलाके के सी व्यू बिल्डिंग से 27 अगस्त 1942 को नेशनल कांग्रेस रेडियो का प्रसारण शुरु हो गया।

अपने पहले प्रसारण में उद्घोषक उषा मेहता ने कहा, "41.78 मीटर पर एक अंजान जगह से यह नेशनल कांग्रेस रेडियो है।"

रेडियो पर विज्ञापन की शुरुआत 1923 में हुई। इसके बाद इसी रेडियो स्टेशन ने गांधी जी का भारत छोड़ो का संदेश, मेरठ में 300 सैनिकों के मारे जाने की खबर, कुछ महिलाओं के साथ अंग्रेजों के दुराचार जैसी खबरों का प्रसारण किया जिसे समाचार पत्रों में सेंसर के कारण प्रकाशित नहीं किया गया था।

पहला ट्रांसमीटर 10 किलोवाट का था जिसे शीघ्र ही नरीमन प्रिंटर ने और सामान जोड़कर सौ किलोवाट का कर दिया। अंग्रेज पुलिस की नजर से बचने

के लिए ट्रांसमीटर को तीन महीने के भीतर ही सात अलग-अलग स्थानों पर ले जाया गया।

12 नवम्बर 1942 को नरीमन प्रिंटर और उषा मेहता को गिरफ्तार कर लिया गया और नेशनल कांग्रेस रेडियो की कहानी यहीं खत्म हो गई।

नवंबर 1941 में रेडियो जर्मनी से नेताजी सुभाष चंद्र बोस का भारतीयों के नाम संदेश भारत में रेडियो के इतिहास में एक और प्रसिद्ध दिन रहा जब नेताजी ने कहा था, "तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"

इसके बाद 1942 में आजाद हिंद रेडियो की स्थापना हुई जो पहले जर्मनी से फिर सिंगापुर और रंगून से भारतीयों के लिये समाचार प्रसारित करता रहा।

स्वतन्त्रता के पश्चात् से 16 नवम्बर 2006 तक रेडियो केवल सरकार के अधिकार के था। धीरे-धीरे आम नागरिकों के पास रेडियो की पहुँच के साथ इसका विकास हुआ।

सरकारी संरक्षण में रेडियो का काफी प्रसार हुआ। 1947 में आकाशवाणी के पास छह रेडियो स्टेशन थे और उसकी पहुंच 11 प्रतिशत लोगों तक ही थी। आज आकाशवाणी के पास 223 रेडियो स्टेशन हैं और उसकी पहुंच 99.1 फीसदी भारतीयों तक है। टेलीविजन के आगमन के बाद शहरों में रेडियो के श्रोता कम होते गए, पर एफएम रेडियो के आगमन के बाद अब शहरों में भी रेडियो के श्रोता बढ़ने लगे हैं। पर गैर-सरकारी रेडियो में अब भी समाचार या समसामयिक विषयों की चर्चा पर पाबंदी है। रेडियो का दुरुपयोग न हो इसलिए सरकार इसे चलाने की अनुमति आम जनता को नहीं देना चाहती थी। इस बीच आम जनता को रेडियो स्टेशन चलाने देने की अनुमति के लिए सरकार पर दबाव बढ़ता रहा है। 1995 में भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि रेडियो तरंगों पर सरकार का एकाधिकार नहीं है। वर्ष 2002 में एनडीए सरकार ने शिक्षण संस्थाओं को कैंपस रेडियो स्टेशन खोलने की अनुमति दी। 16 नवम्बर 2006 को यूपीए सरकार ने स्वयंसेवी संस्थाओं को रेडियो स्टेशन खोलने की इजाजत दी है। इन रेडियो स्टेशनों में भी समाचार या समसामयिक विषयों की चर्चा पर पाबंदी है, पर इसे रेडियो जैसे जन माध्यम के लोकतंत्रीकरण की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम माना जा रहा है।

हिन्दी टेलीविजन

हिन्दी टेलीविजन का आरम्भ बहुत धीमा था किन्तु उसके बाद इसने गति पकड़ी और इस समय भारत में हिन्दी टेलीविजन चैनलों की बाढ़ आ गयी है।

भारत में अपने आरंभ से लगभग 30 वर्ष तक टेलीविजन की प्रगति धीमी रही किंतु वर्ष 1980 और 1990 के दशक में दूरदर्शन ने राष्ट्रीय कार्यक्रम और समाचारों के प्रसारण के जरिये हिंदी को जनप्रिय बनाने में काफी योगदान किया। वर्ष 1990 के दशक में मनोरंजन और समाचार के निजी उपग्रह चैनलों के पदार्पण के उपरांत यह प्रक्रिया और तेज हो गई। रेडियो की तरह टेलीविजन ने भी मनोरंजन कार्यक्रमों में फिल्मों का भरपूर उपयोग किया और फीचर फिल्मों, वृत्तचित्रों तथा फिल्मों गीतों के प्रसारण से हिंदी भाषा को देश के कोने-कोने तक पहुंचाने के सिलसिले को आगे बढ़ाया। टेलीविजन पर प्रसारित धारावाहिक ने दर्शकों में अपना विशेष स्थान बना लिया। सामाजिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, पारिवारिक तथा धार्मिक विषयों को लेकर बनाए गए हिंदी धारावाहिक घर-घर में देखे जाने लगे। रामायण, महाभारत हमलोग, भारत एक खोज जैसे धारावाहिक न केवल हिंदी प्रसार के वाहक बने बल्कि राष्ट्रीय एकता के सूत्र बन गए। देखते-ही-देखते टीवी कार्यक्रमों के जुड़े लोग फिल्मी सितारों की तरह चर्चित और विख्यात हो गए। समूचे देश में टेलीविजन कार्यक्रमों की लोकप्रियता की बदौलत देश के अहिंदी भाषी लोग हिंदी समझने और बोलने लगे।

'कौन बनेगा करोड़पति' जैसे कार्यक्रमों ने लगभग पूरे देश को बांधे रखा। हिंदी में प्रसारित ऐसे कार्यक्रमों में पूर्वोत्तर राज्यों, जम्मू-कश्मीर और दक्षिणी राज्यों के प्रतियोगियों ने भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया और इस तथ्य को दृढ़ता से उजागर किया कि हिंदी की पहुंच समूचे देश में है। विभिन्न चैनलों ने अलग-अलग आयु वर्गों के लोगों के लिए आयोजित प्रतियोगिताओं के सीधे प्रसारणों से भी अनेक अहिंदी भाषी राज्यों के प्रतियोगियों ने हिंदी में गीत गाकर प्रथम और द्वित्तीय स्थान प्राप्त किए। इन कार्यक्रमों में पुरस्कार के चयन में श्रोताओं द्वारा मतदान करने के नियम ने इनकी पहुंच को और विस्तृत कर दिया। टेलीविजन चैनलों पर प्रसारित किए जा रहे तरह-तरह के लाइव-शो में भाग लेने वाले लोगों को देखकर लगता ही नहीं कि हिंदी कुछ खास प्रदेशों की भाषा है। हिंदी फिल्मों की तरह टेलीविजन के हिंदी कार्यक्रमों ने भी भौगोलिक, भाषायी तथा सांस्कृतिक सीमाएं तोड़त दी हैं।

हिन्दी मीडिया

हिन्दी हमारी भाषा के कारण ही नहीं, बल्कि अपनी उपयोगिता के कारण भी आज बाजार की सबसे प्रिय भाषा है। आप लाख अंग्रेजी के आतंक का

विलाप करें, काम तो आपको हिन्दी में ही करना है, ये मर्जी आपकी कि आप अपनी स्क्रिप्ट देवनागरी में लिखें या रोमन में। यह हिन्दी की ही ताकत है कि वह सोनिया गाँधी से लेकर कैटरीना कैफ सबसे हिन्दी बुलवा ही लेती है।

उड़िया न जानने के आरोप झेलनेवाले नेता नवीन पटनायक भी हिन्दी में बोलकर ही अपनी अंग्रेजी न जानने वाली जनता को संबोधित करते हैं। इतना ही नहीं राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी की सुन लीजिए। वे कहते हैं कि वे प्रधानमंत्री नहीं बन सकते क्योंकि उन्हें ठीक से हिन्दी बोलनी नहीं आती। कुल मिलाकर हिन्दी आज मीडिया, राजनीति, मनोरंजन और विज्ञापन की प्रमुख भाषा है।

हिंदुस्तान जैसे देश को एक भाषा के सहारे संबोधित करना हो तो वह सिर्फ हिन्दी ही है। यह हिन्दी का अहंकार नहीं उसकी सहजता और ताकत है। मीडिया में जिस तरह की हिन्दी का उपयोग हो रहा है उसे लेकर चिंताएँ बहुत जायज हैं किंतु विस्तार के दौर में ऐसी लापरवाहियाँ हर जगह देखी जाती हैं।

कुछ अखबार प्रयास पूर्वक अपनी श्रेष्टता दिखाने अथवा युवा पाठकों का ख्याल रखने के नाम पर इंग्लिश परोस रहे हैं जिसकी कई स्तरों पर आलोचना भी हो रही है। इंग्लिश का उपयोग चलन में आने से एक नई किस्म की भाषा का विस्तार हो रहा है। किंतु आप देखें तो वह विषयगत ही ज्यादा है।

लाइफ स्टाइल, फिल्म के पन्नों, सिटी कवरेज में भी लाइट खबरों पर ही इस तरह की भाषा का प्रभाव दिखता है। चिंता हिन्दी समाज के स्वभाव पर भी होनी चाहिए कि वह अपनी भाषा के प्रति बहुत सम्मान भाव नहीं रखता, उसके साथ हो रहे खिलवाड़ पर उसे बहुत आपत्ति नहीं है।

हिन्दी को लेकर किसी तरह का भावनात्मक आधार भी नहीं बनता, न वह अपना कोई ऐसा वृत्त बनाती है जिससे उसकी अपील बने। हिन्दी की बोलियाँ इस मामले में ज्यादा समर्थ हैं, क्योंकि उन्हें क्षेत्रीय अस्मिता एक आधार प्रदान करती है। हिन्दी की सही मायने में अपनी कोई जमीन नहीं है।

जिस तरह भोजपुरी, अवधी, छत्तीसगढ़ी, बुंदेली, बघेली, गढ़वाली, मैथिली, बृजभाषा जैसी तमाम बोलियों ने बनाई है। हिंदी अपने व्यापक विस्तार के बावजूद किसी तरह का भावनात्मक आधार नहीं बनाती। सो इसके साथ किसी भी तरह की छेड़छाड़ किसी का दिल भी नहीं दुखाती।

मीडिया और मनोरंजन की पूरी दुनिया हिन्दी के इसी विस्तारवाद का फायदा उठा रही है किंतु जब हिन्दी को देने की बारी आती है तो ये भी उससे दोयम दर्जे का ही व्यवहार करते हैं। यह समझना बहुत मुश्किल है कि विज्ञापन,

मनोरंजन या मीडिया की दुनिया में हिन्दी की कमाई खाने वाले अपनी स्क्रिप्ट इंग्लिश में क्यों लिखते हैं।

देवनागरी में किसी स्क्रिप्ट को लिखने से क्या प्रस्तोता के प्रभाव में कमी आ जाएगी, फिल्म फ्लॉप हो जाएगी या मीडिया समूहों द्वारा अपने दैनिक कामों में हिन्दी के उपयोग से उनके दर्शक या पाठक भाग जाएँगें। यह क्यों जरूरी है कि हिन्दी के अखबारों में अंग्रेजी के स्वनामधन्य लेखक, पत्रकार एवं स्तंभकारों के तो लेख अनुवाद कर छापे जाएँ उन्हें मोटा पारिश्रमिक भी दिया जाए किंतु हिन्दी में मूल काम करने वाले पत्रकारों को मौका ही न दिया जाए।

हिन्दी के अखबार क्या वैचारिक रूप से इतने दरिद्र हैं कि उनके अखबारों में गंभीरता तभी आएगी जब कुछ स्वनामधन्य अंग्रेजी पत्रकार उसमें अपना योगदान दें। यह उदारता क्यों। क्या अंग्रेजी के अखबार भी इतनी ही सदाशयता से हिन्दी के पत्रकारों के लेख छापते हैं।

पूरा विज्ञापन बाजार हिन्दी क्षेत्र को ही दृष्टि में रखकर विज्ञापन अभियानों को प्रारंभ करता है किंतु उसकी पूरी कार्यवाही देवनागरी के बजाए रोमन में होती है, जबकि अंत में फायनल प्रोडक्ट देवनागरी में ही तैयार होना है। गुलामी के ये भूत हमारे मीडिया को लंबे समय से सता रहे हैं। इसके चलते एक चिंता चौतरफा व्याप्त है।

यह खतरा एक संकेत है कि क्या कहीं देवनागरी के बजाए रोमन में ही तो हिन्दी न लिखने लग जाए। कई बड़े अखबार भाषा की इस भ्रष्टता को अपना आर्दश बना रहे हैं। जिसके चलते हिन्दी कोई शरमाई और सकुचाई हुई सी दिखती है। शीर्षकों में कई बार पूरा का शब्द अंग्रेजी और रोमन में ही लिख दिया जा रहा है। जैसे–मल्लिका का BOLD STAP या इसी तरह कौन बनेगा PM जैसे शीर्षक लगाकर आप क्या करना चाहते हैं।

कई अखबार अपने हिन्दी अखबार में कुछ पन्ने अंग्रेजी के भी चिपका दे रहे हैं। आप ये तो तय कर लें यह अखबार हिन्दी का है या अंग्रेजी का। रजिस्ट्रार आफ न्यूजपेपर्स में जब आप अपने अखबार का पंजीयन कराते हैं तो नाम के साथ घोषणापत्र में यह भी बताते हैं कि यह अखबार किस भाषा में निकलेगा क्या ये अंग्रेजी के पन्ने जोड़ने वाले अखबारों ने द्विभाषी होने का पंजीयन कराया है।

आप देखें तो पंजीयन हिन्दी के अखबार का है और उसमें दो या चार पेज अंग्रेजी के लगे हैं। हिन्दी के साथ ही आप ऐसा कर सकते हैं। संभव हो तो आप

इंग्लिश में भी एक अखबार निकालने का प्रयोग कर लें। संभव है वह प्रयोग सफल भी हो जाए किंतु इससे भाषायी अराजकता तो नहीं मचेगी।

हिन्दी में जिस तरह की शब्द सामर्थ्य और ज्ञान-विज्ञान के हर अनुशासन पर अपनी बात कहने की ताकत है उसे समझे बिना इस तरह की मनमानी के मायने क्या हैं। मीडिया की बढ़ी ताकत ने उसे एक जिम्मेदारी भी दी है। सही भाषा के इस्तेमाल से नई पीढ़ी को भाषा के संस्कार मिलेंगें। बाजार में हर भाषा के अखबार मौजूद हैं, मुझे अंग्रेजी पढ़नी है तो मैं अंग्रेजी के अखबार ले लूँगा, वह अखबार नहीं लूँगा जिसमें दस हिन्दी के और चार पन्ने अंग्रेजी के भी लगे हैं।

भारत की सम्पर्क भाषा के रूप में हिन्दी की मजबूती

अंतरभाषाई संचार और द्विभाषिता पर अनुसंधान करने वाले महादेव एल. आप्टे का विचार है कि एक बहुभाषी नजारे में द्विभाषिता विकसित होने की दो शर्तें होती हैं जिनके समीकरण के आधार पर ही लोग अपनी भाषा के अलावा दूसरी भाषा सीखने का प्रयास करते हैं–भाषाओं के बीच संरचनात्मक समानता किस दर्जे की है और सामाजिक–आर्थिक उपयोगिता के लिहाज से किस भाषा की दावेदारी बेहतर है। सत्तर के दशक में आप्टे ने निष्कर्ष निकाला था कि अन्य भारतीय भाषाओं से संरचनात्मक (ध्वनि, व्याकरण, शब्द-भण्डार, वाक्य-रचना और वर्णमाला) समानता के लिहाज से हिंदी-द्विभाषिता की सम्भावनाएँ बेहतर होनी चाहिए और सामाजिक आर्थिक-उपयोगिता के लिहाज से अंग्रेजी-द्विभाषिता बढ़नी चाहिए। साथ ही आप्टे का कहना यह भी था कि साक्षरता में बढ़ोतरी के साथ-साथ प्रमुख भाषाओं और हिंदी के बीच अंतरभाषाई संचार बढ़ सकता है, भले ही अंग्रेजी की सामाजिक-आर्थिक उपयोगिता के कारण लोग इस सम्भावना को नजरअंदाज करते रहें। आप्टे का यह अवलोकन इस जरूरत पर बल देता प्रतीत होता है कि भाषा की सामाजिक-आर्थिक उपयोगिता निर्धारित करने के लिए बनाये गये सूचकांकों में आर्थिक प्रगति उपलब्ध कराने की क्षमता को तो सर्वोच्च स्थान दिया ही जाना चाहिए, साथ ही बाजार से संबंधित सांस्कृतिक कारकों को भी नजरअंदाज नहीं किया जाना चाहिए। आप्टे ने केवल साक्षरता का जिक्र किया था, पर हिंदी-द्विभाषिता के बढ़ने की सम्भावना के अन्य कारण लगातार जारी उद्योगीकरण और आबादी के आवागमन में भी चिह्नित किये जा सकते थे। कहना न होगा कि साक्षरता, शिक्षा, उद्योगीकरण और आव्रजन से

अंग्रेजी द्विभाषिता में लाजमी तौर पर बढ़ोतरी होनी थी। लेकिन क्या इन वैकासिक पहलुओं ने हिंदी-द्विभाषिता को भी सकारात्मक रूप से प्रभावित किया है?

साठ के दशक से हिंदी-द्विभाषिता और अंग्रेजी–द्विभाषिता के बीच होड़ के ग्राफ को देखा जा सकता है। शुरुआती दौर में अंग्रेजी का पलड़ा बहुत ज्यादा झुका हुआ नजर आता है, पर यह अंतराल धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से कम हो रहा है। बढ़ती हुई साक्षरता तो इसे घटा ही रही है, अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तनों और बाजार के विस्तार ने हिंदी के 'मल्टीप्लायर इफेक्ट' को और प्रभावी बनाया है जिससे उसकी सामाजिक-आर्थिक उपयोगिता भी पहले के मुकाबले बढ़ी है। 1991 की जनगणना और 2001 की जनगणना से मिलने वाले द्विभाषिता के आँकड़ों के आधार पर किये गये विश्लेषण से यही संदेश मिलता है। 1991 की जनगणना दिखाती है कि आठवीं अनुसूची में दर्ज भाषाओं में द्विभाषियों की संख्या कितनी है और उनमें कितने हिंदी–द्विभाषी हैं और कितने अंग्रेजी-द्विभाषी। इन आँकड़ों को पढ़ने के सवाल पर कुछ विवाद है। पॉल ब्रास के अनुसार उत्तरी और पश्चिमी भाषाएँ बरतने वाले द्विभाषी होने के लिए हिंदी को प्राथमिकता देते हैं। दक्षिणी और पूर्वी भाषाएँ बरतने वालों की प्राथमिकता अंग्रेजी है। यानी भारत द्विभाषिता के मामले में बँटा हुआ है।

ब्रास को यह भी लगता है कि दक्षिण और पूर्वी भाषाओं ने एक 'सांस्कृतिक भाषा' के तौर पर हिंदी को खारिज कर दिया है। सांस्कृतिक से उनका क्या अर्थ है, यह समझ में नहीं आता क्योंकि उनके विश्लेषण की कसौटी उन 'लाइफ चांसिस' पर टिकी है जिसका जिक्र द्विभाषिता के मामले में महादेव आप्टे ने किया है। इन आँकड़ों को ब्रास के अलावा एक वैकल्पिक तरीके से भी पढ़ा जा सकता है। सिंधी, पंजाबी, नेपाली, मराठी, गुजराती और उर्दू बरतने वालों के बीच हिंदी द्विभाषिता के मामले में पहले ही अंग्रेजी से बहुत आगे चल रही है। यह अंतर दोगुने से भी ज्यादा से लेकर दस-बारह फीसदी तक दिखता है। असमी के संदर्भ में भी हिंदी आगे है लेकिन वहाँ दोनों द्विभाषिताओं के बीच कुछ कम यानी 2.71 प्रतिशत का अंतर है। इसी तरह मणिपुरी और ओड़िया के संदर्भ में अंग्रेजी आगे है लेकिन हिंदी केवल 1.96 और 1.26 प्रतिशत के बेहद मामूली अंतर से ही पिछड़ रही है।

दक्षिण भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में अंग्रेजी द्विभाषिता हिंदी से कहीं बेहतर है, लेकिन आँकड़ों की रोशनी में देखने पर हिंदी की स्थिति केवल तमिलनाडु

के मामले में बेहद खराब निकलती है। यहाँ अंग्रेजी के 14 फीसदी द्विभाषियों के मुकाबले हिंदी के द्विभाषी डेढ़ फीसदी के आस-पास ही हैं। लेकिन बाकी दक्षिणी क्षेत्र में स्थिति इतनी बुरी नहीं है। सौ फीसदी साक्षरता वाले क्षेत्र मलयालम में अंग्रेजी द्विभाषिता अगर 24.35 प्रतिशत है तो हिंदी-द्विभाषिता भी 19.07 फीसदी है। इस आँकड़े को देख कर किसी भी हिंदी समर्थक को सुखद आश्चर्य हो सकता है। इसी तरह कन्नड़ भाषी क्षेत्र में अंग्रेजी-हिंदी द्विभाषिताओं का अंतर महज तीन फीसदी से अंग्रेजी के पक्ष में झुका हुआ है। इसी तरह तेलुगू क्षेत्र में भी द्विभाषिता का यह अंतर केवल दो फीसदी है। दक्षिण भारत में उम्मीद से बेहतर परिणाम प्राप्त करने के बाद हिंदी जिस क्षेत्र में बहुत अच्छे नतीजे प्राप्त करती हुई दिखती है, वह है बंगाल। बंगाल में दोनों द्विभाषिताओं में अंग्रेजी हिंदी से केवल 2.40 प्रतिशत ही आगे है।

1961 की जनगणना में द्विभाषिता के आँकड़ों पर नजर डालते ही पॉल ब्रास द्वारा किया गया सरलीकरण अपने आप खारिज हो जाता है। हिंदी-विरोध के गढ़ समझे जाने वाले बंगाल में अंग्रेजी उस समय भी तीन फीसदी से आगे थी अर्थात् इस दौरान बंगाल में अंग्रेजी–द्विभाषिता में जरा भी बढ़ोतरी नहीं हुई और हिंदी ने अपनी वृद्धि-दर कायम रखी है। 1961 की जनगणना बताती है कि कन्नड़भाषी, तमिलभाषी और तेलुगूभाषी क्षेत्र में हिंदी–द्विभाषिता पूरी तरह से गैर-हाजिर थी। मलयालमभाषी क्षेत्र में वह आधे फीसदी से भी कम थी। इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि पिछले तीस सालों में दक्षिण के प्रमुख भाषाई क्षेत्रों में हिंदी-द्विभाषिता में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। मलयालम, कन्नड़ और तेलुगू में वह अंग्रेजी के निकट आती जा रही है और तमिलनाडु में उसने अपनी उपस्थिति दर्ज करा दी है। जिन क्षेत्रों में हिंदी-द्विभाषिता जबरदस्त रूप से बढ़ी है वह है गुजरात। असमियाभाषियों के बीच तो स्थिति उलट ही गयी है। 1961 में वहाँ अंग्रेजी-द्विभाषी अधिक थे, पर 1991 में हिंदी-द्विभाषी आगे निकल गये हैं। 1961 और 1991 के बीच दोनों द्विभाषिताओं की वृद्धि-दर से स्पष्ट है कि हिंदी-द्विभाषिता की रूपरेखा में उत्तर, मध्य और उत्तर–पूर्व के साथ दक्षिण भी जुड़ गया है।

अंग्रेजी और हिंदी के बीच द्विभाषिता की इस होड़ के लिए 1991 से लेकर 2001 के बीच की अवधि बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह भूमण्डलीकरण का दौर है और समझा जाता है कि इस दौरान अंग्रेजी की आर्थिक-सामाजिक उपयोगिता में पहले के मुकाबले बहुत बढ़ोतरी हुई है। उसने यूरोप की स्थापित

भाषाओं के दायरों में भी अतिक्रमण शुरू कर दिया है। हमारे पास 2001 की जनगणना के आँकड़े हैं जिनसे पता लगाया जा सकता है कि भूमण्डलीकरण के प्रभाव के तहत इस होड़ की दिशा अब क्या है। दक्षिण और पूर्वी भाषाओं में हुए द्विभाषिता संबंधी परिवर्तनों का विश्लेषण बताता है इन क्षेत्रों में हिंदी-द्विभाषिता का प्रतिशत कमोबेश दस साल पहले जितना ही बना हुआ है। असम में हिंदी अभी भी आगे है, बंगाल में हिंदी-द्विभाषी अंग्रेजी के और नजदीक आये हैं, तमिल में हिंदी ने अपनी जो उपस्थिति दर्ज करायी थी उसमें अंग्रेजी की बढ़ी हुई प्रतिष्ठा कटौती नहीं कर पायी है, कन्नड़ में अंग्रेजी-द्विभाषिता हिंदी से केवल मामूली अंतर से ही आगे रह गयी है, मलयालम क्षेत्र में हिंदी-द्विभाषिता का मजबूत प्रदर्शन जारी है और तेलुगू क्षेत्र में हिंदी–द्विभाषिता की स्थिति पहले की तरह आश्वस्तिकारक बनी हुई है। ओड़िया क्षेत्र में दोनों द्विभाषिताएँ करीब-करीब बराबरी की स्थिति में हैं। दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि जिन क्षेत्रों में हिंदी अंग्रेजी से बहुत आगे थी, जैसे मराठी, गुजराती, उर्दू, पंजाबी, सिंधी, नेपाली, मैथिली और डोगरी, उनमें अंग्रेजी–द्विभाषिता अपनी स्थिति सुधारने में विफल रही है। 1991 से 2001 के बीच दोनों द्विभाषिताओं की वृद्धि-दर का एक अंदाजा ग्राफ-2 से लगाया जा सकता है। यहीं सवाल उठता है कि 1961, 1991 और 2001 की जनगणनाओं के इस विश्लेषण में हिंदी के अंग्रेजी-द्विभाषियों और उर्दू के अंग्रेजी-द्विभाषियों को किस श्रेणी में रखा जाना चाहिए? हिंदी और उर्दू का अंग्रेजी-द्विभाषी हर तरह से दोनों तरह की द्विभाषिताओं से सम्पन्न है। उसे द्विभाषिता की इस प्रतियोगिता से तटस्थ कर करके विश्लेषण करना चाहिए। 1961 की जनगणना में तो हिंदुस्तानी बोलने वाले भी अलग से दर्ज किये गये थे। हिंदुस्तानी के अंग्रेजी-द्विभाषी भी तटस्थ कर देने चाहिए।

इस विश्लेषण से पता चलता है कि अंग्रेजी के मुकाबले सम्पर्क-भाषा बनने के मामले में अखिल भारतीय पैमाने पर हिंदी की स्थिति उत्तरोत्तर सुदृढ़ हुई है। लेकिन सिर्फ द्विभाषिता के इन जनगणना प्रदत्त आँकड़ों के आधार पर सम्पर्क-भाषा के सभी पहलुओं पर विचार नहीं हो सकता। हिंदी-क्षेत्र में सम्पर्क-भाषा को यूरोपीय किस्म की राष्ट्र–भाषा के आईने में देखने की प्रवृत्ति काफी प्रबल है। यह रवैया दो तरह की माँग करता है–पहली, उत्तर भारत की जनपदीय भाषाओं के पैरोकार अगर उन्हें आठवीं अनुसूची में माँग करने की राजनीति करेंगे, तो हिंदी की बहुसंख्यक दावेदारी कमजोर हो जाएगी और दूसरी,

गैर-हिंदीभाषियों के लिए हिंदी समझना-बोलना ही काफी नहीं है, उन्हें उत्तर–भारतीयों की तरह हिंदी लिखना-पढ़ना भी आना चाहिए। यह आग्रह दृश्य-श्रव्य मीडिया के जरिये हुए हिंदी के प्रसार के प्रति असहज है, क्योंकि यह प्रक्रिया अहिंदीभाषियों को हिंदी का 'लिटराटी' बनाने की तरफ नहीं ले जाती। दरअसल, यह दूसरी माँग हिंदी को उस खाने में फिट करना चाहती है जिसमें आजकल अंग्रेजी है। अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं का रिश्ता डॉयग्लॉसिकल है जिसके तहत अंग्रेजी को सामाजिक-सांस्कृतिक तौर पर बेहतर मान कर सीखा–सिखाया जाता है। इस प्रक्रिया के साथ सीखने वाले की अपनी भाषा को जाने-अनजाने 'अनलर्न' करने का सिलसिला भी जुड़ा रहता है। हिंदी को सारे देश की सम्पर्क–भाषा बनते हुए देखने की इच्छा रखने वालों को यह तय करना पड़ेगा कि क्या वे भी अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अंग्रेजी जैसा ही डॉयग्लॉसिक रिश्ता बनाना चाहते हैं?

हिन्दी एक राष्ट्रीय सम्पर्क की भाषा के रूप में

भारत की भाषायी स्थिति और उसमें हिंदी के स्थान को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिंदी आज भारतीय जनता के बीच राष्ट्रीय संपर्क की भाषा है। हिंदी की भाषागत विशेषता भी यह है कि उसे सीखना और व्यवहार में लाना अन्य भाषाओं के अपेक्षा ज्यादा सुविधाजनक और आसान है। हिंदी भाषा में एक विशेषता यह भी है कि वह लोक भाषा की विशेषताओं से संपन्न है, बड़े पैमाने पर अशिक्षित लोचदार भाषा है, जिससे वह दूसरी भाषाओं में शब्दों, वाक्य-संरचना और बोलचालजन्य आग्रहों को स्वीकार करने में समर्थ है। इसके अलावा ध्यान देने की बात यह है कि हिंदी में आज विभिन्न भारतीय भाषाओं का साहित्य लाया जा चुका है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के लेखकों को हिंदी के पाठक जानते हैं, उनके बारे में जानते हैं। भारत की भाषायी विविधता के बीच हिंदी की भाषायी पहचान मुख्यत: हिंदी है। भारत के औद्योगिक प्रतिष्ठानों के आधार पर बने नगरों और महानगरों में भारत की राष्ट्रीय एकता और सामाजिक संस्कृति का स्वरूप देखने को मिलता है। इसी प्रंसग में कहना चाहता हूं कि यदि हिंदी-क्षेत्र के राज्य औद्योगिक रूप से और ज्यादा विकसित होते तो राष्ट्रीय एकता और भाषायी एकता का आधार और विस्तृत और मजबूत होता। लेकिन आज की स्थिति में भी भारत में हिंदी की जो राष्ट्रीय भूमिका है, उतना भी उसके अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व को महसूस कराने में समर्थ है।

साम्राज्यवाद ने खुद मनुष्य का जो व्यापार अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में किया, उसके फलस्वरूप भारत से बड़ी तादाद में मजदूर दूसरे देशों में ले जाए गए। मॉरिशस, फिजी, दक्षिण अफ्रीका, के अन्य कई देश, ब्रिटिश गायना, त्रिनिडाड, सूरीनाम, न्यूजीलैंड आदि देशों में जो बड़ी संख्या में भारतीय मूल के लोग हैं, वे मुख्यत: हिंदीभाषी हैं अथवा यह कहें कि वे हिंदी जानते हैं, हिंदी पढ़ते-लिखते हैं। नेपाल, पाकिस्तान, बांग्लादेश, भूटान और म्यांमार (वर्मा) में तो स्वभावत: हिंदी भाषी जनता की संख्या बहुत बड़ी हैं। आधुनिक युग में नई संचार-व्यवस्था, आवागमन के नए साधनों की उपलब्धता और जीवन की नई जरूरतों से प्रेरित होकर इंग्लैंड, अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी, इटली, रूस और यूरोप के अन्य अनेक देशों में भी भारत से जा बसे लोगों में हिंदीभाषी लोग आज रह रहे हैं। हिंदीभाषियों को अथवा हिंदी जानने वालों की यह विशाल संख्या हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय संपर्क का साक्षात्कार कराती है। संख्या की दृष्टि से हिंदी दुनिया की तीन बड़ी भाषाओं में एक है, शेष दो हैं अंग्रेजी और चीनी। कुछ लोग तो कहते हैं कि हिंदी जाननेवालों की संख्या दुनिया में अंग्रेजी जाननेवालों से ज्यादा है।

आंकड़ों के खेल से अलग हिंदी को अंतर्राष्ट्रीय भूमिका को स्थापित करने वाले कई तथ्य और हैं और वे तथ्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं। एक बात तो यह है कि हिंदी भाषा के साहित्य ने पिछली एक सदी में बड़ी तेजी से विकास किया है, वह कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना तथा चिंतनपरक साहित्य के क्षेत्रों में इतनी विकसित हुई है, इतनी ऊपर उठी है, कि आज वह किसी भी भाषा के श्रेष्ठ साहित्य का मुकाबला कर सकती है। प्रेमचंद्र, निराला, जयशंकर प्रसाद, रामचंद्र शुक्ल, राहुल सांस्कृत्यायन, मुक्तिबोध, नागार्जुन आदि के लेखन के अनुवाद दुनिया की विभिन्न भाषाओं में हुए हैं। इस प्रक्रिया से हिंदी के जरिए दुनिया की जनता से भारत की जनता का संवदेनात्मक संबंध कायम हुआ है। यह संबंध रचनात्मक और संवेदनात्मक तो है ही, सांस्कृतिक विनियम का एक रूप भी प्रस्तुत करता है। विगत साहित्य में भारतीय चेतना का प्रतिनिधित्व सबसे अधिक हिंदी ही करती है। इतना ही नहीं, हिंदी के माध्यम से दूसरी भाषाओं के साहित्य का परिचय भी विश्व का हिंदी-संप्रदाय प्राप्त करता है। यह एक बड़ा कारण है कि दुनियाभर में हिन्दी का अध्ययन आज वे लोग भी कर रहे हैं, जो हिंदीभाषी या भारतीय मूल के नहीं हैं। इस प्रकार आज की परिस्थिति में हिंदी की एक अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी विकसित हो रही है।

उपयुक्त तथ्यों और बातों से अलग अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि आज के वित्तीय पूंजीवाद ने जो विशाल विश्व बाजार विकसित किया है, उसमें भारत का विशेष स्थान है। भारत में पूंजीवाद का विकास अवरोधों के बीच हुआ है, फिर भी देश के आजाद होने के बाद पूर्व सोवियत संघ तथा समाजवादी देशों की मदद से राष्ट्रीय पूंजीवाद का आर्थिक आत्मनिर्भरता का जो विकास हुआ, उससे भारत में एक बड़े मध्य वर्ग और नव धनाढ्य वर्ग का विकास हुआ है, जिसकी आबादी कम से कम पच्चीस करोड़ है। अमेरिका की बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रतिनिधियों तथा उसके विचारकों और सिद्धांतकारों ने कुछ साल पहले भारत के बारे में एक सेमिनार आयोजित करके इस बात पर विचार किया कि भारत में उनके लिए क्या गुंजाइश है। उनका निष्कर्ष यह था कि भारत मध्यवर्ग, उच्च वर्ग और नवधनाढ्य वर्ग के पच्चीस-तीस करोड़ लोग उनके माल का बाजार बनने के लिए काफी हैं। अब यह देखें कि पच्चीस-तीस करोड़ में हिंदीभाषियों की संख्या बीस करोड़ से कम तो नहीं है। अतः इस जनता को अपना उपभोक्ता बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर काम करनेवाली कंपनियों के प्रतिनिधियों एवं एजेंटों को हिंदी सीखनी है। यदि भारत का इतना आर्थिक विकास न हुआ होता, तो हिंदी का रुतबा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इतना न होता, जितना आज हमें अनुभव होता है।

बहुराष्ट्रीय कंपनियां और इजारेदार घरानों को अपने माल के प्रचार के लिए हिंदी का सहारा लेना पड़ता है। उद्योग का एक बड़ा क्षेत्र है फिल्म और इलेक्ट्रॉनिक जनसंचार माध्यम। हिंदी फिल्म और इलेक्ट्रॉनिक माध्यम में हिंदी चैनल अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी का प्रसार करके हिंदी के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय बाजार बनाने की भूमिका अदा करते हैं। यह है हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का ठोस आधार, जिस पर खड़ी होकर हिंदी अंतर्राष्ट्रीय संपर्क की भाषा बन रही है। ब्रिटिश साम्राज्य के प्रभाव के अवशेष और अमेरिकी साम्राज्य की वर्तमान दबंगई के कारण यह बात फैलाई जाती रही है कि अंग्रेजी विश्व भाषा है या विश्व बाजार की भाषा है। यह अर्द्धसत्य है। सच्चाई को यों कह सकते हैं कि अंग्रेजी एक महत्त्वपूर्ण विश्व भाषा है और विश्व बाजार की भी एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। लेकिन विश्व बाजार में संपर्क तो चीनी, जापानी, फ्रांसीसी, जर्मन, स्पानी के साथ ही हिंदी के माध्यम से भी होता है। भारत के फैलते हुए बाजार और दक्षिणपूर्व एशियाई देशों के संगठन की बढ़ती हुई भूमिका की पृष्ठभूमि में हिंदी के महत्त्व और भूमिका में भी वृद्धि होती जा रही है।

वैज्ञानिक-तकनीकी क्रांति के इस दौर में यह उल्लेखनीय है कि वैज्ञानिक-तकनीकी कर्मियों की संख्या की दृष्टि से दुनिया में भारत का तीसरा स्थान है। ये तकनीकी कर्मी दुनिया के विभिन्न देशों में काम करते हैं और हिंदी के प्रसार की भूमिका अदा करते हैं। लेकिन इस प्रसंग में एक बात और उल्लेखनीय है। इलेक्ट्रॉनिक संचार-माध्यम और कम्प्यूटर आदि के उपयोग में हिंदी ने धीरे-धीरे अपनी जगह बना ली है। इससे एक तरफ इन माध्यमों से हिंदी का प्रसार हो रहा है, तो दूसरी तरफ हिंदी क्षेत्र में इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों का बाजार भी फैल रहा है। इससे हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका मजबूत हो रही है। ये ही बातें हैं, जिनको ध्यान में रखकर अमेरिकी राष्ट्रपति जार्ज बुश ने कुछ दिन पहले कहा था कि भारत को समझना है, तो हिंदी सीखो। यह हिंदी के प्रति या भारत के प्रति बुश की उदारता नहीं है, बल्कि अपनी नवउपनिवेशवादी योजना को कारगर बनाने के लिए हिंदी का उनके द्वारा इस्तेमाल किया जाना है। लेकिन महत्त्वपूर्ण यह है कि हिंदी हमारे चिंतन की, हमारे सपनों की, हमारे प्रतिरोध की भाषा बनकर हमारी सांस्कृतिक और राष्ट्रीय स्वायत्तता की रक्षा की भाषा बनकर हमें ताकत देती है।

अंतिम बात यह है कि आज भूमंडलीयकरण यानी अमेरिकीकरण के इस दौर में एशिया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका के राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता, संप्रभुता और विकास के साधनों की रक्षा के संघर्ष में भारत की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस संघर्ष में भारत की भूमिका के साथ हिंदी भी अपनी ऐतिहासिक भूमिका अदा करेगी, ऐसी संभावना है। भारत सरकार में हावी नौकरशाही यद्यपि भारत को और हिंदी को भी अपनी वाजिब भूमिका अदा करने से रोकती है, उसकी भूमिका को कुंठित करती है। इसके बावजूद जनता का और राष्ट्रीय जरूरतों के आग्रहों का दबाव नौकरशाही को नियंत्रित करता है और हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका का उजागर करता है।

6

हिंदी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप

हिन्दी पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता की कहानी है। हिन्दी पत्रकारिता के आदि उन्नायक जातीय चेतना, युगबोध और अपने महत् दायित्व के प्रति पूर्ण सचेत थे। कदाचित् इसलिए विदेशी सरकार की दमन-नीति का उन्हें शिकार होना पड़ा था, उसके नृशंस व्यवहार की यातना झेलनी पड़ी थी। उन्नीसवीं शताब्दी में हिन्दी गद्य-निर्माण की चेष्टा और हिन्दी-प्रचार आन्दोलन अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितियों में भयंकर कठिनाइयों का सामना करते हुए भी कितना तेज और पुष्ट था इसका साक्ष्य 'भारतमित्र' (सन् 1878 ई, में) 'सार सुधानिधि' (सन् 1879 ई.) और 'उचित वक्ता' (सन् 1880 ई.) के जीर्ण पृष्ठों पर मुखर है। भारत में प्रकाशित होने वाला पहला हिंदी भाषा का अखबार, उदंत मार्तंड (द राइजिंग सन), 30 मई 1826 को शुरू हुआ। इस दिन को "हिंदी पत्रकारिता दिवस" के रूप में मनाया जाता है, क्योंकि इसने हिंदी भाषा में पत्रकारिता की शुरुआत को चिह्नित किया था।

वर्तमान में हिन्दी पत्रकारिता ने अंग्रेजी पत्रकारिता के दबदबे को खत्म कर दिया है। पहले देश-विदेश में अंग्रेजी पत्रकारिता का दबदबा था लेकिन आज हिन्दी भाषा का झण्डा चहुंदिश लहरा रहा है। 30 मई को 'हिन्दी पत्रकारिता दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास

भारतवर्ष में आधुनिक ढंग की पत्रकारिता का जन्म अठारहवीं शताब्दी के चतुर्थ चरण में कलकत्ता, बंबई और मद्रास में हुआ। 1780 ई. में प्रकाशित हिके (Hickey) का "कलकत्ता गजट" कदाचित् इस ओर पहला प्रयत्न था। हिंदी के पहले पत्र उदंत मार्तण्ड (1826) के प्रकाशित होने तक इन नगरों की ऐंग्लोइंडियन अंग्रेजी पत्रकारिता काफी विकसित हो गई थी।

इन अंतिम वर्षों में फारसी भाषा में भी पत्रकारिता का जन्म हो चुका था। 18वीं शताब्दी के फारसी पत्र कदाचित् हस्तलिखित पत्र थे। 1801 में 'हिंदुस्थान इंटेलिजेंस ओरिऐंटल ऐंथोलॉजी' नाम का जो संकलन प्रकाशित हुआ उसमें उत्तर भारत के कितने ही "अखबारों" के उद्धरण थे। 1810 में मौलवी इकराम अली ने कलकत्ता से लीथो पत्र "हिंदोस्तानी" प्रकाशित करना आरंभ किया। 1816 में गंगा किशोर भट्टाचार्य ने "बंगाल गजट" का प्रवर्तन किया। यह पहला बंगला पत्र था। बाद में श्रीरामपुर के पादरियों ने प्रसिद्ध प्रचार-पत्र "समाचार दर्पण" को (27 मई 1818) जन्म दिया। इन प्रारंभिक पत्रों के बाद 1823 में हमें बँगला भाषा के 'समाचार-चंद्रिका' और "संवाद कौमुदी", फारसी उर्दू के "जामे जहाँनुमा" और "शमसुल अखबार" तथा गुजराती के "मुंबई समाचार" के दर्शन होते हैं।

यह स्पष्ट है कि हिंदी पत्रकारिता बहुत बाद की चीज नहीं है। दिल्ली का "उर्दू अखबार" (1833) और मराठी का "दिग्दर्शन" (1837) हिंदी के पहले पत्र "उदंत मार्तंड" (1826) के बाद ही आए। "उदंत मार्तंड" के संपादक पंडित जुगल किशोर थे। यह साप्ताहिक पत्र था। पत्र की भाषा पछाँही हिंदी रहती थी, जिसे पत्र के संपादकों ने "मध्यदेशीय भाषा" कहा है। यह पत्र 1827 में बंद हो गया। उन दिनों सरकारी सहायता के बिना किसी भी पत्र का चलना असंभव था। कंपनी सरकार ने मिशनरियों के पत्र को डाक आदि की सुविधा दे रखी थी, परंतु चेष्टा करने पर भी "उदंत मार्तंड" को यह सुविधा प्राप्त नहीं हो सकी।

हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण

1826 ई. से 1873 ई. तक को हम हिंदी पत्रकारिता का पहला चरण कह सकते हैं। 1873 ई. में भारतेन्दु ने "हरिश्चंद्र मैग्जीन" की स्थापना की। एक वर्ष

बाद यह पत्र "हरिश्चंद्र चंद्रिका" नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे भारतेन्दु का "कविवचन सुधा" पत्र 1867 में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, परंतु नई भाषाशैली का प्रवर्तन 1873 में "हरिश्चंद्र मैग्जीन" से ही हुआ। इस बीच के अधिकांश पत्र प्रयोग मात्र कहे जा सकते हैं और उनके पीछे पत्रकला का ज्ञान अथवा नए विचारों के प्रचार की भावना नहीं है। "उदन्त मार्तण्ड" के बाद प्रमुख पत्र हैं–

बंगदूत (1829), प्रजामित्र (1834), बनारस अखबार (1845), मार्तंड पंचभाषीय (1846), ज्ञानदीप (1846), मालवा अखबार (1849), जगद्दीप भास्कर (1849), सुधाकर (1850), साम्यदन्त मार्तंड (1850), मजहरुलसरूर (1850), बुद्धिप्रकाश (1852), ग्वालियर गजेट (1853), समाचार सुधावर्षण (1854), दैनिक कलकत्ता, प्रजाहितैषी (1855), सर्वहितकारक (1855), सूरज प्रकाश (1861), जगलाभचिंतक (1861), सर्वोपकारक (1861), प्रजाहित (1861), लोकमित्र (1835), भारतखंडामृत (1864), तत्वबोधिनी पत्रिका (1865), ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका (1866), सोमप्रकाश (1866), सत्यदीपक (1866), वृत्तांतविलास (1867), ज्ञानदीपक (1867), कवि वचन सुधा (1867), धर्मप्रकाश (1867), विद्याविलास (1867), वृत्तांतदर्पण (1867), विद्यादर्श (1869), ब्रह्मज्ञान प्रकाश (1869), अलमोड़ा अखबार (1870), आगरा अखबार (1870), बुद्धिविलास (1870), हिंदू प्रकाश (1871), प्रयागदूत (1871), बुंदेलखंड अखबर (1871), प्रेमपत्र (1872) और बोधा समाचार (1872)।

इन पत्रों में से कुछ मासिक थे, कुछ साप्ताहिक। दैनिक पत्र केवल एक था "समाचार सुधावर्षण" जो द्विभाषीय (बंगला हिंदी) था और कलकत्ता से प्रकाशित होता था। यह दैनिक पत्र 1871 तक चलता रहा। अधिकांश पत्र आगरा से प्रकाशित होते थे जो उन दिनों एक बड़ा शिक्षा केंद्र था और विद्यार्थी समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। शेष ब्रह्मसमाज, सनातन धर्म और मिशनरियों के प्रचार कार्य से संबंधित थे। बहुत से पत्र द्विभाषीय (हिंदी उर्दू) थे और कुछ तो पंचभाषीय तक थे। इससे भी पत्रकारिता की अपरिपक्व दशा ही सूचित होती है। हिंदी प्रदेश के प्रारंभिक पत्रों में "बनारस अखबार" (1845) काफी प्रभावशाली था और उसी की भाषा नीति के विरोध में 1850 में तारामोहन मैत्र ने काशी से साप्ताहिक "सुधाकर" और 1855 में राजा लक्ष्मण सिंह ने आगरा से "प्रजा हितैषी" का प्रकाशन आरंभ किया था। राजा शिवप्रसाद का

"बनारस अखबार" उर्दू भाषा शैली को अपनाता था तो ये दोनों पत्र पंडिताऊ तत्सम प्रधान शैली की ओर झुकते थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1867 से पहले भाषा शैली के संबंध में हिंदी पत्रकार किसी निश्चित शैली का अनुसरण नहीं कर सके थे। इस वर्ष 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन हुआ और एक तरह से हम उसे पहला महत्त्वपूर्ण पत्र कह सकते हैं। पहले यह मासिक था, फिर पाक्षिक हुआ और अंत में साप्ताहिक। भारतेन्दु के बहुविध व्यक्तित्व का प्रकाशन इस पत्र के माध्यम से हुआ, परंतु सच तो यह है कि "हरिश्चंद्र मैग्जीन" के प्रकाशन (1873) तक वे भी भाषाशैली और विचारों के क्षेत्र में मार्ग ही खोजते दिखाई देते हैं।

हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग–भारतेन्दु युग

हिंदी पत्रकारिता का दूसरा युग 1873 से 1900 तक चलता है। इस युग के एक छोर पर भारतेन्दु का "हरिश्चंद्र मैग्जीन" था और नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा अनुमोदन प्राप्त "सरस्वती"। इन 27 वर्षों में प्रकाशित पत्रों की संख्या 300–350 से ऊपर है और ये नागपुर तक फैले हुए हैं। अधिकांश पत्र मासिक या साप्ताहिक थे। मासिक पत्रों में निबंध, नवल कथा (उपन्यास), वार्ता आदि के रूप में कुछ अधिक स्थायी संपत्ति रहती थी, परन्तु अधिकांश पत्र 10–15 पृष्ठों से अधिक नहीं जाते थे और उन्हें हम आज के शब्दों में "विचारपत्र" ही कह सकते हैं। साप्ताहिक पत्रों में समाचारों और उनपर टिप्पणियों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान था। वास्तव में दैनिक समाचार के प्रति उस समय विशेष आग्रह नहीं था और कदाचित् इसीलिए उन दिनों साप्ताहिक और मासिक पत्र कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण थे। उन्होंने जनजागरण में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग लिया था।

उन्नीसवीं शताब्दी के इन 25 वर्षों का आदर्श भारतेन्दु की पत्रकारिता थी। "कवि वचन सुधा" (1867), "हरिश्चंद्र मैग्जीन" (1874), श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका" (1874), बालबोधिनी (स्त्रीजन की पत्रिका, 1874) के रूप में भारतेन्दु ने इस दिशा में पथप्रदर्शन किया था। उनकी टीका-टिप्पणियों से अधिकरी तक घबराते थे और "कवि वचन सुधा" के "पंच" पर रुष्ट होकर काशी के मजिस्ट्रेट ने भारतेन्दु के पत्रों को शिक्षा विभाग के लिए लेना भी बंद करा दिया था। इसमें संदेह नहीं कि पत्रकारिता के क्षेत्र भी भारतेन्दु पूर्णतया निर्भीक थे और उन्होंने नए-नए पत्रों के लिए प्रोत्साहन दिया। "हिंदी प्रदीप",

"भारतजीवन" आदि अनेक पत्रों का नामकरण भी उन्होंने ही किया था। उनके युग के सभी पत्रकार उन्हें अग्रणी मानते थे।

भारतेन्दु के बाद

भारतेन्दु के बाद इस क्षेत्र में जो पत्रकार आए उनमें प्रमुख थे पंडित रुद्रदत्त शर्मा, (भारतमित्र, 1877), बालकृष्ण भट्ट (हिंदी प्रदीप, 1877), दुर्गा प्रसाद मिश्र (उचित वक्ता, 1878), पंडित सदानंद मिश्र (सारसुधानिधि, 1878), पंडित वंशीधर (सज्जन-कीर्त्ति-सुधाकर, 1878), बदरी नारायण चौधरी "प्रेमधन" (आनंदकादंबिनी, 1881), देवकी नंदन त्रिपाठी (प्रयाग समाचार, 1882), राधाचरण गोस्वामी (भारतेन्दु, 1882), पंडित गौरीदत्त (देवनागरी प्रचारक, 1882), राज रामपाल सिंह (हिंदुस्तान, 1883), प्रताप नारायण मिश्र (ब्राह्मण, 1883), अंबिकादत्त व्यास, (पीयूषप्रवाह, 1884), बाबू रामकृष्ण वर्मा (भारतजीवन, 1884), पं. रामगुलाम अवस्थी (शुभचिंतक, 1888), योगेशचंद्र वसु (हिंदी बंगवासी, 1890), पं. कुंदनलाल (कवि व चित्रकार, 1891) और बाबू देवकीनंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथ दास (साहित्य सुधानिधि, 1894)। 1895 ई. में "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" का प्रकाशन आरंभ होता है। इस पत्रिका से गंभीर साहित्य समीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिए हम इसे एक निश्चित प्रकाशस्तंभ मान सकते हैं। 1900 ई. में "सरस्वती" और "सुदर्शन" के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है।

इन 25 वर्षों में हिन्दी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई। प्रारंभिक पत्र शिक्षा प्रसार और धर्म प्रचार तक सीमित थे। भारतेन्दु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित कीं। उन्होंने ही "बालाबोधिनी" (1874) नाम से पहला स्त्री-मासिक-पत्र चलाया। कुछ वर्ष बाद महिलाओं को स्वयं इस क्षेत्र में उतरते देखते हैं–"भारतभगिनी" (हरदेवी, 1888), "सुगृहिणी" (हेमंतकुमारी, 1889)। इन वर्षों में धर्म के क्षेत्र में आर्य समाज और सनातन धर्म के प्रचारक विशेष सक्रिय थे। ब्रह्मसमाज और राधास्वामी मत से संबंधित कुछ पत्र और मिर्जापुर जैसे ईसाई केंद्रों से कुछ ईसाई धर्म संबंधी पत्र भी सामने आते हैं, परंतु युग की धार्मिक प्रतिक्रियाओं को हम आर्यसमाज के और पौराणिकों के पत्रों में ही पाते हैं। आज ये पत्र कदाचित् उतने महत्त्वपूर्ण नहीं जान पड़ते, परंतु इसमें संदेह नहीं कि उन्होंने हिन्दी की गद्य शैली को पुष्ट किया और जनता में नए विचारों की ज्योति भी। इन धार्मिक वाद-विवादों के फलस्वरूप समाज के

विभिन्न वर्ग और संप्रदाय सुधार की ओर अग्रसर हुए और बहुत शीघ्र ही सांप्रदायिक पत्रों की बाढ़ आ गई। सैकड़ों की संख्या में विभिन्न जातीय और वर्गीय पत्र प्रकाशित हुए और उन्होंने असंख्य जनों को वाणी दी।

आज वही पत्र हमारी इतिहासचेतना में विशेष महत्त्वपूर्ण हैं जिन्होंने भाषा शैली, साहित्य अथवा राजनीति के क्षेत्र में कोई अप्रतिम कार्य किया हो। साहित्यिक दृष्टि से "हिंदी प्रदीप" (1877), ब्राह्मण (1883), क्षत्रिय पत्रिका (1880), आनंदकादंबिनी (1881), भारतेन्दु (1882), देवनागरी प्रचारक (1882), वैष्णव पत्रिका (पश्चात् पीयूषप्रवाह, 1883), कवि के चित्रकार (1891), नागरी नीरद (1883), साहित्य सुधानिधि (1894) और राजनीतिक दृष्टि से भारत मित्र (1877), उचित वक्ता (1878), सार सुधानिधि (1878), भारतोदय (दैनिक, 1883), भारत जीवन (1884), भारतोदय (दैनिक, 1885), शुभचिंतक (1887) और हिंदी बंगवासी (1890) विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन पत्रों में हमारे 19वीं शताब्दी के साहित्य रसिकों, हिंदी के कर्मठ उपासकों, शैलीकारों और चिंतकों की सर्वश्रेष्ठ निधि सुरक्षित है। यह क्षोभ का विषय है कि हम इस महत्त्वपूर्ण सामग्री का पत्रों की फाइलों से उद्धार नहीं कर सके। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, सदानं मिश्र, रुद्रदत्त शर्मा, अंबिकादत्त व्यास और बालमुकुंद गुप्त जैसे सजीव लेखकों की कलम से निकले हुए न जाने कितने निबंध, टिप्पणी, लेख, पंच, हास परिहास औप स्केच आज हमें अलभ्य हो रहे हैं। आज भी हमारे पत्रकार उनसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। अपने समय में तो वे अग्रणी थे ही।

तीसरा चरण–बीसवीं शताब्दी के प्रथम बीस वर्ष

बीसवीं शताब्दी की पत्रकारिता हमारे लिए अपेक्षाकृत निकट है और उसमें बहुत कुछ पिछले युग की पत्रकारिता की ही विविधता और बहुरूपता मिलती है। 19वीं शती के पत्रकारों को भाषा-शैलीक्षेत्र में अव्यवस्था का सामना करना पड़ा था। उन्हें एक ओर अंग्रेजी और दूसरी ओर उर्दू के पत्रों के सामने अपनी वस्तु रखनी थी। अभी हिंदी में रुचि रखनेवाली जनता बहुत छोटी थी। धीरे-धीरे परिस्थिति बदली और हम हिंदी पत्रों को साहित्य और राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व करते पाते हैं। इस शताब्दी से धर्म और समाज सुधार के आंदोलन कुछ पीछे पड़ गए और जातीय चेतना ने धीरे-धीरे राष्ट्रीय चेतना का रूप ग्रहण कर लिया। फलतः अधिकांश पत्र, साहित्य और राजनीति को ही लेकर चले। साहित्यिक

पत्रों के क्षेत्र में पहले दो दशकों में आचार्य द्विवेदी द्वारा संपादित "सरस्वती" (1903-1918) का नेतृत्व रहा। वस्तुतः इन बीस वर्षों में हिंदी के मासिक पत्र एक महान साहित्यिक शक्ति के रूप में सामने आए। शृंखलित उपन्यास कहानी के रूप में कई पत्र प्रकाशित हुए–जैसे उपन्यास 1901, हिंदी नाविल 1901, उपन्यास लहरी 1902, उपन्यास सागर 1903, उपन्यास कुसुमांजलि 1904, उपन्यास बहार 1907, उपन्यास प्रचार 19012। केवल कविता अथवा समस्या पूर्ति लेकर अनेक पत्र उन्नीसवीं शतब्दी के अंतिम वर्षों में निकलने लगे थे। समालोचना के क्षेत्र में "समालोचक" (1902) और ऐतिहासिक शोध से संबंधित "इतिहास" (1905) का प्रकाशन भी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। परंतु सरस्वती ने "मिस्लेनी" () के रूप में जो आदर्श रखा था, वह अधिक लोकप्रिय रहा और इस श्रेणी के पत्रों में उसके साथ कुछ थोड़े ही पत्रों का नाम लिया जा सकता है, जैसे "भारतेन्दु" (1905), नागरी हितैषिणी पत्रिका, बाँकीपुर (1905), नागरी प्रचारक (1906), मिथिला मिहिर (1910) और इंदु (1909)। "सरस्वती" और "इंदु" दोनों हिन्दी की साहित्य चेतना के इतिहास के लिए महत्त्वपूर्ण हैं और एक तरह से हम उन्हें उस युग की साहित्यिक पत्रकारिता का शीर्षमणि कह सकते हैं। "सरस्वती" के माध्यम से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और "इंदु" के माध्यम से पंडित रूपनारायण पांडेय ने जिस संपादकीय सतर्कता, अध्यवसाय और ईमानदारी का आदर्श हमारे सामने रखा वह हिन्दी पत्रकारिता को एक नई दिशा देने में समर्थ हुआ।

परंतु राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता को नेतृत्व प्राप्त नहीं हो सका। पिछले युग की राजनीतिक पत्रकारिता का केंद्र कलकत्ता था। परंतु कलकत्ता हिंदी प्रदेश से दूर पड़ता था और स्वयं हिंदी प्रदेश को राजनीतिक दिशा में जागरूक नेतृत्व कुछ देर में मिला। हिंदी प्रदेश का पहला दैनिक राजा रामपालसिंह का द्विभाषीय "हिंदुस्तान" (1883) है, जो अंग्रेजी और हिंदी में कालाकाँकर से प्रकाशित होता था। दो वर्ष बाद (1885 में), बाबू सीताराम ने "भारतोदय" नाम से एक दैनिक पत्र कानपुर से निकालना शुरू किया। परंतु ये दोनों पत्र दीर्घजीवी नहीं हो सके और साप्ताहिक पत्रों को ही राजनीतिक विचारधारा का वाहन बनना पड़ा। वास्तव में उन्नीसवीं शतब्दी में कलकत्ता के भारत मित्र, वंगवासी, सार सुधा निधि और उचित वक्ता ही हिंदी प्रदेश की रानीतिक भावना का प्रतिनिधित्व करते थे। इनमें कदाचित् "भारतमित्र" ही सबसे अधिक स्थायी और शक्तिशाली था। उन्नीसवीं शताब्दी में बंगाल और महाराष्ट्र

लोक जाग्रति के केंद्र थे और उग्र राष्ट्रीय पत्रकारिता में भी ये ही प्रांत अग्रणी थे। हिंदी प्रदेश के पत्रकारों ने इन प्रांतों के नेतृत्व को स्वीकार कर लिया और बहुत दिनों तक उनका स्वतंत्र राजनीतिक व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सका। फिर भी हम "अभ्युदय" (1905), "प्रताप" (1913), "कर्मयोगी", "हिंदी केसरी" (1904-1908) आदि के रूप में हिंदी राजनीतिक पत्रकारिता को कई डग आगे बढ़ाते पाते हैं। प्रथम महायुद्ध की उत्तेजना ने एक बार फिर कई दैनिक पत्रों को जन्म दिया। कलकत्ता से "कलकत्ता समाचार", "स्वतंत्र" और "विश्वमित्र" प्रकाशित हुए, बंबई से "वेंकटेश्वर समाचार" ने अपना दैनिक संस्करण प्रकाशित करना आरंभ किया और दिल्ली से "विजय" निकला। 1921 में काशी से "आज" और कानपुर से "वर्तमान" प्रकाशित हुए। इस प्रकार हम देखते हैं कि 1921 में हिंदी पत्रकारिता फिर एक बार करवटें लेती है और राजनीतिक क्षेत्र में अपना नया जीवन आरंभ करती है। हमारे साहित्यिक पत्रों के क्षेत्र में भी नई प्रवृत्तियों का आरंभ इसी समय से होता है। फलतः बीसवीं शती के पहले बीस वर्षों को हम हिंदी पत्रकारिता का तीसरा चरण कह सकते हैं।

आधुनिक युग

1921 के बाद हिंदी पत्रकारिता का समसामयिक युग आरंभ होता है। इस युग में हम राष्ट्रीय और साहित्यिक चेतना को साथ-साथ पल्लवित पाते हैं। इसी समय के लगभग हिंदी का प्रवेश विश्वविद्यालयों में हुआ और कुछ ऐसे कृती संपादक सामने आए जो अंग्रेजी की पत्रकारिता से पूर्णतः परिचित थे और जो हिंदी पत्रों को अंग्रेजी, मराठी और बँगला के पत्रों के समकक्ष लाना चाहते थे। फलतः साहित्यिक पत्रकारिता में एक नए युग का आरंभ हुआ। राष्ट्रीय आंदोलनों ने हिंदी की राष्ट्रभाषा के लिए योग्यता पहली बार घोषित की और जैसे-जैसे राष्ट्रीय आंदोलनों का बल बढ़ने लगा, हिंदी के पत्रकार और पत्र अधिक महत्त्व पाने लगे। 1921 के बाद गांधी जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन मध्यवर्ग तक सीमित न रहकर ग्रामीणों और श्रमिकों तक पहुंच गया और उसके इस प्रसार में हिंदी पत्रकारिता ने महत्त्वपूर्ण योग दिया। सच तो यह है कि हिंदी पत्रकार राष्ट्रीय आंदोलनों की अग्र पंक्ति में थे और उन्होंने विदेशी सत्ता से डटकर मोर्चा लिया। विदेशी सरकार ने अनेक बार नए-नए कानून बनाकर समाचार पत्रों की स्वतंत्रता पर कुठाराघात किया परंतु जेल, जुर्माना और अनेकानेक मानसिक और आर्थिक कठिनाइयाँ झेलते हुए भी हिन्दी पत्रकारों ने स्वतंत्र विचार की दीपशिखा जलाए रखी।

1921 के बाद साहित्य क्षेत्र में जो पत्र आए उनमें प्रमुख हैं- स्वार्थ (1922), माधुरी (1923), मर्यादा, चाँद (1923), मनोरमा (1924), समालोचक (1924), चित्रपट (1925), कल्याण (1926), सुधा (1927), विशालभारत (1928), त्यागभूमि (1928), हंस (1930), गंगा (1930), विश्वमित्र (1933), रूपाभ (1938), साहित्य संदेश (1938), कमला (1939), मधुकर (1940), जीवन साहित्य (1940), विश्व भारती (1942), संगम (1942), कुमार (1944), नया साहित्य (1945), पारिजात (1945), हिमालय (1946) आदि।

वास्तव में आज हमारे मासिक साहित्य की प्रौढ़ता और विविधता में किसी प्रकार का संदेह नहीं हो सकता। हिंदी की अनेकानेक प्रथम श्रेणी की रचनाएँ मासिकों द्वारा ही पहले प्रकाश में आई और अनेक श्रेष्ठ कवि और साहित्यकार पत्रकारिता से भी संबंधित रहे। आज हमारे मासिक पत्र जीवन और साहित्य के सभी अंगों की पूर्ति करते हैं और अब विशेषज्ञता की ओर भी ध्यान जाने लगा है। साहित्य की प्रवृत्तियों की जैसी विकासमान झलक पत्रों में मिलती है, वैसी पुस्तकों में नहीं मिलती। वहाँ हमें साहित्य का सक्रिय, सप्राण, गतिशील रूप प्राप्त होता है।

राजनीतिक क्षेत्र में इस युग में जिन पत्र-पत्रिकाओं की धूम रही वे हैं-

कर्मवीर (1924), सैनिक (1924), स्वदेश (1921), श्रीकृष्ण संदेश (1925), हिंदूपंच (1926), स्वतंत्र भारत (1928), जागरण (1929), हिंदी मिलाप (1929), सचित्र दरबार (1930), स्वराज्य (1931), नवयुग (1932), हरिजन सेवक (1932), विश्वबंधु (1933), नवशक्ति (1934), योगी (1934), हिंदू (1936), देशदूत (1938), राष्ट्रीयता (1938), संघर्ष (1938), चिनगारी (1938), नवज्योति (1938), संगम (1940), जनयुग (1942), रामराज्य (1942), संसार (1943), लोकवाणी (1942), सावधान (1942), हुंकार (1942) और सन्मार्ग (1943), जनवार्ता (1972)।

इनमें से अधिकांश साप्ताहिक हैं, परंतु जनमन के निर्माण में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है। जहाँ तक पत्र कला का संबंध है वहाँ तक हम स्पष्ट रूप से कह सकते हैं कि तीसरे और चौथे युग के पत्रों में जमीन और आसमान का अंतर है। आज पत्र-संपादन वास्तव में उच्च कोटि की कला है। राजनीतिक पत्रकारिता के क्षेत्र में "आज" (1921) और उसके संपादक स्वर्गीय बाबूराव विष्णु पराड़कर का लगभग वही स्थान है, जो साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को प्राप्त है। सच तो यह है कि "आज" ने पत्र कला के क्षेत्र में एक महान संस्था का काम किया है और उसने हिंदी को बीसियों पत्र-संपादक और पत्रकार दिए हैं।

आधुनिक साहित्य के अनेक अंगों की भाँति हिन्दी पत्रकारिता भी नई कोटि की है और उसमें भी मुख्यत: हमारे मध्यवित्त वर्ग की सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक औ राजनीतिक हलचलों का प्रतिबिंब भास्वर है। वास्तव में पिछले 200 वर्षों का सच्चा इतिहास हमारी पत्र-पत्रिकाओं से ही संकलित हो सकता है। बँगला के "कलेर कथा" ग्रंथ में पत्रों के अवतरणों के आधार पर बंगाल के उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य वित्तीय जीवन के आकलन का प्रयत्न हुआ है। हिंदी में भी ऐसा प्रयत्न वांछनीय है। एक तरह से उन्नीसवीं शती में साहित्य कही जा सकनेवाली चीज बहुत कम है और जो है भी, वह पत्रों के पृष्ठों में ही पहले-पहल सामने आई है। भाषा शैली के निर्माण और जातीय शैली के विकास में पत्रों का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है, परंतु बीसवीं शती के पहले दो दशकों के अंत तक मासिक पत्र और साप्ताहिक पत्र ही हमारी साहित्यिक प्रवृत्तियों को जन्म देते और विकसित करते रहे हैं। द्विवेदी युग के साहित्य को हम "सरस्वती" और "इंदु" में जिस प्रयोगात्मक रूप में देखते हैं, वही उस साहित्य का असली रूप है। 1921 ई. के बाद साहित्य बहुत कुछ पत्र-पत्रिकाओं से स्वतंत्र होकर अपने पैरों पर खड़ा होने लगा, परंतु फिर भी विशिष्ट साहित्यिक आंदोलनों के लिए हमें मासिक पत्रों के पृष्ठ ही उलटने पड़ते हैं। राजनीतिक चेतना के लिए तो पत्र-पत्रिकाएँ हैं ही। वस्तुत: पत्र-पत्रिकाएँ जितनी बड़ी जनसंख्या को छूती हैं, विशुद्ध साहित्य का उतनी बड़ी जनसंख्या तक पहुँचना असंभव है।

1990 के बाद

90 के दशक में भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमर उजाला, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण आदि के नगरों-कस्बों से कई संस्करण निकलने शुरू हुए। जहां पहले महानगरों से अखबार छपते थे, भूमंडलीकरण के बाद आयी नई तकनीक, बेहतर सड़क और यातायात के संसाधनों की सुलभता की वजह से छोटे शहरों, कस्बों से भी नगर संस्करण का छपना आसान हो गया। साथ ही इन दशकों में ग्रामीण इलाकों, कस्बों में फैलते बाजार में नई वस्तुओं के लिए नये उपभोक्ताओं की तलाश भी शुरू हुई। हिंदी

के अखबार इन वस्तुओं के प्रचार-प्रसार का एक जरिया बन कर उभरा है। साथ ही साथ अखबारों के इन संस्करणों में स्थानीय खबरों को प्रमुखता से छापा जाता है। इससे अखबारों के पाठकों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है। मीडिया विशेषज्ञ सेवंती निनान ने इसे 'हिंदी की सार्वजनिक दुनिया का पुनर्विष्कार' कहा है। वे लिखती हैं, "प्रिंट मीडिया ने स्थानीय घटनाओं के कवरेज द्वारा जिला स्तर पर हिंदी की मौजूद सार्वजनिक दुनिया का विस्तार किया है और साथ ही अखबारों के स्थानीय संस्करणों के द्वारा अनजाने में इसका पुनर्विष्कार किया है।

1990 में राष्ट्रीय पाठक सर्वेक्षण की रिपोर्ट बताती थी कि पांच अगुवा अखबारों में हिन्दी का केवल एक समाचार पत्र हुआ करता था। पिछले (सर्वे) ने साबित कर दिया कि हम कितनी तेजी से बढ़ रहे हैं। इस बार (2010) सबसे अधिक पढ़े जाने वाले पांच अखबारों में शुरू के चार हिंदी के हैं।

एक उत्साहजनक बात और भी है कि आईआरएस सर्वे में जिन 42 शहरों को सबसे तेजी से उभरता माना गया है, उनमें से ज्यादातर हिन्दी हृदय प्रदेश के हैं। मतलब साफ है कि अगर पिछले तीन दशक में दक्षिण के राज्यों ने विकास की जबरदस्त पींगें बढ़ाईं तो आने वाले दशक हम हिन्दी वालों के हैं। ऐसा नहीं है कि अखबार के अध्ययन के मामले में ही ये प्रदेश अगुवा साबित हो रहे हैं। आईटी इंडस्ट्री का एक आंकड़ा बताता है कि हिन्दी और भारतीय भाषाओं में नेट पर पढ़ने-लिखने वालों की तादाद लगातार बढ़ रही है।

मतलब साफ है। हिन्दी की आकांक्षाओं का यह विस्तार पत्रकारों की ओर भी देख रहा है। प्रगति की चेतना के साथ समाज की निचली कतार में बैठे लोग भी समाचार पत्रों की पंक्तियों में दिखने चाहिए। पिछले आईएएस, आईआईटी और तमाम शिक्षा परिषदों के परिणामों ने साबित कर दिया है कि हिन्दी भाषियों में सबसे निचली सीढ़ियों पर बैठे लोग भी जबरदस्त उछाल के लिए तैयार हैं। हिन्दी के पत्रकारों को उनसे एक कदम आगे चलना होगा ताकि उस जगह को फिर से हासिल सकें, जिसे पिछले चार दशकों में हमने लगातार खोया।

साहित्यिक पत्रकारिता

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने वाराणसी से कविता केंद्रित पत्रिका 'कवि वचन सुधा' का प्रकाशन 15 अगस्त, 1867 को प्रारंभ किया था। इस तरह हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता के 150 वर्ष पूरे हुए। भारतेंदु 'कवि वचन सुधा' में आरंभ में पुराने कवियों की रचनाएँ छापते थे जैसे चंद बरदाई का रासो, कबीर की

साखी, जायसी का पदमावत, बिहारी के दोहे, देव का अष्टयाम और दीन दयाल गिरि का अनुराग बाग। लेकिन जल्द ही पत्रिका में नए कवियों को भी स्थान मिलने लगा। पत्रिका के प्रवेशांक में भारतेंदु ने अपने आदर्श की घोषणा इस प्रकार की थी–

"खल जनन सो सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
अपधर्म छूटै, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुख बहै॥
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनंद लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृतवानी सब कहै।"

भारतेंदु खलजनों द्वारा पीड़ित किए जानेवाले सज्जनों के प्रति संवेदना जताते हैं, वहीं यह आकांक्षा प्रकट करते हैं कि पाठक अच्छी कविता का रसास्वादन करें। भारतेंदु की यह भी कामना है कि भारत अपने खोए हुए स्वत्व को प्राप्त करे। वे नर-नारी की समानता पर भी बल देते हैं। भारतेंदु स्त्री-पुरुष की समानता के इतने बड़े पैरोकार थे कि 'कवि वचन सुधा' के 3 नवंबर, 1873 के अंक में उन्होंने लिखा, "यह बात सिद्ध है कि पश्चिमोत्तर देश की कदापि उन्नति नहीं होगी, जब तक यहाँ की स्त्रियों की भी शिक्षा न होगी क्योंकि यदि पुरुष विद्वान होंगे और उनकी स्त्रियाँ मूर्ख तो उनमें आपस में कभी स्नेह न होगा और नित्य कलह होगी।"

'कवि वचन सुधा' में साहित्य तो छपता ही था। इसके अलावा समाचार, यात्रा, ज्ञान विज्ञान, धर्म, राजनीति और समाज नीति विषयक लेख भी प्रकाशित होते थे। इससे पत्रिका की जनप्रियता बढ़ती गई। इतनी कि उसे मासिक से पाक्षिक और फिर साप्ताहिक कर दिया गया। प्रकाशन के दूसरे साल 'कवि वचन सुधा' पाक्षिक हो गई थी और 5 सितंबर, 1873 से साप्ताहिक। 'कवि वचन सुधा' के द्वितीय प्रकाशन वर्ष में मस्टहेड के ठीक नीचे छपता था–

"निज-नित नव यह कवि वचन सुधा सकल रस खानि।
पीवहु रसिक आनंद भरि परमलाभ जिय जानि॥
सुधा सदा सुरपुर बसै सो नहीं तुम्हरे जोग।
तासों आदर देहु अरु पीवहु एहि बुध लोग॥"

'कवि वचन सुधा' में सूचना का एक नियमित स्तंभ रहता था। सूचना के अलावा नाना विषयों पर टिप्पणियाँ छपती थीं। 'कवि वचन सुधा' के 8 फरवरी, 1874 के अंक में प्रकाशित एक ऐसी ही टिप्पणी द्रष्टव्य है, "कुछ काल पहले अंग्रेज लोग जब हिंदुस्थान के विषय में व्याख्यान देते थे तब यही प्रकट करते

थे कि हम लोग इस देश के लाभ अर्थ राज्य करते हैं, यही चिल्ला-चिल्ला कर सर्वदा कहा करते कि हम सदैव हिंदुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं कि हम लोग इस देश की वृद्धि करेंगे और यहाँ के निवासियों को विद्यामृत पिलाएँगे और राज्य का प्रबंध किस भांति करना यह ज्ञान प्रजा को स्वतः हो जाएगा तब हम लोग हिंदुस्तान का सब राज्य प्रबंधन यहाँ के निवासियों को स्वाधीन कर देंगे और अंत को सब राम-राम कह कर जहाज पर पैर रख स्वदेश गमन करेंगे। यह वार्ता हम लोग अपनी गड़ी हुई नहीं कहते। पर इन्हीं अंग्रेजों की ओर करके पादरियों के जो व्याख्यान प्रसिद्ध हुए हैं उनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि यह प्रकार पाठकजनों के देखने में निस्संदेह आया ही होगा इसमें संदेह नहीं।"

अंग्रेजी शासन के प्रति भारतेंदु की यह टिप्पणी बेहद तात्पर्यपूर्ण है कि भारतीयों के लाभ के लिए अंग्रेजी शासन होने का दावा खोखला था। अंग्रेज किस तरह भारत की संपदा लूट रहे थे, इसका संकेत भारतेंदु ने 'कवि वचन सुधा' के 7 मार्च, 1874 के अंक में अपनी टिप्पणी में दिया, "सरकारी पक्ष का कहना है कि हिंदुस्तान में पहले सब लोग लड़ते-भिड़ते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिंदुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी नहीं। रेल आदि से भी द्रव्य के बढ़ने की आशा नहीं है। रेलवे कंपनी वाले जो द्रव्य व्यय किया है, उसका व्याज सरकार को देना पड़ता है और उसे लेने वाले बहुधा विलायत के लोग हैं। कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।"

'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित लेख' 'भुतही इमली का कन कौआ' पर राजा शिवप्रताप सितारेहिंद ने गवर्नर से शिकायत की। रही-सही कसर 'मर्सिया' के प्रकाशन ने पूरी कर दी। उससे अंग्रेजी शासन का क्रोध और बढ़ गया। भारतेंदु ने 20 अप्रैल, 1874 के अंक में शंका शोधन (स्पष्टीकरण) भी छापा, "मर्सिया में हमारे अपने ग्राहकों को शंका होगी कि वह राजा कौन था? इससे अब हम उस राजा का अर्थ स्पष्ट करके सुनाते हैं। वह राजा अंग्रेजी फैशन था जो इस अपूर्ण शिक्षित मंडली रूप अँधेर नगरी का राज करता था जब से बंबई और काशी इत्यादि स्थानों में अच्छे-अच्छे लोगों ने प्रतिज्ञा करके अंग्रेजी कपड़ा पहिरना छोड़ देने की सौगंध खाई तब से मानो वह मर गया था।" स्पष्टीकरण का कोई लाभ न हुआ। अंग्रेज सरकार ने 'कवि वचन सुधा' की प्रतियों की खरीद बंद कर दी। सरकार भक्तों ने भी पत्र खरीदना, पढ़ना और अपने घर में रखना बंद कर दिया, इससे 'कवि वचन सुधा' को आर्थिक नुकसान तो बहुत

हुआ, किंतु उसकी प्रतिष्ठा बढ़ गई। भारतेंदु ने अंग्रेजी हुकूमत के मानद दंडाधिकारी का पद भी त्याग दिया। यही क्या, उन्होंने अंग्रेज अफसरों से मिलना तक बंद कर दिया। भारतेंदु ने विलायती कपड़ों के बहिष्कार की अपील करते हुए स्वदेशी का जो प्रतिज्ञा पत्र 23 मार्च, 1874 के 'कवि वचन सुधा' में प्रकाशित किया, वह समूचे हिंदी समाज का प्रतिज्ञा पत्र बन गया। उसमें भारतेंदु ने कहा था, "हमलोग सर्वांतर्यामी सब स्थल में वर्तमान सर्वद्रष्टा और नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा न पहिरेंगे और जो कपड़ा कि पहिले से मोल ले चुके हैं और आज की मिती तक हमारे पास हैं उनको तो उनके जीर्ण हो जाने तक काम में लावेंगे पर नवीन मोल लेकर किसी भाँति का भी विलायती कपड़ा न पहिरेंगे, हिंदुस्तान का ही बना कपड़ा पहिरेंगे। हम आशा रखते हैं कि इसको बहुत ही क्या प्रायः सब लोग स्वीकार करेंगे और अपना नाम इस श्रेणी में होने के लिए श्रीयुत बाबू हरिश्चंद्र को अपनी मनीषा प्रकाशित करेंगे और सब देश हितैषी इस उपाय के बाद में अवश्य उद्योग करेंगे।"

सात वर्षों तक 'कवि वचन सुधा' का संपादक-प्रकाशन करने के बाद भारतेंदु ने उसे अपने मित्र चिंतामणि धड़फले को सौंप दिया और 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' का प्रकाशन 15 अक्टूबर, 1873 को बनारस से आरंभ किया। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के मुखपृष्ठ पर उल्लेख रहता था कि यह 'कवि वचन सुधा' से संबद्ध है। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के प्रवेशांक में एक निबंध छापा–'हिंदूज क्वश्चन टू यूरोपीयन'। यह लेख प्रश्नोत्तर शैली में है–आप इंग्लैंड के हो या हमारे? क्यों अपना घरबार छोड़कर यहाँ आ बसे? यदि आप हमारे हैं तो क्यों हमारे देश को इतनी पीड़ा दे रहे हैं।? आप किसी के नहीं हैं–फिर आपकी स्तुति करें या निंदा? आपको साधु कहें या गुरु? इसी तरह 'रिलीजन्स' शीर्षक लेख में अंधविश्वासी युवकों की खबर ली गई थी, "हमें यह देखकर खेद होता है कि हिंदू धर्म का पतन हो रहा है। हिंदू धर्म, अन्य सभी धर्मों से श्रेष्ठ है। परंतु हमारे प्रबुद्ध मित्र इसे अंधविश्वास की संज्ञा देते हैं।" प्रथम अंक 24 पृष्ठों में प्रकाशित हुआ। कुछ अंक बीस और बयालीस पृष्ठ के भी निकले। इसमें प्रायः अंग्रेजी भाषा में हर अंक में तीन से छह पृष्ठ होते थे। अंग्रेजी की सामग्री अधिकतर अन्य व्यक्ति लिखकर भेजते थे जिनके नाम से वह छपती थी। इसमें साहित्य, विज्ञान, राजनीति, धर्म, पुरातत्व, इतिहास आदि विषयों पर लेखों के साथ ही उपन्यास, कविता, हास्य-व्यंग्य आदि पर भी सामग्री रहती थी।

'हरिश्चंद्र मैग्जीन' जल्द ही 'कवि वचन सुधा' से भी अधिक लोकप्रिय हो गई थी तथा उस समय के मशहूर लेखक जैसे बाबू तोताराम मुंशी, ज्वाला प्रसाद, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री, दयानंद सरस्वती और स्वयं भारतेंदु समय-समय पर 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के लिए लिखा करते थे। भारतेंदु जी ने अपने लेखकों को सहायक संपादकों की मर्यादा दी। 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' के केवल आठ अंक ही निकल सके। उन आठ अंकों में कुल 113 रचनाएँ प्रकाशित हुईं। आठवें अंक निकलने के बाद पत्रिका का नाम 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' कर दिया गया। मुखपृष्ठ पर 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' छपा होता था और आखिरी पृष्ठ पर 'हरिश्चंद्र मैग्जीन'।

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रवेशांक जून 1874 में निकला। मुखपृष्ठ पर यह 'लोक और छंद छपता था–

"विद्वत्कुलाम लस्वांत कुमुदामोददायिका।
आर्याज्ञान-तमोहंती श्री हरिश्चंद्र चंद्रिका।।"
"कविजन-कुमुद-गन हिय विकासि चकोर रसिकन सुख भरै।
प्रेमिन सुधा सों सींचि भारतभूमि आलस तम हरै।।
उद्यम सु औषधि पोखि विरहिनि दाहि खल चोरन दरै।
हरिश्चंद्र की यह चंद्रिका पर कासि जग मंगल करै।।"

"हरिश्चंद्र चंद्रिका' में हठीकृत राधा सुधा शतक, भारतेंदु जी का धनंजय विजय व्यायोग, गदाधर सिंह कृत कादंबरी, लाला श्रीनिवास दास कृत तप्सासंवरण नाटक आदि प्रकाशित हुए। भारतेंदु का 'पाँचवां पैगंबर', मुंशी कमला सहाय का 'रेल का विकट खेल', मुंशी ज्वाला प्रसाद का 'कलिराज की सभा' आदि रचनाएँ भी उसमें छपे। पुरातत्व संबंधी लेख भी उसमें प्रकाशित किए जाते थे। कुछ पृष्ठों में अंग्रेजी रचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। कविता में ही मूल्यादि का विवरण छपता था–

"षट् मुद्रा पहिले दिए बरस बिताए सात।
साथ चंद्रिका के लिए दस में दोऊ मिल जात।।
बरन गए बारह लगत दो के दो महसूल।
अलग चंद्रिका सात, षट् वचन सुधा समतूल।।
दो आना एक पत्र की टका पोस्टेज साथ।
सारध आना आठ दै लहत चंद्रिका हाथ।।
प्रति पंगति आना जुगुल जो कोऊ नोटिस देई।
जो विशेष जानन चहै पूछि सबै कुछ लेई।।"

'हरिश्चंद्र चंद्रिका' का प्रकाशन घाटे के बावजूद छह वर्षों तक होता रहा। हरिश्चंद्र ने 'नवोदित हरिश्चंद्र चंद्रिका' भी निकाली। उसमें धारावाहिक रूप में 'पुरावृत संग्रह', 'स्वर्णलता' (उपन्यास) तथा 'सती प्रताप' (नाटक) का प्रकाशन हुआ था। 'प्रेम-प्रलाप' के कुछ उत्कृष्ट पद भी प्रकाशित किए गए थे। उस पत्रिका के तीन अंकों का ही विवरण मिलता है। नवंबर 1874 के अंक में 31 सहायक संपादकों के नाम दिए गए हैं। जैसे–ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महर्षि दयानंद सरस्वती। कहना न होगा कि वस्तुत: ये सहायक संपादक पत्रिका के लेखक थे। पत्रिका के विदेशों में भी पाठक थे।

भारतेंदु ने एक स्त्री शिक्षोपयोगी मासिक पत्रिका की जरूरत को शिद्दत से महसूस किया और जनवरी, 1874 में 'बाला बोधिनी' नामक आठ पृष्ठों की डिमाई साइज की पत्रिका प्रकाशित की। उसके मुखपृष्ठ पर यह कविता प्रकाशित होती थी–

"जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारि सोई पुरुष या में कुछ न विभक्ति।।
सीता अनुसूया सती अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण लहौ सकल जग नारि।।
पितु पति सुत करतल कमल लालित ललना लोग।
पढ़ै गुनैं सीखैं सुनै नासैं सब जग सोग।।
और प्रसविनी बुध वधू होई हीनता खोय।
नारी नर अरधंग की सांचेहि स्वामिनि होय।।"

उन दिनों 'बाल बोधिनी' और 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' की पाँच-पाँच सौ प्रतियाँ छपती थीं जिसमें सौ-सौ प्रतियाँ तो सरकार ही खरीद लेती थी। 'बाला बोधिनी' के प्रवेशांक में लिखा था, "मैं तुम लोगों से हाथ जोड़कर और आँचल खोलकर यही माँगती हूँ कि जो कभी कोई भली बुरी कड़ी नरम कहनी अनकहनी कहूँ उसे मुझे अपनी समझकर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी।" इस पत्रिका में महिलापयोगी रचनाएँ ही अधिकतर छपती थीं, परंतु इतिहास, साहित्य, राजनीति पर सामयिक लेख भी दिए जाते थे। 'मुद्राराक्षस' नाटक का प्रकाशन भी इसमें हुआ था। यह पत्रिका चार वर्षों तक निरंतर प्रकाशित होती रही। भारतेंदु स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन देते थे। उस समय जो युवतियाँ अंग्रेजी परीक्षाएँ पास करतीं, उनको वे साड़ी भेंट करते थे। 'बाला बोधिनी' के जिल्द 2 संख्या-73 में स्त्रियों में नैतिक शिक्षा के प्रसार के लिए

लिखा गया था, "हे सुमति, जब बालक तुम्हारा भली प्रकार बातचीत करने लगे तो उसको वर्णमाला याद कराती रहे फिर उन्हीं को पट्टी पर लिख कर अभ्यास कराओ और रातों को गिनती और सुंदर-सुंदर श्लोक व छोटे स्रोत याद कराओ। इस व्यायवहार में कई एक बातें सुंदर प्राप्त होंगी। प्रथम तो बालक को खेल ही खेल में अक्षर ज्ञान हो जायेगा, दूसरे उसका काल भी व्यर्थ नहीं जाने का फिर इस अवसर का पढ़ा लिखा विशेष करके याद रहता है।" 'बाला बोधिनी' में 'गुरुसारणी' नाम से एक स्तंभ होता था जिसमें घर के हिसाब-किताब के सूत्र कविता में प्रकाशित किए जाते थे। 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' के साथ ही 'बाला बोधिनी' की भी सरकारी सहायता बंद हो गई तो भारतेंदु ने उसे 'कवि वचन सुधा' में समाहित कर दिया। राममोहन राय ने स्त्री अधिकारों के लिए जो रचनात्मक संघर्ष किया, सती प्रथा और बाल विवाह का विरोध किया, विधवा विवाह को समर्थन दिया और स्त्री शिक्षा पर जोर दिया और उस नवजागरण के लिए पत्रकारिता को अस्त्र बनाया और जिसे द्वारिका प्रसाद टैगोर तथा ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने 'तत्वबोधिनी' पत्रिका के माध्यम से आगे बढ़ाया, उसी की अगली कड़ी भारतेंदु की पत्रिका 'बालाबोधिनी' से जुड़ती है। ध्यान देने योग्य है कि 'बालाबोधिनी' का प्रकाशन होने के दस साल बाद 1884 में फ्रेडरिक एंगेल्स की किताब 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' आई थी जिसमें मार्क्सवादी अवधारणा के आलोक में स्त्रीत्ववाद का गंभीर विवेचन किया गया था। कहना न होगा कि हिंदी साहित्य और पत्रकारिता में स्त्री विमर्श की जब भी चर्चा होगी तो उसमें 'बालाबोधिनी' के रचनात्मक अवदान का उल्लेख अनिवार्य होगा।

भारतेंदु की पत्रिकाओं के बाद बालकृष्ण भट्ट के संपादन में 1877 में मासिक पत्रिका 'हिंदी प्रदीप' निकली। उसके प्रत्येक अंक में 'विद्या, नाटक, इतिहास, परिहास, उपन्यास, साहित्य, दर्शन, राज संबंधी इत्यादि के विषय में हर महीने की पहली को छपता है' लिखा रहता था। 'हिंदी प्रदीप' ने भारतीय ज्ञान परंपरा का प्रसार किया। बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' में कालिदास, श्री हर्ष, भवभूति, बिल्हण, बाण, त्रिविक्रम भट्ट, हरिश्चंद्र, भारवि, क्षेमेंद्र तथा गोवर्धन आदि कवियों के जीवन और योगदान पर लेख प्रकाशित किए और प्राचीन पुस्तकों की समालोचनाएँ भी छापीं। 'नल दमयंति', 'किरातार्जुनीयम', 'सौ अजान एक सुजान' और 'भाग्य की परख' जैसे नाटक भी 'हिंदी प्रदीप' में छपे। 1908 में माधव शुक्ल की कविता 'बम क्या है' छापने के लिए 'हिंदी प्रदीप'

पर तीन हजार रुपए का जुर्माना लगा जिसे न चुका पाने के कारण उसका प्रकाशन बंद हो गया। सन 1878 में 'भारत मित्र', 1879 में 'सार सुधा निधि' और 1880 में 'उचित वक्ता' का प्रकाशन हुआ। 'भारत मित्र' के संपादक छोटेलाल मिश्र, 'सार सुधा निधि' के संपादक सदानंद मिश्र और 'उचित वक्ता' के दुर्गा प्रसाद मिश्र ने हिंदी गद्य के उन्नयन के लिए ठोस काम किए। 'सार सुधा निधि' के वर्ष 2, अंक 12 की संपादकीय टिप्पणी में सदानंद मिश्र ने लिखा था, 'एक विशुद्ध साधु हिंदी भाषा की सर्वत्र एक ही पुस्तक पढ़ाई जाना उचित है। किंतु विशेष दुख का विषय है कि जिस हिंदी भाषा का अधिकार इतना बड़ा है कि भारतवर्ष के प्रायः आधे दूर तक परिव्याप्त है। हिंदुस्तान की उन्नति का मूल जब यह ठहरा कि हिंदुस्तान की प्रधान भाषा हिंदी परिशुद्ध होकर सर्वत्र एक ही रूप से प्रचार होय, तब अवश्य गवर्नमेंट की सहायता आवश्यक है, क्योंकि संप्रति भारतवासियों की सर्व प्रकार की शिक्षा एकमात्र गवर्नमेंट के अधीन है।"

इसी तरह दुर्गा प्रसाद मिश्र ने 12 जनवरी, 1895 के 'उचित वक्ता' की संपादकीय टिप्पणी में लिखा था, 'आजकल हिंदी साहित्य की विचित्र दशा वर्तमान है। इसकी कुछ स्थिरता ही नहीं देख पड़ती। विविध प्रकार के रंग-बिरंगें लेख प्रकाशित होते हैं। कोई तो आज संस्कृत शब्दों पर झुक रहे हैं और ज्यों ही किसी ने कह दिया कि आपकी भाषा कठिन है, कुछ सरल कीजिए, कि चट-पलट कर उर्दू की खिचड़ी पकाने लग गए, फिर ज्यों ही किसी ने कह दिया कि केवल संस्कृत के शब्दों के मिलाने से वा उर्दू के शब्दों के प्रयोग से भाषा पुष्ट होगी, बस चट बदल गए और दोनों प्रकार के शब्दों को मिलाने में उताऊ हो गए। सारांश यह कि ग्राहकों की खोज में भाषा को भी भटकाते रहते हैं।" 'सार सुधा निधि' और 'उचितवक्ता' की इन संपादकीय टिप्पणियों से स्पष्ट है कि तब के संपादकों में भाषा के प्रश्न को लेकर कितनी गहरी चिंता थी। इसी सरोकार से 1881 में बद्रीनारायण उपाध्याय ने 'आनंद कादंबिनी' और प्रताप नारायण मिश्र ने 'ब्राह्मण' का प्रकाशन किया।

माधवराव सप्रे ने छत्तीसगढ़ के पेंड्रा से 'छत्तीसगढ़ मित्र' पत्रिका का प्रकाशन व संपादन जनवरी, 1900 में आरंभ किया। वामन बलीराम लाखे और रामराव चिंचोलकर उनके सहयोगी थे। 'छत्तीसगढ़ मित्र' के प्रवेशांक में सप्रेजी ने 'आत्म परिचय' शीर्षक से अपने मंतव्य की घोषणा इस प्रकार कि–(1) इसमें कुछ संदेह नहीं कि सुसंपादित पत्रों के द्वारा हिंदी भाषा की उन्नति हुई है। अतएव

यहाँ भी 'छत्तीसगढ़ मित्र' हिंदी भाषा की उन्नति करने में विशेष प्रकार से ध्यान देवे। आजकल भाषा में बहुत सा कूड़ा-कर्कट जमा हो रहा है, वह न होने पावे, इसलिए प्रकाशित ग्रंथों पर प्रसिद्ध मार्मिक विद्वानों के द्वारा समालोचना भी करे। (2) अन्यान्य भाषाओं के ग्रंथों का अनुवाद कर सर्वोपयोगी विषयों का संग्रह करना आवश्यक है।" 'छत्तीसगढ़ मित्र' तीन साल ही निकल सका किंतु उसने सर्जनात्मक साहित्य यथा–कविता, कहानी, व्यंग्य व निबंध विधा की रचनाएँ तो छापीं ही, समालोचना विधा को प्रतिष्ठित करने का महत्त्वपूर्ण काम भी किया। 'छत्तीसगढ़ मित्र' में सप्रे जी ने दस पुस्तकों की विस्तृत समालोचना की और सत्रह पुस्तकों पर परिचयात्मक टिप्पणियाँ प्रकाशित की। सप्रे जी की राय थी कि किसी पुस्तक या पत्र की आलोचना करने में समालोचक को उचित है कि उस पुस्तक या पत्र के गुण-दोष सप्रमाण सिद्ध करे।

सन् 1900 में ही इलाहाबाद के इंडियन प्रेस से 'सरस्वती' निकली। आरंभ में इसका संपादन एक समिति को सौंपा गया था जिसमें बाबू श्याम सुंदर दास, बाबू राधाकृष्ण दास, बाबू कार्तिक प्रसाद, बाबू जगन्नाथ दास और किशोरीलाल गोस्वामी शामिल थे। महावीर प्रसाद द्विवेदी 1903 के जनवरी महीने में 'सरस्वती' के संपादक बने। उन्होंने पत्रिका को ज्ञान के सभी अनुशासनों का खुला मंच तो बनाया ही, यह भी सुनिश्चित किया कि प्रकाशन के पहले हर रचना की भाषा व्याकरण की दृष्टि से ठीक हो। भाषा-परिष्कार उनकी पहली प्राथमिकता थी। उन्होंने 'सरस्वती' के नवंबर, 1905 के अंक में 'भाषा और व्याकरण' शीर्षक से अपनी भाषा नीति स्पष्ट की और भारतेंदु हरिश्चंद्र, राजा शिवप्रसाद, गदाधर सिंह, काशीनाथ खत्री, मधुसूदन गोस्वामी और बाल कृष्ण भट्ट आदि की भाषा की गलतियों पर टिप्पणी करते हुए लिखा कि भाषा की यह अनस्थिरता बहुत ही हानिकारिणी है।" द्विवेदी जी के इस 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर लंबा विवाद चला। 'भारतमित्र' के तत्कालीन संपादक बालमुकुंद गुप्त ने आत्माराम के नाम से दस लेख लिखकर द्विवेदी जी की तीखी आलोचना की। गोविंद नारायण मिश्र भी सामने आए और उन्होंने 'हिंदी बंगवासी' में 'आत्माराम की टें-टें' शीर्षक से लेख लिखकर गुप्त जी की आलोचना की। वह ऐतिहासिक विवाद डेढ़ साल तक चला।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अनेक रचनाकारों को सबसे पहले अवसर दिया और जिनकी कविता या कहानी या लेख 'सरस्वती' में छपते थे, वे भी चर्चा में आ जाते थे। श्यामसुंदर दास, कार्तिक प्रसाद खत्री, राधाकृष्ण दास, जगन्नाथ

दास रत्नाकर, किशोरीलाल गोस्वामी, माधवराव सप्रे, रामनरेश त्रिपाठी, अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल स्नेही, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, महादेवी वर्मा, रायकृष्ण दास, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामधारी सिंह दिनकर आदि की रचनाएँ 'सरस्वती' में ही प्रकाशित हो कर चर्चित हुईं। 'सरस्वती' ने सर्जनात्मक साहित्य की हर विधा के विकास में ऐतिहासिक भूमिका निभाई। रामचंद्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' 1903 में द्विवेदी जी के संपादन में 'सरस्वती' में ही छपी। बंग महिला (राजेंद्रबाला घोष) की कहानी 'कुंभ की छोटी बहू' 'सरस्वती' के सितंबर 1906 के अंक में छपी। 'सरस्वती' में 1909 में वृंदावन लाल वर्मा की कहानी 'राखी बंद भाई' और 1915 में प्रेमचंद की पहली हिंदी कहानी 'सौत' तथा 1916 में 'पंच परमेश्वर' छपी। 1915 में चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी 'उसने कहा था' 'सरस्वती' में ही छपकर विख्यात हुई। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने दिसंबर 1920 में 'सरस्वती' से विदा ली। सरस्वती 1975 तक निकलती रही किंतु महावीर प्रसाद द्विवेदी के संपादन काल को सर्वोत्कृष्ट काल माना जाता है।

शारदा चरण मित्र ने 1907 में 'देवनागर' नामक मासिक पत्र निकाला था जो बीच में कुछ व्यवधान के बावजूद उनके जीवन पर्यंत यानी 1917 तक निकलता रहा। 'देवनागर' के पहले संपादक यशोदानंदन अखौरी थे। देवनागर में बांग्ला, उर्दू, नेपाली, उड़ीया, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तमिल, मलयालम और पंजाबी आदि की रचनाएँ देवनागरी लिपि में लिप्यांतरित होकर छपती थीं। उस पत्रिका में पं. रामावतार शर्मा, डॉ. गणेश प्रसाद, शिरोमणि अनंतवायु शास्त्री, अक्षयवट मिश्र, कोकिलेश्वर भट्टाचार्य और पांडेय लोचन प्रसाद जैसे विशिष्ट लोग लिखते थे। 1909 में वाराणसी से 'इंदु' पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। अंबिका प्रसाद गुप्त उसके संपादक थे। 'इंदु' को छायावाद की नींव डालने का श्रेय जाता है। जयशंकर प्रसाद की पहली कहानी 'ग्राम' 'इंदु' में ही 1911 में छपी थी।

नवंबर 1922 में रामरख सिंह सहगल ने स्त्रियों के सर्वांगीण उत्थान पर केंद्रित सचित्र मासिक 'चाँद' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बाद में इसका दायरा विस्तृत कर दिया गया। 'चाँद' ने कई विशेषांक निकाले जैसे अछूतांक, पत्रांक, वैश्यांक, शिशु अंक, विधवा अंक, प्रवासी अंक। 'चाँद' का फाँसी अंक नवंबर 1928 में आया था और उसमें चार अत्यंत महत्त्वपूर्ण कहानियाँ छपी थीं। वे

हैं–चतुरसेन शास्त्री की 'फंदा', पांडेय बेचन शर्मा उग्र की 'जल्लाद', जनार्दन प्रसाद झा द्विज की 'विद्रोही के चरणों पर' और विश्वंभर नाथ शर्मा कौशिक की 'फाँसी'। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'कफन' 'चाँद' के अप्रैल 1936 के अंक में छपी थी। महादेवी वर्मा का अधिकांश साहित्य 'चाँद' में ही छपा।

विष्णुनारायण भार्गव द्वारा 1922 में नवल किशोर प्रेस से साहित्यिक मासिक पत्रिका 'माधुरी' निकाली। संपादक थे दुलारेलाल भार्गव व रूपनारायण पांडेय। शिवपूजन सहाय, प्रेमचंद, बांके बिहारी भटनागर भी कभी न कभी पत्रिका की संपादकीय टीम के हिस्से रहे। 1950 में पत्रिका बंद हो गई। 1923 में कलकत्ता से साप्ताहिक 'मतवाला' पत्रिका निकली। संपादक के रूप में महादेव सेठ का नाम छपता था किंतु संपादक मंडल में निराला, शिवपूजन सहाय और मुंशी नवजादिक लाल भी थे। 'मतवाला' के प्रकाशन का एक मकसद निराला की कविताओं को प्रकाशित करना भी था। पत्रिका के हर अंक में प्रथम पृष्ठ पर निराला की कविता छपती थी। पत्रिका में समालोचना भी वही करते थे। संपादकीय, चलती चक्की व अन्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ लिखने तथा प्रूफ पढ़ने का जिम्मा शिवपूजन सहाय का था। मुंशी नवजादिक लाल भी हास्य विनोदपूर्ण टिप्पणियाँ लिखते थे। प्रेस की व्यवस्था महादेव सेठ देखते थे। पत्रिका का प्रबंध मुंशी जी के जिम्मे था। 1927 में मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य समिति इंदौर ने अंबिका प्रसाद त्रिपाठी के संपादन में मासिक पत्रिका 'वीणा' का प्रकाशन किया। बाद में कालिका प्रसाद दीक्षित कुसुमाकर, शांतिप्रिय द्विवेदी, चंद्ररानी सिंह, नेमीचंद्र जैन उसके संपादक हुए। इसी साल लखनऊ से दुलारे लाल व सावित्री के संपादन में मासिक पत्रिका 'सुधा' का प्रकाशन हुआ। 'सुधा' का प्रवेशांक दो बार छपा था। पहली बार तीन हजार प्रतियाँ बिक जाने पर दोबारा चार हजार छापा गया था। 'सुधा' का मार्च 1929 का अंक कार्टून विशेषांक के रूप में निकला। कार्टून पर पहली बार कोई विशेषांक तब निकला था।

1928 में रामानंद चट्टोपाध्याय ने हिंदी मासिक 'विशाल भारत' का प्रकाशन प्रारंभ किया। बनारसीदास चतुर्वेदी उसके संस्थापक संपादक थे। चतुर्वेदी जी के संपादन में 'विशाल भारत' जल्द की हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका बन गई। शुरू के तीन वर्षों में ही उसने साहित्यांक, प्रवासी अंक तथा कला अंक जैसे विशेषांक निकालकर अपनी धाक जमा ली। जैनेंद्र की पहली कहानी 'खेल' 1928 में 'विशाल भारत' में ही छपी। 'विशाल भारत' ने प्रचुर अनुवाद साहित्य भी प्रकाशित किया। 1937 में बनारसीदास चतुर्वेदी के आग्रह पर 'विशाल भारत'

का संपादन करने के लिए अज्ञेय कलकत्ता आ गए। 'विशाल भारत' में आने के पहले अज्ञेय 1936 में आगरा के साप्ताहिक 'सैनिक' के बिना नाम के संपादक थे। वहाँ साल भर रहे थे। अज्ञेय अकेले साहित्यकार हैं जिन्होंने हर तरह की पत्रकारिता की। उन्होंने दैनिक अखबार, साप्ताहिक अखबार, मासिक पत्रिका, द्विमासिक पत्रिका और त्रैमासिक पत्रिका का संपादन किया। 1947 में अज्ञेय ने इलाहाबाद से द्वैमासिक 'प्रतीक' नामक साहित्यिक पत्रिका निकाली। बाद में वह मासिक हो गई। त्रिलोचन, शमशेर, भारतभूषण अग्रवाल, सर्वेश्वर, केदारनाथ सिंह, गिरिजाकुमार माथुर, जगदीश गुप्त, कुँवरनारायण, रांगेय राघव, राजेंद्र यादव, मनोहरश्याम जोशी, अहमद हुसैन, शिवप्रसाद सिंह, राधाकृष्ण, विद्यानिवास मिश्र 'प्रतीक' में छपकर ही चर्चित हुए। 'प्रतीक' में अज्ञेय की संपादकीय टीम में रघुवीर सहाय, सियाराम शरण गुप्त, शिवमंगल सिंह सुमन और श्रीपत राय थे और प्रिंट लाइन में इन सबका नाम छपता था।

मार्च 1930 में मुंशी प्रेमचंद ने 'हंस' पत्रिका निकाली। प्रेमचंद ने 'हंस' में श्रेष्ठ कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, अनूदित साहित्य, साहित्यिक लेख व टिप्पणियाँ छापकर उसे भारतीय साहित्य का मुखपत्र ही बना दिया। 1932 में 'हंस' के अलावा साप्ताहिक 'जागरण' का भी संपादन भार प्रेमचंद पर आ पड़ा। 'जागरण' पहले पाक्षिक साहित्यिक पत्र के रूप में शिवपूजन सहाय के संपादन में 11 फरवरी, 1932 को निकला किंतु उसके बारह अंक निकालने के बाद सहाय जी ने उसे प्रेमचंद जी को हस्तांतरित कर दिया। मासिक 'हंस' और 'जागरण' साप्ताहिक प्रेमचंद घाटे के बावजूद निकालते रहे। हजारी प्रसाद द्विवेदी के संपादन में 1942 'विश्व भारती पत्रिका' शांति निकेतन से निकली। द्विवेदी जी उसे 1947 तक निकालते रहे। द्विवेदी जी के संपादन में उस पत्रिका ने रवींद्र साहित्य से हिंदी जगत को अवगत कराया। प्रवेशांक के संपादकीय में द्विवेदी जी ने लिखा था कि देश आज किस प्रकार नाना भाँति की संकीर्णताओं का शिकार बनता जा रहा है। उससे रक्षा पाने का सर्वोत्तम उपाय साहित्य ही है।

रवींद्रनाथ टैगौर ने द्विवेदी जी के बारे में कहा था कि उनका ज्ञान हम लोग पाँच सौ वर्षों में भी सीख पाएँगे, कहना कठिन है। टैगोर ने यह टिप्पणी इसलिए की थी क्योंकि द्विवेदी जी ने भारतीय दर्शन, अध्यात्म, साधना, इतिहास, संस्कृति और कला को खोख डाला था और वैदिक वांग्मय, इतिहास, संस्कृति, नीति शास्त्र, दर्शन शास्त्र और काव्य शास्त्र का द्विवेदी जी ने अपने साहित्य और साहित्यिक पत्रकारिता में जितना समर्थ उपयोग किया, उतना किसी अन्य

साहित्यकार ने नहीं। मोहन सिंह सेंगर ने कलकत्ता से जुलाई 1948 में 'नया समाज' का प्रवेशांक अस्सी पृष्ठों का निकाला। उसमें प्रकाशित पहली रचना मैथिलीशरण गुप्त की सोद्देश्य कविता 'एकलव्य' है। द्वितीय रचना हरिवंश राय बच्चन की दो शिक्षाप्रद कविताएँ–'बापू के फूलों का जुलूस' और 'आत्मशक्ति का पुजारी' है। इसी अंक में जैनेंद्र कुमार का लेख 'सर्वोदय की नीति', अंबिका प्रसाद वाजपेयी का लेख 'क्या यही स्वराज्य है', हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' छपा है। 'नया समाज' दस वर्षों तक निकलता रहा। उसे मैथिलीशरण गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, महादेवी वर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, अज्ञेय समेत हिंदी के सभी दिग्गजों का रचनात्मक सहयोग मिलता रहा। सितंबर 1948 के अंक में भगवत शरण उपाध्याय, वृंदावनलाल वर्मा, रांगेय राघव, हजारी प्रसाद द्विवेदी, काका कालेलकर की रचनाएँ छपी हैं तो दिसंबर 1948 के अंक में रघुवीर सहाय, चंद्रकुँवर लाल की रचनाएँ छपी हैं। 'नया समाज' ने साहित्य के माध्यम से समाज को जाग्रत करने का प्रयास किया। 'नया समाज' दस वर्षों तक निकलने के बाद बंद हो गया।

बदरी विशाल पित्ती ने 1949 में हैदराबाद से 'कल्पना' का प्रकाशन शुरू किया। 'कल्पना' ने कई लेखक पैदा किए। कृष्ण बलदेव वैद के उपन्यास 'विमल उर्फ जाएँ तो जाएँ कहाँ' को उस दौर में सभी बड़े प्रकाशकों ने प्रकाशित करने तक से मना कर दिया था क्योंकि उसका कथ्य उन्हें पच नहीं रहा था, लेकिन बदरी विशाल ने उसे 'कल्पना' में छापा। वह उपन्यास हिंदी साहित्य की थाती बन गया है। मार्कंडेय 'चक्रधर' के उपनाम से लंबे समय तक 'कल्पना' के हर अंक में साहित्य समीक्षा का एक स्तंभ 'साहित्यधारा' लिखते रहे। उसी तरह 'कल्पना का सर्वेक्षण' नाम से विवेकी राय का साहित्य सर्वेक्षण धारावाहिक उसमें छपा। 'कल्पना' में सिर्फ साहित्य ही नहीं, ललित कलाओं पर समीक्षात्मक लेख भी छपते थे। बदरी विशाल ने रामकुमार, मकबूल फिदा हुसैन जैसे बड़े कलाकारों को 'कल्पना' से जोड़ा था। रघुवीर सहाय, प्रयाग शुक्ल, कमलेश, मुनींद्र जी जैसे लोग कभी न कभी 'कल्पना' की संपादकीय टीम का हिस्सा रहे। 'कल्पना' 1977 तक निकली। जिस साल 'कल्पना' निकली थी, उसी साल 1949 के जनवरी महीने में भारतीय ज्ञानपीठ ने कलकत्ता से मासिक 'ज्ञानोदय' पत्रिका निकाली थी।

लक्ष्मीचंद्र जैन और जगदीश के संपादन में 'ज्ञानोदय' ने नवलेखन के प्रयोगों को उदारतापूर्वक प्रस्तुत किया। रमेश बक्षी ने जब 'ज्ञानोदय' का संपादन

भार सँभाला तो उन्होंने भी आधुनिकता से संबंधित विचार-विमर्श से परिपूर्ण निबंध लगातार प्रकाशित किए। 'ज्ञानोदय' फरवरी 1970 तक निकलती रही। 2003 से ज्ञानपीठ ने 'नया ज्ञानोदय' के नाम से पत्रिका का पुनर्प्रकाशन प्रारंभ किया। संप्रति उसके संपादक लीलाधर मंडलोई हैं। इसी तरह 'नई धारा' पिछले 67 वर्षों से पटना से निरंतर निकल रही है। शिव पूजन सहाय के संपादन में अप्रैल 1950 में उसका प्रकाशन राधिका रमण प्रसाद सिंह ने प्रारंभ किया था। सहाय जी ने 'नई धारा' के प्रवेशांक की संपादकीय में लिखा था, "समाज को विद्रोही चाहिए। उससे अधिक विद्रोही चाहिए साहित्य को, कला को। 'नई धारा' ऐसे विद्रोहियों की वाणी कहकर जिस दिन बदनाम की जाएगी, हमारी चरम सफलता का दिन तब होगा।"

साहित्यिक पत्रिकाओं ने साहित्यांदोलनों में भी अहम भूमिका निभाई। नई कविता आंदोलन के विकास में 1954 में प्रकाशित 'नई कविता' नामक पत्रिका का उल्लेखनीय योगदान रहा। 'नई कविता' पत्रिका का संपादन जगदीश गुप्त, रामस्वरूप चतुर्वेदी और विजयदेव नारायण साही करते थे। इसी तरह 'कहानी' और 'नई कहानी' पत्रिकाओं ने हिंदी में नई कहानी आंदोलन को जन्म दिया और 'सारिका' ने समानांतर कहानी को। भैरवप्रसाद गुप्त ने जनवरी 1955 से 'कहानी' पत्रिका के माध्यम से नई कहानी आंदोलन का नेतृत्व किया। 'कहानी' के नववर्षांक 1956 के अंक में पहली बार स्पष्टत: नई कहानी की बात उठाई गई। उस बीच छपी कई कहानियाँ कालजयी साबित हुईं। जैसे–'राजा निरबंसिया', 'रसप्रिया', 'गुलकी बन्नो', 'गदल', 'मवाली', 'हंसा जाई अकेला', 'डिप्टी कलक्टरी', 'चीफ की दावत', 'बादलों के घेरे' और 'सेब'। 'कहानी' पत्रिका ने अमरकांत, शेखर जोशी, राजेंद्र यादव और कमलेश्वर को प्रतिष्ठित किया। भैरव प्रसाद गुप्त 1955 से 1959 तक 'कहानी' पत्रिका के संपादक रहे। उसके बाद वे 'नई कहानियाँ' नामक पत्रिका का संपादन करने लगे जिसमें छपकर राम नारायण, प्रयाग शुक्ल, मन्नू भंडारी, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, रमेश बक्षी और उषा प्रियंवदा प्रतिष्ठित हुए।

बड़े मीडिया घरानों से प्रकाशित पत्रिकाओं की भूमिका की बात करें तो हिंदुस्तान टाइम्स प्रकाशन द्वारा प्रकाशित 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' का प्रकाशन 1950 से शुरू हुआ। 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' लगभग 42 वर्ष तक निकलता रहा, जिसका संपादन मुकुटबिहारी वर्मा, बांकेबिहारी भटनागर, रामानंद दोषी, मनोहरश्याम जोशी, शीला झुनझुनवाला, राजेंद्र अवस्थी तथा मृणाल पांडे ने किया। मनोहरश्याम

जोशी ने 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' को पत्रकारीय उत्कर्ष प्रदान किया। टाइम्स ऑफ इंडिया समूह ने 'धर्मयुग' जैसी उत्कृष्ट पत्रिका निकाली। 'धर्मयुग' का जन्म 'नवयुग' की कोख से हुआ। 1950 में बेनेट एंड कोलमैन ने बंबई से 'नवयुग' से संयुक्त कर रविवार 8 अक्टूबर, 1950 से 'धर्मयुग' का प्रकाशन शुरू किया। 'धर्मयुग' का इलाचंद्र जोशी एवं हेमचंद्र जोशी का संपादक काल अल्पकालीन रहा। 'धर्मयुग' को शैशव से किशोरावस्था तक पहुँचाने का श्रेय सत्यदेव विद्यालंकार को जाता है। उन्होंने एक दशक तक 'धर्मयुग' का संपादक किया। 'झूठा सच', 'आपका बंटी', 'आधे-अधूरे', 'सुखदा', 'गली आगे मुड़ती है', 'तेरी मेरी उसकी बात', 'इदन्नमम', 'रुकोगी नहीं राधिका', 'मानस के हंस', 'खंजन नयन' जैसी प्रसिद्ध रचनाएँ 'धर्मयुग' ने ही छापीं। इसके अलावा विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ 'दुराचारिणी', 'भीगी पलकें', 'मर्यादा की रक्षा', यशपाल की कहानी 'सामंती कृपा', जैनेंद्र की कहानी 'ये पल' व उपन्यास 'सुखदा', वृंदावन लाल वर्मा की 'इस हाथ लें, उस हाथ दें', डॉ. रामकुमार वर्मा के नाटक–'दुर्गावती, रात का रहस्य', भवानी प्रसाद मिश्र की 'परछाइयाँ' और राजेंद्र यादव की कहानी 'कुलटा' धर्मयुग में छपकर ही चर्चित हुई थीं। गोपाल सिंह नेपाली, दिनेश नंदिनी, रामधारी सिंह दिनकर, गोपाल दास नीरज, रांगेय राघव, हरिवंश राय बच्चन, रमानाथ अवस्थी, महादेवी वर्मा, सुमित्रानंदन पंत, शिवकुमार श्रीवास्तव, वीरेंद्र मिश्र आदि की कविताएँ नियमित रूप से 'धर्मयुग' में प्रकाशित होती थीं। रवींद्रनाथ ठाकुर, सरोजिनी नायडू जैसे कवियों की कविताओं के अनुवाद प्रमुखता से प्रकाशित होते थे। 'धर्मयुग' का 16 अगस्त, 1956 का अंक 'कविता अंक' था। 1957 में देशी विदेशी कविताओं पर आधारित लेखों की शृंखला का प्रकाशन और 1958 का व्यंग्य विशेषांक भी चर्चित रहा था।

6 मार्च, 1960 को धर्मवीर भारती 'धर्मयुग' के संपादक हुए और 28 नवंबर, 1987 तक यानी 27 वर्षों तक उन्होंने 'धर्मयुग' का संपादन किया। उस कालखंड में 'धर्मयुग' और धर्मवीर भारती एक-दूसरे के पर्याय बन गए। भारती ने उच्च कोटि का साहित्य प्रकाशित कर 'धर्मयुग' को श्रेष्ठ राष्ट्रीय साहित्यिक-सांस्कृतिक पत्रिका बनाया। धर्मवीर भारती के संपादन काल में 60-70 दशक में वसंत ऋतु आई (ख्वाजा अहमद अब्बास), अरक्षणीया (राजकमल चौधरी) उत्सव, मलयालम कहानी, (तकषी शिवशंकर पिल्लै) अंतरपट, (गुजराती कहानी, हसुनायक) रात आठ बजे वाली सवारी (बांग्ला कहानी, विमल मित्र), समय (यशपाल), सिफारिशी चिट्ठी (भीष्म साहनी),

बिल्लियाँ (मृणाल पांडेय), कल्कि अवतार (शिव प्रसाद सिंह), बयान (कमलेश्वर), माँ (बांग्ला कहानी-विमल मित्र), ऊब (एक उलजलूल कहानी-छेदी लाल), बदलाव (विवेकी राय), चतुरी लाल (बांग्ला कहानी-बनफूल), अरस का पावा (सलमा सिद्दकी), झुका हुआ आकाश (उड़िया कहानी–नंदनी सत्यपथी), प्रेत (गंगा प्रसाद विमल), प्रतीक्षा (लंबी कहानी–शिवानी), दिलबाग सिंह की हत्या (सुदर्शन सिंह मजीठिया), बौना और चाँद (देशज प्रसाद मिश्र) 'धर्मयुग' में छपकर ही चर्चित हुई थीं।

धर्मवीर भारती के संपादन काल में 'कथा दशक' शृंखला का सफल आयोजन 'धर्मयुग' की उल्लेखनीय उपलब्धि थी। उसमें कथाकार अपनी कहानियों के पीछे की कहानी भी बताते थे। 'कथा दशक' शृंखला के तहत उस दशक के सभी चर्चित कथाकारों जैसे उषा प्रियंवदा, कमलेश्वर, कृष्ण बलदेव वैद, कृष्णा सोबती, नरेश मेहता, फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, मार्कंडेय, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, अमरकांत, रघुवीर सहाय, राजेंद्र यादव, राजकमल चौधरी, राजकुमार, लक्ष्मीनारायण लाल, विजय चौहान, शरद जोशी, ज्ञानी, शिव प्रसाद सिंह, शेखर जोशी, शैलेश मटियानी, सर्वेश्वर दयाल, सक्सेना, हरिशंकर परसाई, रमेश बक्षी आदि की कहानियाँ प्रस्तुत की गईं। अनेक श्रेष्ठ उपन्यास 'धर्मयुग' में धारावाहिक प्रकाशित हुए। 'धर्मयुग' ने महिला कथाकारों एवं कवयित्रियों को भी आगे बढ़ाया। शिवानी, मृणाल पांडेय, सूर्यबाला, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, कुर्रतुल उन हैदर, पद्मा सचदेव, मैत्रेयी पुष्पा, अमृता प्रीतम इस्मत चुगताई, महादेवी वर्मा, ममता कालिया, मालती जोशी, नासिरा शर्मा, कमला चमोला, शांति मेहरोत्रा, कुंदनिका कापड़िया, इंदिरा चंद्रा, सुधा अरोड़ा, उषा महाजन, आभा दयाल, मृदुला हसन, शुभदा मिश्र की रचनाएँ धर्मयुग में निरंतर प्रकाशित हुईं। भारती के बाद गणेश मंत्री और मंत्री जी के बाद विश्वनाथ सचदेव उसके संपादक बने। 'धर्मयुग' पत्रिका 47 वर्षों तक निकलती रही।

टाइम्स ऑफ इंडिया समूह ने ही 1965 में साप्ताहिक 'दिनमान' पत्रिका निकाली थी। अज्ञेय उसके संस्थापक संपादक थे। उनके संपादन में 'दिनमान' जल्द ही राष्ट्रीय स्तर की प्रतिष्ठित पत्रिका बन गई थी। उसका आधार वाक्य था 'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान।' उसने पाठकों में राजनीतिक और सामाजिक चेतना का संचार किया। 'दिनमान' ने नई शब्दावली चलाई। अज्ञेय की मान्यता थी कि व्यक्तियों और स्थानों के नामों को जहाँ तक हो सके, वैसे ही

लिखा जाए, जैसा उन देशों में बोला जाता है। मास्को शब्द जब पूरे भारत में चल गया था, उस समय 'दिनमान' मस्क्वा लिखता था। इसी तरह चिली को 'दिनमान' चिले लिखता था। सौ किलोग्राम के लिए जब कुएँटल शब्द चला तो दिनमान ने उसे कुंतल लिखना शुरू किया। अज्ञेय ने 'दिनमान' के लिए वर्तनी के लिए जो नियम स्थिर किए थे, उनमें कुछ प्रमुख हैं–1. विभक्तियाँ सर्वनाम के साथ लिखी जाएँ–जैसे–मैंने, हमने, किससे, उससे। 2. क्रिया पद 'कर' मूल क्रिया से मिलाकर लिखा जाए–जैसे–जाकर, जमकर, हँसकर। 3. चंद्रबिंदु के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाए–जैसे–हंसना, मां, पहुंचना। 4. प्रदेशों के नाम मिलाकर लिखे जाए–जैसे–उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, अरुणाचलप्रदेश, आंध्रप्रदेश, हिमाचलप्रदेश। 5. बड़े संवाद के लिए दोहरा उद्धरण चिह्न और छोटे उद्धरणों तथा वाक्याशों के लिए एकल उद्धरण चिह्न यथेष्ट है। 6. संस्कृत के शब्दों में जहाँ 'यी' का प्रयोग होता है, वहाँ 'ई' का प्रयोग उचित नहीं, जैसे–स्थायी, अनुयायी। अज्ञेय ऐसे संपादक थे जिन्होंने हर जगह अपने उत्तराधिकारी खुद बनाए। इसीलिए उनके संपादक पद से हटने के बाद भी संबद्ध समाचार पत्र या पत्रिका में उत्तराधिकार का कोई संकट कभी खड़ा नहीं हुआ। 'दिनमान' की अपनी संपादकीय टीम में उन्होंने रघुवीर सहाय, मनोहर श्याम जोशी, श्रीकांत वर्मा, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को शामिल किया था। इसीलिए 1969 में अज्ञेय ने 'दिनमान' छोड़ा, उसके बाद भी वह पुराने तेवर के साथ ही निकलता रहा।

सन 1973 में अज्ञेय ने 'प्रतीक' को नए सिरे से निकाला। इस बार उसका नाम 'नया प्रतीक' था। वह मासिक पत्रिका भी नई प्रतिभाओं का खुला मंच बनी। अज्ञेय 1977 के अगस्त में दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक बने और 1979 तक वहाँ रहे। उन्होंने 'नवभारत टाइम्स' को तत्कालीन अंग्रेजी दैनिक पत्रकारिता का विकल्प बनाने की चेष्टा की। यही काम परवर्ती काल में विद्यानिवास मिश्र ने किया। विद्यानिवास मिश्र 1992 से 1994 यानी दो वर्ष तक हिंदी दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के संपादक थे। उन्होंने दस वर्षों तक मासिक 'साहित्य अमृत' का भी संपादन किया। बड़े मीडिया समूहों द्वारा निकाली गईं 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'दिनमान' का हिंदी समाज पर व्यापक सांस्कृतिक प्रभाव पड़ा था। वे पत्रिकाएँ बंद हो चुकी हैं, ऐसे में मासिक पत्रिका 'अहा जिंदगी' का पिछले तेरह वर्षों से हो रहा नियमित प्रकाशन तात्पर्यपूर्ण है। भास्कर समूह ने यशवंत व्यास के संपादन में 2004 में मासिक पत्रिका 'अहा जिंदगी' निकाली थी। संप्रति आलोक श्रीवास्तव उसके संपादक हैं।

राजकमल प्रकाशन समूह ने 1951 में 'आलोचना' पत्रिका शुरू की थी। शिवदान सिंह चौहान उसके संस्थापक संपादक थे। 'जनयुग' के संपादक रह चुके तथा सहारा के प्रधान संपादकीय सलाहकार रह चुके नामवर सिंह 'आलोचना' के प्रधान संपादक हैं। संपादन नामवर जी के लिए कविता अथवा आलोचनात्मक निबंध लिखने जैसा सर्जनात्मक कार्य ही रहा है। यही बात राजेंद्र यादव, ज्ञानरंजन तथा कमलेश्वर के लिए भी सही है। राजेंद्र यादव ने 1986 में 'हंस' का संपादन शुरू किया और उसमें छपकर ही उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति, प्रियंवद, सृंजय, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि प्रतिष्ठित हुए। राजेंद्र यादव ने 'हंस' के जरिए दलित और स्त्री विमर्श को आंदोलन के रूप में चलाया और चर्चा के केंद्र में ला खड़ा किया। राजेंद्र यादव के निधन के बाद 'हंस' संजय सहाय के संपादन में निकल रही है। 'पहल' का 108 वाँ अंक जुलाई 2017 में आया है। ज्ञानरंजन उसे 1973 से ही निकाल रहे हैं।

कमलेश्वर ने 'सारिका' का संपादन बहुत कुशलता से किया था और उसके माध्यम से हिंदी में समानांतर कहानी आंदोलन का नेतृत्व भी किया था। परवर्ती काल में वे दैनिक भास्कर के संपादकीय सलाहकार भी बने थे। 'अमृत प्रभात' और 'जनसत्ता' के साहित्य संपादक रहे मंगलेश डबराल निकट अतीत तक 'सहारा समय', 'पब्लिक एजेंडा' से जुड़े रहे। इस समय वे 'शुक्रवार' के साहित्य संपादक हैं। 'शुक्रवार' को विष्णु नागर का भी संपादकीय संस्पर्श मिला था। प्रयाग शुक्ल ने 'रंगप्रसंग', पंकज बिष्ट ने 'समयांतर', अखिलेश ने 'तद्भव' और ज्योतिष जोशी ने 'समकालीन कला' को अपनी संपादन दृष्टि से अलग पहचान दी है। प्रभाकर श्रोत्रिय ने 'अक्षरा', 'साक्षात्कार', 'वागर्थ' और 'नया ज्ञानोदय' का संपादन किया और हर जगह अपनी अमिट छाप छोड़ी। 'वागर्थ' पत्रिका 1995 से ही निकल रही है। प्रभाकर श्रोत्रिय, रवींद्र कालिया और एकांत श्रीवास्तव के बाद अब शंभुनाथ उसके संपादक हैं। हरिनारायण के संपादन में मासिक 'कथादेश' 36 वर्षों से निरंतर निकल रही है। देशबंधु समाचार पत्र समूह से मासिक पत्रिका 'अक्षर पर्व' दो दशकों से निरंतर निकल रही है। सर्वमित्रा सुरजन उसकी संपादक हैं। 'अक्षर पर्व' पत्रिका के वर्ष में दो विशेषांक भी निकालते हैं। सितंबर 2017 में प्रेम भारद्वाज के संपादनवाली 'पाखी' के ठीक नौ साल पूरे हुए। सितंबर 2008 में उसका प्रवेशांक आया था। एक समय 'अब' निकालनेवाले शंकर संप्रति द्विमासिक 'परिकथा' निकाल रहे हैं। विभूतिनारायण राय 'वर्तमान साहित्य' निकाल रहे हैं। हरिशंकर परसाई और कमला प्रसाद के

बाद अब राजेंद्र शर्मा के संपादन में 'वसुधा' निकल रही है। इसी कड़ी में 'मधुमती', 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'गवेषणा', 'इंद्रप्रस्थ भारती', 'बहुवचन', 'पुस्तक वार्ता', 'आजकल', 'त्रिपथगा', 'भाषा', 'उत्तर प्रदेश', 'पूर्वग्रह', 'समकालीन सृजन', 'संवेद', 'समास', 'समीक्षा', 'बया', 'अपेक्षा', 'कसौटी', 'कल के लिए', 'कथा', 'कथाक्रम', 'समालोचना', 'लमही', 'अभिव्यक्ति', 'संचेतना', 'अभिनव कदम', 'परिवेश', 'साम्य', 'साखी', 'संबोधन', 'पल-प्रतिपल', 'दस्तक', 'पुरुष', 'विपक्ष', 'उद्‌भावना', 'मंतव्य', 'परिवेश', 'दस्तावेज', 'बया', 'स्त्री काल', 'इकाई', 'गल्पभारती', 'संदर्भ', 'परिदृश्य', 'समवेत', 'समिधा', 'विध्वंस,' श्अर्थात', 'धूमकेतु', 'बोध' जैसी पत्रिकाओं का उल्लेख लाजिमी है। पत्रिकाओं की दुनिया में नया चलन ई-पत्रिकाओं और ब्लॉग का है जिसमें बड़ी शीघ्रता से पाठ्य सामग्री सारी दुनिया में पाठकों तक पहुँच जाती है।

मीडिया के क्षेत्र में हिंदी का स्थान

भारत में अनेक समृद्ध भाषाएँ हैं। इन भाषाओं में हिंदी एकता की कड़ी है। हमारे सन्तों, समाज सुधारकों और राष्ट्रनायकों ने अपने विचारों के प्रचार के लिए हिंदी को अपनाया। क्योंकि यही एक भाषा है, जो कश्मीर से कन्याकुमारी तक और राजस्थान से असम तक समान रूप से समझी जाती है। हिंदी ही एकमात्र भाषा है, जो समस्त भारतीय को एकता के सूत्र में जोड़ने का कार्य सम्पन्न करती है। देश में प्रायः सभी जगह हिंदी व्यापक स्तर पर बोली और समझी जा रही है। दक्षिण भारत हो या पूर्वोत्तर भारत हर जगह हिंदी का सहज व्यवहार हो रहा है। भाषाओं के लम्बे इतिहास में ऐसी बहुरूपी भाषा का अस्तित्व और कहीं नहीं मिलता। हिंदी बोलनेवाले लोगों की संख्या 50 करोड़ है। जनसंख्या की दृष्टि से हिंदी विश्व में सर्वाधिक बोली जाने वाली तीसरी सबसे बड़ी भाषा है। यदि हिंदी समझने वालों की संख्या भी इसमें जोड़ दी जाये तो यह दूसरे नम्बर पर आ जाएगी। दुनिया में शायद ही किसी भाषा का इतना तीव्र विकास और व्यापक फैलाव हुआ होगा। हिंदी को पल्लवित-पुष्पित करने में मीडिया की महती भूमिका रही है।

हिंदी जैसी सरल और उदार भाषा शायद ही कोई हो। हिंदी सबको अपनाती रही है, सबका यथोचित स्वागत करती रही है। किसी भी भाषा के शब्द को अपने अंदर समाहित करने में गुरेज नहीं किया। अंग्रेजी, अरबी, फारसी,

तुर्की, फ्रांसीसी, पोर्चुगीज आदि विदेशी शब्द हिंदी की शब्दकोश में मिल जायेंगे। जो भी इसके समीप आया सबको गले से लगाया। भौगोलिक विस्तार के अनेक जनपदों और उनके व्यवहृत अठारह बोलियों (पश्चिमी हिंदी के अंतर्गत खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रजभाषा, कन्नौजी, पूर्वी हिंदी में अवधी, बधेली, छत्तीसगढ़ी, बिहारी में मैथिली, मगही, भोजपुरी, राजस्थानी में मेवाती-अहीरवादी, मालवी, जयपुरी-हाड़ौती, मारवाड़ी–मेवाड़ी तथा पहाड़ी में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी, पूर्वी पहाड़ी) के वैविध्य को, जिनमें से कई व्याकरणिक दृष्टि से एक-दूसरे की विरोधी विशेषताओं से युक्त कही जा सकती है, हिंदी भाषा बड़े सहज भाव से धारण करती है। हिंदी के स्वरूप के सम्बन्ध में इसलिए वैचारिक द्वैत की भावना ग्रियर्सन में जगह-जगह दिखती है। 'भाषा सर्वेक्षण' के भूमिका में वे लिखते हैं 'इस प्रकार कहा जा सकता है और सामान्य रूप से लोगों का विश्वास भी यही है कि गंगा के समस्त काँठे में, बंगाल और पंजाब के बीच. उपजी अनेक स्थानीय बोलियों सहित, केवल एकमात्र प्रचलित भाषा हिंदी ही है।' इन सारी बोलियों के समूह और संश्लेष को पहले भी हिंदी, हिंदवी, हिंदई कहा जाता था और आज भी हिंदी कहा जाता है। बंटवारे से पहले समूचे पाकिस्तान में पंजाब से लेकर सिंध तक हिंदी की बोली समझी जाती थी। लाहौर हिंदी का गढ़ था। वहाँ हिंदी के कई बड़े प्रकाशन भी थे।

बंटवारे के बाद हिंदी की अनदेखी की गई, लेकिन हिंदी फिल्मों और भारतीय टीवी चैनलों के मनोरंजक कार्यक्रमों, धारावाहिकों के कारण वहाँ हिंदी का प्रभाव फिर बढ़ रहा है। नेपाल और बंगलादेश में भी हिंदी का प्रभाव है। 50 देशों में हिंदी पढाई जा रही है। 500 से ज्यादा संस्थानों में हिंदी की पढ़ाई होती है। अमेरिका से लेकर चीन तक कई विश्व-विद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, युगांडा, गुयाना, फिजी, नीदरलैंड, सिंगापुर, त्रिनिडाउ, टोबैगो और खाड़ी देशों में बड़ी संख्या में हिंदी भाषी हैं। दुबई जैसे शहरों में हिंदी बोलचाल की भाषा बन गयी है।

निर्विवाद तथ्य है कि खड़ी बोली ही आज की हिंदी है। भारत के हिंदी मीडिया की भाषा भी यही है, पत्र–पत्रिकाओं की भी और टेलीविजन और फिल्मों की भी। हिंदी भाषा का निर्माण और आगे बढ़ाने का कार्य मीडिया ने किया है। साहित्य बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की उदात्त भावना लेकर चला है तो पत्रकारिता भी इसी प्रकार के मानव कल्याण के उद्देश्य को लेकर अवतरित हुई है। वस्तुतः साहित्य जीवन की कलात्मक अभिव्यक्ति है। पत्रकारिता भी

सत्यम्, शिवम् सुंदरम् की ओर जन मानस को उन्मुख करती है। यदि साहित्य समाज का दर्पण है तो पत्रकारिता उस समाज की प्रतिकृति है। हिंदी साहित्य के क्रमिक विकास पर दृष्टि डालें तो हम पाएंगे कि पत्र पत्रिकाओं की साहित्य के विकास में अहम भूमिका रही है। वास्तव में भाषा के प्रचार-प्रसार में इनका उल्लेखनीय योगदान रहा है।

हिंदी पत्रकारिता की शुरुआत बंगाल से हुई और इसका श्रेय राजा राममोहन राय को दिया जाता है। राजा राममोहन राय ने ही सबसे पहले प्रेस को सामाजिक उद्देश्य से जोड़ा। भारतीयों के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, आर्थिक हितों का समर्थन किया। समाज में व्याप्त अंधविश्वास और कुरीतियों पर प्रहार किये और अपने पत्रों के जरिए जनता में जागरूकता पैदा की. राममोहन राय ने कई पत्र शुरू किये। जिसमें महत्त्वपूर्ण हैं–साल 1816 में प्रकाशित 'बंगाल गजट'। बंगाल गजट भारतीय भाषा का पहला समाचार पत्र है। इस समाचार पत्र के संपादक गंगाधर भट्टाचार्य थे। इसके अलावा राजा राममोहन राय ने मिरातुल, संवाद कौमुदी, बंगाल हैराल्ड पत्र भी निकाले और लोगों में चेतना फैलाई। 30 मई 1826 को कलकत्ता से पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में निकलने वाले 'उदंत्त मार्तण्ड' को हिंदी का पहला समाचार पत्र माना जाता है। 1873 ई. में भारतेन्दु ने 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' की स्थापना की. एक वर्ष बाद यह पत्र 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम से प्रसिद्ध हुआ। वैसे भारतेन्दु का 'कविवचन सुधा' पत्र 1867 में ही सामने आ गया था और उसने पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण भाग लिया था। परंतु नई भाषाशैली का प्रवर्तन 1873 में 'हरिश्चंद्र मैग्जीन' से ही हुआ।

भारतेन्दु के बाद इस क्षेत्र में जो पत्रकार आए उनमें प्रमुख थे पंडित रुद्रदत्त शर्मा, बालकृष्ण भट्ट, दुर्गा प्रसाद मिश्र, पंडित सदानंद मिश्र, पंडित वंशीधर, बदरी नारायण, देवकीनंदन त्रिपाठी, राधाचरण गोस्वामी, पंडित गौरीदत्त, राज रामपाल सिंह, प्रताप नारायण मिश्र, अंबिकादत्त व्यास, बाबू रामकृष्ण वर्मा, पं. रामगुलाम अवस्थी, योगेशचंद्र वसु, पं. कुंदनलाल और बाबू देवकीनंदन खत्री एवं बाबू जगन्नाथ दास। 1895 ई. में 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' का प्रकाशन आरंभ हुआ। इस पत्रिका से गंभीर साहित्य समीक्षा का आरंभ हुआ और इसलिए हम इसे एक निश्चित प्रकाश स्तंभ मान सकते हैं। 1900 ई. में 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' के अवतरण के साथ हिंदी पत्रकारिता के इस दूसरे युग पर पटाक्षेप हो जाता है। इन वर्षों में हिंदी पत्रकारिता अनेक दिशाओं में विकसित हुई।

प्रारंभिक पत्र शिक्षा-प्रसार और धर्म प्रचार तक सीमित थे। भारतेन्दु ने सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक दिशाएँ भी विकसित कीं।

सन् 1880 से लेकर, सदी के अंत तक लखनऊ, प्रयाग, मिर्जापुर, वृंदावन, मुंबई, कोलकाता जैसे दूरदराज क्षेत्रों से पत्र निकलते रहे। सन 1900 का वर्ष हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में महत्त्वपूर्ण है। 1900 में प्रकाशित सरस्वती पत्रिका अपने समय की युगान्तरकारी पत्रिका रही है। वह अपनी छपाई, सफाई, कागज और चित्रों के कारण शीघ्र ही लोकप्रिय हो गई। उसी वर्ष छत्तीसगढ़ प्रदेश के बिलासपुर-रायपुर से 'छत्तीसगढ़ मित्र' का प्रकाशन शुरू होता है। 'सरस्वती' के ख्यात संपादक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और 'छत्तीसगढ़ मित्र' के संपादक पंडित माधवराव सप्रे थे।

पत्रकारिता का यह काल बहुमुखी सांस्कृतिक नवजागरण का यह समुन्नत काल है। इसमें सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, वैज्ञानिक और राजनीतिक लेखन की परंपरा का श्रीगणेश होता है। इस दौर में साहित्यिक लेखन और पत्रकारिता के सरोकारों को अलग नहीं किया जा सकता। सांस्कृतिक जागरण, राजनीतिक चेतना, साहित्यिक सरोकार और दमन का प्रतिकार इन चार पहियों के रथ पर हिंदी पत्रकारिता अग्रसर हुई। माधवराव सप्रे ने लोकमान्य तिलक के मराठी केसरी को 'हिंद केसरी' के रूप में छापना शुरू किया। समाचार सुधावर्षण, अभ्युदय, शंखनाद, हलधर, सत्याग्रह समाचार, युद्धवीर, क्रांतिवीर, स्वदेश, नया हिन्दुस्तान, कल्याण, हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, बुन्देलखण्ड केसरी, मतवाला सरस्वती, विप्लव, अलंकार, चाँद, हंस, प्रताप, सैनिक, क्रांति, बलिदान, वालिंट्यर आदि जनवादी पत्रिकाओं ने आहिस्ता-आहिस्ता लोगों में सोये हुए देशभक्ति के जज्बे को जगाया और क्रांति का आह्वान किया।

भारत के स्वाधीनता संघर्ष में पत्र-पत्रिकाओं की अहम भूमिका रही है। राजा राममोहन राय, महात्मा गांधी, मौलाना अबुल कलाम आजाद, बाल गंगाधर तिलक, पंडित मदनमोहन मालवीय, बाबा साहब अम्बेडकर, यशपाल जैसे आला दर्जे के नेता सीधे-सीधे तौर पर पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े हुए थे और नियमित लिख रहे थे। जिसका असर देश के दूर-सुदूर गांवों में रहने वाले देशवासियों पर पड़ रहा था। सत्याग्रह, असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन के प्रचार-प्रसार और उन आन्दोलनों की कामयाबी में समाचार पत्रों की अहम भूमिका रही। कई पत्रों ने स्वाधीनता आन्दोलन में प्रवक्ता की भूमिका निभायी। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रेमचंद, निराला, बनारसीदास चतुर्वेदी, पांडेय बेचन

शर्मा उग्र, शिवपूजन सहाय आदि की उपस्थिति 'जागरण', 'हंस', 'माधुरी', 'अभ्युदय', 'मतवाला', 'विशाल भारत' आदि के रूप में दर्ज है।

'उदन्त मार्तण्ड' के सम्पादन से प्रारंभ हिंदी पत्रकारिता की विकास यात्रा कहीं थमी और कहीं ठहरी नहीं है। पंडित युगल किशोर शुक्ल के संपादन में प्रकाशित इस समाचार पत्र ने हालांकि आर्थिक अभावों के कारण जल्द ही दम तोड़ दिया, पर इसने हिंदी अखबारों के प्रकाशन का जो शुभारंभ किया वह कारवां निरंतर आगे बढ़ा है। साथ ही हिंदी का प्रथम पत्र होने के बावजूद यह भाषा, विचार एवं प्रस्तुति के लिहाज से महत्त्वपूर्ण बन गया। अपने क्रमिक विकास में हिंदी पत्रकारिता के उत्कर्ष का समय आजादी के बाद आया। 1947 में देश को आजादी मिली। लोगों में नई उत्सुकता का संचार हुआ। औद्योगिक विकास के साथ-साथ मुद्रण कला भी विकसित हुई। जिससे पत्रों का संगठन पक्ष सुदृढ़ हुआ। हिंदी पत्रों ने जहाँ एक ओर बहुमुखी विकास का मार्ग प्रशस्त्र किया वहीं राष्ट्रभाषा को सर्वाधिक उपयोगी बनाने का सफल प्रयास किया। पत्रकारिता की शुरुआत एक मिशन के रूप में हुई थी। स्वतंत्रता की पृष्ठभूमि यहां के पत्रों एवं पत्रकारों ने ही तैयार की थी। आजादी की लड़ाई में पत्रकारिता देशभक्ति और समग्र राष्ट्रीय चेतना के साथ जुड़ी रही। इसमें देशभक्ति के अलावा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी शामिल है। स्वाधीनता से पहले देश के लिए संघर्ष का समय था। इस संघर्ष में जितना योगदान राजनेताओं का था उससे तनिक भी कम पत्रों एवं पत्रकारों का नहीं था। स्वतंत्रता पूर्व का पत्रकारिता का इतिहास तो स्वतंत्रता आन्दोलन का मुख्य हिस्सा ही है। तब पत्रकारिता घोर संघर्ष के बीच अपना अस्तित्व बचाये रखने के लिए प्रयत्नशील थी।

90 के दशक में भारतीय भाषाओं के अखबारों, हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में अमर उजाला, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, प्रभात खबर आदि के नगरों-कस्बों से कई संस्करण निकलने शुरू हुए। जहां पहले महानगरों से अखबार छपते थे, भूमंडलीकरण के बाद आयी नयी तकनीक, बेहतर सड़क और यातायात के संसाधनों की सुलभता की वजह से छोटे शहरों, कस्बों से भी नगर संस्करण का छपना आसान हो गया। साथ ही इन दशकों में ग्रामीण इलाकों, कस्बों में फैलते बाजार में नयी वस्तुओं के लिए नये उपभोक्ताओं की तलाश भी शुरू हुई। हिंदी के अखबार इन वस्तुओं के प्रचार-प्रसार का एक जरिया बन कर उभरा है। साथ ही साथ अखबारों के इन संस्करणों में स्थानीय खबरों को

प्रमुखता से छापा जाता है। इससे अखबारों के पाठकों की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है। पिछले कुछ सालों में हिंदी मीडिया ने अभूतपूर्व सफलता अर्जित की है। प्रिंट मीडिया को ही लें, आइआरएस रिपोर्ट देखें तो उसमें ऊपर के पांच अखबार हिंदी के हैं। हिंदी अखबारों और पत्रिकाओं का प्रसार लगातार बढ़ रहा है। इलेक्ट्रानिक मीडिया में हिन्दी न्यूज चैनलों की भरमार है। भारत में 182 से ज्यादा हिंदी न्यूज चैनल हैं। नई तकनीक और प्रौद्योगिकी ने अखबारों की ताकत और ऊर्जा का व्यापक विस्तार किया है।

किसी भी देश के विकास का संबंध भाषा से है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आजकल राजभाषा हिंदी अपनी सीमाओं से बाहर आ चुकी है। यह विकास, बाजार और मीडिया की भाषा भी बन रही है। पूरे भारत और भारत के बाहर हिंदी के द्रुत प्रचार-प्रसार और विकास का श्रेय मनोरंजन चैनल, समाचार चैनल, खेल चैनल और कई धार्मिक चैनल को दिया जा सकता है। अगर किसी भी देशी-विदेशी कम्पनी को अपना उत्पाद बाजार में उतारना होता है तो उसकी पहली नजर हिंदी क्षेत्र पर पड़ती है, क्योंकि उपभोक्ता शक्ति का वृहत्तम अंश हिंदी क्षेत्र में ही निहित है इसलिए उसका विज्ञापन कर्म हिंदी में ही होता है। दुनिया की एक बड़ी आबादी तक पहुंचने के लिए हिंदी की जरूरत पड़ेगी ही। हिंदी अखबारों, हिंदी पत्रिकाओं, हिंदी चैनलों, हिंदी रेडियो और हिंदी फिल्मों की जरूरत पड़ेगी ही। हिंदी माध्यमों का विकास होगा तो निस्संदेह हिंदी का भी विकास होगा। बाजार और मीडिया का विस्तार होगा तो हिंदी भी फैलेगी और जब तक बाजार और मीडिया है तब तक हिंदी मौजूद रहेगी। बाजार और मीडिया ने हिंदी जाननेवालों को बाकी दुनिया से जुड़ने के नये विकल्प खोल दिये हैं। फिल्म, टी.वी. विज्ञापन और समाचार हर जगह हिंदी का वर्चस्व है।

वर्तमान युग हिंदी मीडिया का युग है। हिंदी भाषा का निर्माण और आगे बढ़ाने का कार्य मीडिया ने किया है। इंटरनेट और मोबाइल ने हिंदी को और विस्तार दिया। हिंदी में संप्रेषण की ताकत है। हिंदी यूनिकोड हुई तो ब्लॉगगिंग में बहार आ गई। चिट्ठा लिखनेवालों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि हुई। गूगल का मोबाइल और वेब विज्ञापन नेटवर्क एडसेंस हिंदी को सपोर्ट कर रहा है। इंटरनेट पर 15 से ज्याद हिंदी सर्च इंजन मौजूद हैं। सोशल साइट में हिंदी छाई हुई है। 21 फीसदी भारतीय हिंदी में इंटरनेट का उपयोग करते हैं। हिंदी राजभाषा के बाद अब वैश्विक भाषा बनने की ओर तेजी से बढ़ रही है। डिजिटल दुनिया में हिंदी की मांग अंग्रेजी की तुलना में पाँच गुना तेज है। हिंदी मातृभाषा और

राजभाषा से एक नई वैश्विक भाषा के रूप में हिंदी बदल रही है। वह नई प्रौद्योगिकी, वैश्विक विपणन तंत्र और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों की भाषा बन रही है। आज मोबाइल की पहुँच ने गाँव-गाँव के कोने-कोने में संवाद और संपर्क को आसान बना दिया है। इस वजह से बाजार आ रहे नित नवीन मोबाइल उपकरण हर सुविधा हिंदी में देने के लिए बाध्य हैं। हिंदी की इस समृद्ध, शक्ति और प्रसार पर किसी भी हिंदी भाषी को गर्व हो सकता है।

मीडिया में हिंदी की सार्थकता

हम सब जानते है कि भारत बहुभाषी देश है। अनगिनत भाषाएं और बोलियां बोली जाती हैं। हम सब जानते हैं कि आज हिंदी भाषा समग्रदेश को एकसूत्र में पिरोने वाली, आसानी से समझ में आने वाली, सीधा मन पर असर करने वाली भाषा होने के साथ-साथ हिंदी भाषा को राजभाषा के रूप में मान्यता भी प्राप्त है। यदि हम आजादी से पहले की बात करें तो हमें यह स्वीकार करना होगा कि देश को आजाद कराने में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हमें यह भी स्वीकार करने में परहेज नहीं कि उस समय का मीडिया या पत्रकारिता आज से बिल्कुल अलग थी। उस समय अंग्रेजी भाषा का ज्ञान होना तो दूर की बात अधिकांश लोग केवल अपनी भाषा बोल सकते थे। उस समय अधिकांश लोग अशिक्षित थे और वे समाचार पत्र के ग्राहक ही इस शर्त पर बनते थे कि उन्हें संपादक लिखे गये समाचार या सामग्री पढ़कर सुनाया करेगा। उस समय चौपाले या चोबारे हुआ करते थे जहां बहुत सारे लोग इकट्ठे हुआ करते थे और एक व्यक्ति समाचार पढ़कर सुनाया करता था। हमें यह नहीं मान लेना है कि सभी अनपढ़ थे, परंतु ग्रामीण परिवेश में प्रायः ऐसा ही था। पढ़े-लिखे लोग भी यहाँ आकर सुनना पसंद करते थे।

एक और महत्वपूर्ण बात जो आज कही जा सकती है, उस समय केवल समाचार-पत्र और पत्रिकाएं ही थी जो देश के लोगों में राष्ट्रभक्ति की भावना जगाती थी। उस समय हिंदी और अन्य भाषाओं का योगदान भी इसमें बराबर था। आप सब जानते ही हैं कि हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभ कलकत्ता से हुआ और भारतीय पत्रकारिता का जन्म बंगाल से माना जाता है। 1755 में कलकत्ता में छपाई शुरू हुई थी। इससे पहले तो संपादक रात-रात भर बैठकर हाथ से पत्र लिखा करते थे और तब बिजली का भी पूरा अभाव था परंतु भाषा, देश और आजादी के दीवाने इन पत्रकारों जिनमें देवीदत्त शुक्ल और द्विवेदी जी का नाम

उल्लेखनीय है, कहा जाता है कि दीपक की मंद रोशनी में रात-रात भर लिखते हुये इनकी आंखों की रोशनी ही मंद हो गयी थी।

1780 में ही पहले समाचार पत्र की स्थापना हुई थी। इस प्रथम बंगाल गजट पत्र को निकालने का श्रेय 'ओगरस हिकी' एक अंग्रेज को जाता है। नवम्बर, 1780 में इंडिया गजट के नाम से दूसरा पत्र शुरू हुआ था। इस बीच बहुत-सी भाषाओं में पत्र निकले लेकिन हिंदी का पहला पत्र प्रकाशित हुआ 30 मार्च, 1826 को जिसका नाम था "उदंत मार्तण्ड'' और इसके संपादक थे युगल किशोर शुक्ल जो कानपुर के निवासी थे।

यह पत्र केवल एक वर्ष और सात महीने ही चल पाया और आर्थिक अभावों के कारण यह बंद हो गया। हिंदी पत्रों में दूसरा पत्र था "बंगदूत''। इस पत्र के संपादक थे श्री नीलरतन हालदार। उस समय इसका मासिक मूल्य एक रूपया था। 1845 में बनारस अखबार के नाम से बनारस से सबसे पहला पत्र प्रकाशित हुआ जिसके संपादक थे श्री गोविंद थत्ते। इस बीच बहुत से पत्र अन्य भाषाओं में आये लेकिन हिंदी का प्रथम दैनिक पत्र "समाचार सुधावर्षण" सन 1854 में प्रकाशित हुआ। इसके संपादक थे श्याम सुंदर और यह पत्र 14 वर्ष तक चला और देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1868 में "कवि वचन सुधा'' नाम से एक हिंदी पत्र प्रकाशित हुआ जो वस्तुत: कविता की पत्रिका थी जिसमें साहित्य, समाज सुधार और राजनीति का समावेश भी रहता था। इसके बाद तो हिंदी पत्र-पत्रिकाओं की सीमा ही नहीं रही। 1874 में महिलाओं के लिए "बाल बोधिनी" शुरू हुई, 1872 में कार्तिक प्रसाद खत्री की "दीप्ति प्रकाश" प्रकाशित हुई। 1872 में आगरा से "प्रेम पत्र'' नाम से, जिसके संपादक थे रूद्रदत्त शर्मा। 1866 में "ज्ञानप्रदायिनी" नाम से नवीन चंद्र के द्वारा हिंदी और उर्दू में प्रकाशित हुई, 1885 में "हिंदोस्थान'' नाम से एक पत्र राजा रामपाल सिंह ने निकाला जिसके संपादक थे पंडित मदन मोहन मालवीय। 1878 में "भारत मित्र'' निकला और सन 1913 में कानपुर से "प्रताप'' का प्रकाशन शुरू हो गया था और इसके संपादक थे गणेश शंकर विद्यार्थी। इन समाचार-पत्रों ने अपने छपे हुये शब्दों से देश में स्वतंत्रता की ललक की लहर दौड़ा दी थी। हिंदी भाषा का योगदान आजादी दिलाने में हमेशा याद रहेगा।

चलिये थोड़ा आगे बढ़ते हुये हम गांधी युग के हिंदी पत्रों की बात करें, जिन्होंने हमें आज के मीडिया पर चर्चा करने के लिए सहयोग दिया और हिंदी

के उन पत्रों की जिन्होंने भारत की जनता के बीच क्रांति सूत्र को जन्म देने, उसे हवा देते रहने का महत्वपूर्ण लक्ष्य अर्जित किया। इनमें सबसे पहला नाम "मतवाला'' का है। इस पत्र के संपादकीय ऐसे हुआ करते थे कि लोगों के दिलों में आजादी की ज्वाला दहकने लगती थी।

31 मई, 1924 के संपादकीय का एक उदाहरण देखिए- "हमें बिना विलंब सत्याग्रह की शरण लेकर लीडरों को अपना पिछलगुआ बनने के लिए बाध्य करना चाहिए क्योंकि गांधी-विहीन स्वराज्य यदि स्वर्ग से भी सुंदर हो तो नरक के समान त्याज्य है। यदि आप स्वतंत्रता के अभिलाषी हैं और अपने देश में स्वराज्य को लाना चाहते हैं तो तन, मन, धन से महात्मा गांधी के आदेशों का पालन करना आरंभ कर दीजिये।'' एक नहीं उस युग के कितने ही पत्रों में हिंदी के माध्यम से कहे गये शब्दों का यही मुख्य स्वर था। यही शब्द आगे चलकर एक क्रांति बन गये। इस पत्र के मुख पृष्ठ के लिए सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी कविता लिखा करते थे और संपादक के रूप में सेठ श्री महादेव प्रसाद का नाम छपता था। एक और पत्र "सेनापति'' था जिसके संपादक पं. राम गोविंद त्रिपाठी थे। इस पत्र ने भी लोगों में वीरता की भावना को जन्म देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। "हिंदु पंच'' एक साप्तहिक पत्र था। उस समय का यह एक तेजस्वी पत्र था। इसके संपादक श्री मुकुंद लाल वर्मा थे। इसमें प्रकाशित एक टिप्पणी देखें "क्या माया की परतंत्रता से हमें लज्जा नहीं आती। हमारी वह समृद्धशालिनी रत्नगर्भा माता जो किसी समय धन-धान्य से परिपूर्ण थी, आज दरिद्र भिखारिणी हो रही है। परतंत्रता और दासता में रहते-रहते क्या अब हम ऐसे निष्प्राण हो गये हैं कि वह दासवृति त्याग देने का हम प्रयास भी नहीं कर सकते। क्या हम पतंगे से भी गये गुजरे हैं कि हम अग्नि में गिरकर अपने प्राण भी नहीं दे सकते। बिना आत्म बलिदान के कोई भी हमें स्वतंत्रता प्रदान नहीं करेगा। स्वतंत्रता ऐसी है ही नहीं जो आसानी से मिल जाये और आसानी से मिली हुई स्वतंत्रता कभी टिकाउ नहीं हो सकती।" और इसी तरह की लंबी बातों का सिलसिला चला जिसने भारत के लोगों के दिलों में आजादी की भावना को जगा दिया।

"श्रीकृष्ण संदेश'' (27 दिसम्बर, 1925), "समन्वय'' (1922), "सरोज'', "विशाल भारत'', "मौजी'' (27 दिसम्बर, 1925), ''भारत मित्र'', स्वतंत्र ऐसे हिंदी पत्र थे जिन्होंने लोगों के दिलों में अपनी अमिट छाप छोड़ी।

पत्रकारिता और मीडिया में हिंदी की भूमिका की बात की जाये और नागरी प्रचारिणी सभा तथा उनकी पत्रिका का उल्लेख न किया जाये तो एक

भूल होगी। इस पत्रिका ने हिंदी के विकास में अग्रणी भूमिका निभाई। इसके साथ ही सरस्वती और प्रेमचंद जी की पत्रिका "हंस" को भी आज याद किया जा सकता है। हंस का प्रथम अंक 26 मार्च 1930 को प्रकाशित हुआ। इसके संपादन मंडल में मोहनदास करमचंद गांधी, पुरूषोत्तम दास टण्डन, मैथिलीशरण गुप्त, राम नरेश त्रिपाठी, काका साहेब कालेकर और नर्मदा सिंह थे।1928 में लखनऊ से "माधुरी'' का संपादन हुआ।

आज के महत्वपूर्ण हिंदी समाचार पत्रों का उल्लेख संक्षेप में किया जाना ठीक होगा। समाज को नयी दिशा देने, कार्यपालिका और न्यायपालिका के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे इन समाचार पत्रों, मीडिया की भूमिका के बाद हम आज के इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के विभिन्न चैनलों की भूमिका पर बात करेंगे। हमें यह मान लेना चाहिए कि यदि मीडिया के ये साधन खामोश रहकर केवल आर्थिकोपार्जन ही करें और अपना कार्य ठीक से करना छोड दें तो? कहते है कि मीडिया में अगर संप्रेषणता का गुण फीका हो जाये तो समाज के लिए ये उपयोगी नहीं रहता, चाहे वह प्रिंट मीडिया हो या इलेक्ट्रॉनिक मीडिया। आज मीडिया और इसकी उपयोगिता से कोई भी वर्ग अछूता नहीं रहा। संप्रेषणता का एक बेहद रोचक उदाहरण। ये कृष्ण के जीवन का उदाहरण है। दृश्य है–द्वारकापुरी में कृष्ण लेटे हुये हैं और रुक्मणी उनके पॉव सहला रही है। उनका हाथ जैसे ही कृष्ण के पॉव पर जाता है, वो एक छाले को देख घबरा जाती हैं और चौंक कर पूछती है "कृष्ण, तुम्हारे पांव पर छाला है। तुम्हें तो कभी नंगे पांव नहीं चलना पड़ा फिर तुम्हारे पांव में छाला कैसे पड़ा? इसमें क्या रहस्य है, मुझे समझाओ।

कृष्ण ने कोशिश की बात को टालने की। रुक्मणी हठ में आ गयी "आप कुछ छिपा रहे हो, बोलो।"

कृष्ण ने कहा "इसका कारण तुम हो, इसलिए मैं टाल रहा हूं और बात को आगे नहीं बढ़ाना चाहता।"

रुक्मणी और क्रोध में आ गयी और बोली, "एक तो चोरी दूसरा सीनाजोरी। एक तो आप मुझे ही कारण बता कर मुझ पर आरोप लगा रहे हो और दूसरा मुझसे ही छिपा रहे हो।"

कृष्ण ने कहा "आरोप नहीं लगा रहा यह बात सच है, कारण तुम ही हो।"

''अगर मैं कारण हूं तो आपको मुझे समझाना पड़ेगा।"

कृष्ण बोले, "कुछ दिन पहले राधा आयी थी द्वारका में।"

रूक्मणी ने कहा, "हां आयी थी तो।"

कृष्ण "मैंने तुम्हारी ड्यूटी लगायी थी कि तुम उसकी सेवा करो।"

रुक्मणी, "हां, लगायी थी और मैंनें ईमानदारी से सेवा की थी कोई कसर नहीं छोड़ी थी"

कृष्ण, "तुम्हारी बात सही है पर एक सच्चाई और भी है कि तुम्हारे मन में अभी भी राधा के लिए कुछ क्रोध है, ईर्ष्या है।"

वो चुप हो गयी।

कृष्ण ने कहा,–"तुमने ईर्ष्या के कारण एक दिन राधा को गरम दूध पिला दिया था। तुम्हें मालूम नहीं कि उसके हृदय में मेरे चरण रहते हैं।"

ऐसी संप्रेषणता का उदाहरण केवल इसी देश में हो सकता है। ऐसी संप्रेषणता ही आधार है विश्वास का और प्यार का भी। ऐसे बहुत से उदाहरण देकर समझाया जा सकता है कि मीडिया में संप्रेषणता बिना राग, बिना द्वेष के हो तो क्या बात है। हमारी भाषा और उसके शब्द ही आदान-प्रदान का विश्वसनीय आधार हैं, मूल हैं।

हम एक प्रयोग के द्वारा इस बात को सिद्ध कर सकते हैं। हम एक ही कमरे के दो कोनों में पानी की दो बोतले रख दें और एक बोतल के सामने प्रति दिन प्रार्थना करें और अच्छी-अच्छी बातें करें और दूसरे कोने में रखी बोतल के सामने विकृत और खराब भाषा का प्रयोग करें तो कुछ दिन बाद हमें प्रार्थना वाले पानी में से सुगंध और विकृत भाषा वाले पानी में से दुर्गंध आने लगेगी। प्रार्थना वाले पानी का रंग गुलाबी केसरिया हो जायेगा और विकृत भाषा वाले पानी का रंग मटमैला लगने लगेगा। हमने पानी को हाथ नहीं लगाया, छुआ तक नहीं। ये हमारी भाषा और शब्दों की शक्ति का बहुत बड़ा उदाहरण है।

मीडिया में भी हमारे शब्दों और भाषा का महत्व इस उदाहरण से समझा जा सकता है। टी वी चैनलों पर हिंदी के कार्यक्रमों, हिंदी फिल्मों, हिंदी विज्ञापन और हिंदी डबिंग के माध्यम से हिंदी की भूमिका की चर्चा किये बिना मुझे उपरोक्त उदाहरणों के माध्यम से कहना है कि सरलता, संवेदनशीलता, भावुकता, शब्द शक्ति और भाषा की संप्रेषणता की भूमिका ने मीडिया को जन-जन तक पहुंचाया है। आज हर कोई जान गया है कि यदि किसी को भारत में कारोबार करना है, अपनी जगह बनानी है तो उसे हिंदी का आश्रय लेना ही होगा।

देश का कौन-सा घर होगा जहां महाभारत, रामायण, कौन बनेगा करोड़पति या फिर कमेडी सर्कस न पहुंचा हो। हिंदी भाषा ने लोगों के दिलो दिमाग में अब

गहरी पैठ बना ली है। देश और विदेशों में आज हिंदी की भूमिका का डंका बज रहा है।

विभिन्न इलेक्ट्रॉनिक माध्यम एवं हिन्दी पत्रकारिता

इलेक्ट्रॉनिक मीडिया के मुख्य माध्यम निम्नलिखित हैं-

1. रेडियो

आधुनिक संचार क्रांति ने समाचार जगत में उथल-पुथल कर दी है। इस क्रांति ने पहले चरण में रेडियो तथा दूसरे चरण में टेलीविजन के आविष्कार ने जनसंचार के पारंपरिक मुद्रित माध्यमों को पीछे छोड़ते हुए समाचार प्रेषण की नई पद्धति को विकसित किया। यही नहीं पूरे विश्व के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जगत में इस नई तकनीक ने चमत्कार कर दिया है। रेडियो, इलेक्ट्रॉनिक मीडिया का महत्त्वपूर्ण श्रव्य माध्यम है।

2. टेलीविजन

टेलीविजन जनसंचार का बहुत ही प्रभावशाली और युवा माध्यम है। ध्वनि के साथ-साथ चित्रों को प्रस्तुत करके इस माध्यम द्वारा मानव व्यक्तित्व को भी प्रस्तुत किया जाता है और इस प्रकार इसका जनता पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। यह दृश्य-श्रव्य माध्यम है और इसकी कोई भौगोलिक सीमा नहीं होती। इसलिए इसे सार्वभौमिक माध्यम भी कहा जाता है।

3. कम्प्यूटर

सम्प्रति सर्वत्र कम्प्यूटर का वर्चस्व हैं। उद्योग, शिक्षा, यातायात-नियंत्रण, चिकित्सा-सुविधा, चुनाव सम्बन्धी भविष्यवाणियों, मौसम-सम्बन्धी सूचनाएं और कानून-व्यवस्था को अधिक कारगर बनाने में कम्प्यूटर सर्वाधिक सक्षम है। संचार व्यवस्था को अधिकाधिक सफल बनाने में इलेक्ट्रॉनिक्स की प्रगति से सम्बद्ध कम्प्यूटर का विषेश हाथ है।

कम्प्यूटर के कारण समाचार-प्रेषण में क्रान्ति मची हुई है। एक समय था जब कि कबूतर, डाकिए, टेलीग्राफ द्वारा संवाद भेजे जाते थे जो मंथर गति से गंतव्य तक कभी पहुंचे तो कभी बीच में ही खो जाते थे अब तो कम्प्यूटर के कारण वे तत्काल समाचार कार्यालय में पहुंच जाते हैं। टेलीप्रिंटर और वीडियो

मानीटर स्क्रीन से संवाद प्रेषण में क्षिप्रता आई है। समाचारों के ढेर से समाचार छांटना और उसे संबंधित विभागाध्यक्ष के पास भेजना कंप्यूटर द्वारा सरलता से हो रहा है।

4. मल्टीमीडिया

मल्टीमीडिया की संकल्पना, कई माध्यमों (टेक्स्ट, फोटोग्राफी, आडियो एवं वीडियो टेप आदि) की पारम्परिक विचारधारा से आयी है। नये कम्प्यूटर के प्रयोग से डिजिटलाइज्ड सूचना जिसमें टेक्स्ट, ग्राफिक्स, साउंड एनीमेशन एवं वीडियो आदि की एकीकरण करने की अवधारणा ने इसे पुनर्परिभाषित किया।

5. इन्टरनेट

इन्टरनेट दुनिया को जोड़ने की एक अत्याधुनिक विकसित एवं सफल संचार प्रणाली है। विश्व में इस समय जितने कम्प्यूटर नेटवर्क सक्रिय हैं, उनमें इंटरनेट सबसे बड़ा है, जो विश्व स्तर पर कम्प्यूटरों का नेटवर्क बनाता है। एक अनुमान के अनुसार इस नेटवर्क से विश्व भर में लगभग करोड़ों कम्प्यूटर जुड़े हुए हैं। इस प्रकार 164 देशों के लगभग करोड़ों लोगों का सूचना के इस महामंत्र से जुड़ पाना संभव हो पाया है।

कम्प्यूटर नेटवर्किंग सॉफ्टवेयर एवं डाटा बेस इन्टरनेट का आधार है। इन्टरनेट में ध्वनि, तस्वीर, डाटा, सॉफ्टवेयर, आवाज आदि को डालने के लिए मल्टीमीडिया के विकास के साथ ही इंटरनेट के प्रति लोगों में तेजी से आकर्षक बढ़ा है। इसके माध्यम से कम्प्यूटर, टेलीफोन और इलेक्ट्रॉनिक्स प्रणालियों का संयोजन तथा ऑप्टिकल फाइबर प्रणाली के विकास से शब्दों, ध्वनियों और चित्रों को डिजिटल रूप से प्राप्त करना और भेजना संभव हो गया है।

इंटरनेट के माध्यम से हमें निम्नलिखित जनसंचार माध्यमों का सहयोग प्राप्त होता है–

इलेक्ट्रॉनिक मेल–(ई. मेल) पत्र या संदेश भेजने का यह अति आधुनिक तथा अत्यंत तीव्र तरीका है। डाक प्रणाली की भांति अब पत्रों को इलेक्ट्रॉनिक मेल द्वारा कम्प्यूटर की सहायता से एक स्थान से दूसरे स्थान तक भेजा जा सकता है।

ई-बुक–इंटरनेट के विस्तार के साथ ही इस बात की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। ससांर भर में प्रकाशित पुस्तकों को किसी तरह नेट पर भी सुलभ

बनाया जाए। इसके लिए उनके डिजिटल स्वरूप की जरूरत थी। यह काम हुआ और प्रकाशकों के सहयोग से अब असंख्य पुस्तकें इंटरनेट पर पी.डी. एफ. फॉर्मेट में उपलब्ध हैं। उन्हें ऑनलाइन क्रय करके अपने कंप्यूटर या किसी डिजिटल स्टोरेज डिवाइस में सुरक्षित रखा और पढ़ा जा सकता है। इस तरह किताबों को रखने में कोई जगह नहीं घिरती और वे आपसे बस एक क्लिक की दूरी पर होती हैं।

ई-मैग्जीन—इंटरनेट पर अब कई पत्रिकाएँ ऐसी मौजूद हैं, जिनका कोई प्रिंट एडिशन नहीं निकलता। वे इंटरनेट पर ही छपती और पढ़ी जाती हैं तथा हमेशा के लिए सुरक्षित रखी जा सकती हैं—इन्हें ही प्रचलित भाषा में ई-मैग्जीन कहा जाता है। हिंदी में भी ऐसी पत्रिकाओं की शुरूआत हो चुकी है।

ब्लॉग—ब्लॉग वेब-लॉग का संक्षिप्त रूप है, जो अमेरिका में 1997 के दौरान इंटरनेट में प्रचलन में आया। प्रारंभ में कुछ ऑनलाइन जर्नल्स के लॉग प्रकाशित किए गए थे, जिसमें जालंधर के भिन्न क्षेत्रों में प्रकाशित समाचार, जानकारी इत्यादि लिंक होते थे, तथा लॉग लिखने वालों की संक्षिप्त टिप्पणियाँ भी उनमें होती थी। इन्हें ही ब्लॉग कहा जाने लगा। ब्लॉग लिखने वाले, जाहिर है, ब्लॉग कहलाने लगे।

डिजिटल युग में हिन्दी पत्रकारिता

तकनीकी विकास के साथ-साथ जनसंचार माध्यमों यथा हिन्दी पत्रकारिता के रूख में तेजी से परिवर्तन देखने को मिला है। तकनीकी के विस्तार से हिन्दी पत्रकारिता के विस्तार में मदद मिली है। हिन्दी समाचार चैनल, समाचार पत्रों के साथ-साथ हिन्दी में समाचार वेबसाइट के कारण हिन्दी पत्रकारिता का दायरा बढ़ा है। हिन्दी पत्रकारिता को व्यावसायिक कलेवर में ढाला जा चुका है। वहीं तमाम समानान्तर माध्यम भी कार्य कर रहे हैं, जो व्यावसायिकता से अभी परे है। यह समय के साथ लगातार विकसीत हो रहा है। तकनीकी के कारण सूचनाओं पर लगने वाली बंदिशे कम हुई हैं और लोगों तक अबाध सूचना का मार्ग प्रशस्त हुआ है। इन सबके चलते हिन्दी पत्रकारिता ने नये दौर में प्रवेश किया है।

21वीं शताब्दी सूचना प्रौद्योगिकी का युग है। आधुनिक संचार तकनीकी का मूल आधार इन्टरनेट है। कलमविहीन पत्रकारिता के इस युग में इन्टरनेट पत्रकारिता ने एक नए युग का सूत्रपात किया है। वेब पत्रकारिता को हम इन्टरनेट पत्रकारिता, ऑनलाइन पत्रकारिता, साइबर पत्रकारिता के नाम से जानते है। यह

कम्प्यूटर और इंटरनेट द्वारा संचालित एक ऐसी पत्रकारिता है, जिसकी पहुँच किसी एक पाठक, एक गाँव, एक प्रखण्ड, एक प्रदेश, एक देश तक नहीं अपितु समूचे विश्व तक है।

प्रिंट मीडिया से यह रूप में भी भिन्न है। इसके पाठकों की संख्या को परिसीमित नहीं किया जा सकता है। इसकी उपलब्धता भी सर्वाधिक है। इसके लिए मात्र इन्टरनेट और कम्प्यूटर, लैपटॉप या मोबाइल की जरूरत होती है। इंटरनेट वेब मीडिया की सर्वव्यापकता को भी चरितार्थ करती है जिसमें खबरें दिन के चौबीसों घण्टे और हफ्ते के सातों दिन उपलब्ध रहती हैं। वेब पत्रकारिता की सबसे बड़ी खासियत है उसका वेब यानी तरंगों पर आधारित होना। इसमें उपलब्ध किसी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र-पत्रिका को सुरक्षित रखने के लिए किसी अलमीरा या लाइब्रेरी की जरूरत नहीं होती।

समाचार पत्रों और टेलीविजन की तुलना में इंटरनेट पत्रकारिता की उम्र बहुत कम है लेकिन उसका विस्तार बहुत तेजी से हुआ है। उल्लेखनीय है कि भारत में इंटरनेट की सुविधा 1990 के मध्य में मिलने लगी। इस विधा में कुछ समय पहले तक अंग्रेजी का एकाधिकार था लेकिन विगत दशकों में हिन्दी ने भी अपनी प्रभावी उपस्थिति दर्ज की है। इंदौर से प्रकाशित समाचार पत्र 'नई दुनिया' ने हिन्दी का पहला वेब पोर्टल 'वेब दुनिया' के नाम से शुरू किया। अब तो लगभग सभी समाचार पत्रों का इंटरनेट संस्करण उपलब्ध है। चेन्नई का 'द हिन्दू' पहला ऐसा भारतीय अखबार है जिसने अपना इंटरनेट संस्करण वर्ष 1995 ई. में शुरू किया। इसके तीन साल के भीतर यानी वर्ष 1998 ई. तक लगभग 48 समाचार पत्र ऑन-लाइन हो चुके थे। ये समाचार पत्र केवल अंग्रेजी में ही नहीं अपितु हिन्दी सहित अन्य भारतीय भाषाओं जैसे मलयालम, तमिल, मराठी, गुजराती आदि में थे। आकाशवाणी ने 02 मई 1996 'ऑन-लाइन सूचना सेवा' का अपना प्रायोगिक संस्करण इंटरनेट पर उतारा था। एक रिपोर्ट के मुताबिक वर्ष 2006 ई. के अन्त तक देश के लगभग सभी प्रतिष्ठित समाचार पत्रों एवं टेलीविजन चैनलों के पास अपना इंटरनेट संस्करण भी है जिसके माध्यम से वे पाठकों को ऑन-लाइन समाचार उपलब्ध करा रहे हैं।

हिंदी के विकास में वेब मीडिया का योगदान

आज के प्रौद्योगिकी के दौर में मीडिया एक शक्तिशाली माध्यम के रूप में उभरा है और उसमें भी न्यू मीडिया यानि वेब मीडिया के प्रति लोगों का

आकर्षण प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है भूमंडलीकरण के दौर में मीडिया का दायरा काफी विस्तृत हो चुका है, ऐसे में विभिन्न भाषाओं का विकास भी वेब मीडिया के तहत ही हो रहा है। आज की स्थिति में वेब और भाषा एक-दूसरे के अहम सहयोगी माने जा सकते हैं।

भारत जैसे विशाल देश में जहाँ व्यापक क्षेत्र में हिंदी बोली जाती है वहां इसके विकास में वेब मीडिया के योगदान को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। ये सच है कि वेब के असर से हिंदी के स्वरूप में इसके मूल स्वरूप से भिन्नता है लेकिन यही भिन्नता ही इस विकास की गाड़ी के पहियें हैं। एक विस्तृत दायरे के साथ हिंदी अपने आप में व्यापक है। वेब मीडिया के प्रयोगों के बावजूद हिंदी के अस्तित्व पर कोई संकट नहीं है। दूसरी भाषाओं के कुछ शब्दों के प्रयोग से ही हिंदी वेब के लायक बनी अन्यथा अपने मूल स्वरुप में हिंदी एक दायरे तक सीमित होकर रह जाती।

यूँ तो 80 के दशक में ही हिंदी को कंप्यूटर की भाषा बनाने का प्रयास शुरू हो चुका था परन्तु वेब के साथ हिंदी का प्रयोग 20वीं सदी के समाप्ति के बाद शुरू हुआ। सन 2000 में यूनिकोड के पदार्पण के बाद 2003 में सर्वप्रथम हिंदी में इन्टरनेट सर्च और ई मेल की सुविधा की शुरुआत हुई। हिंदी के विकास में यह एक मील का पत्थर साबित हुआ। 21वीं सदी के पहले दशक में ही गूगल न्यूज, गूगल ट्रांसलेट तथा ऑनलाइन फोनेटिक टाइपिंग जैसे औजारों ने वेब की दुनिया में हिंदी के विकास में महत्त्वपूर्ण सहायता की।

उपरोक्त सभी ऑनलाइन औजार यूँ तो प्रत्यक्ष से कोई बड़ी भूमिका में न रहें हों परन्तु हिंदी के समग्र विकास में इनकी सहायता से इंकार नहीं किया जा सकता है। भारत जैसे देश में जहाँ महज 10 प्रतिशत से भी कम लोग अंग्रेजी का ज्ञान रखते हैं, वहां हिंदी के इस स्वरूप की आवश्यकता बढ़ जाती है। हिंदी के इसी महत्त्व पर मशहूर विचारक सच्चिदानन्द सिन्हा ने लिखा है– " भाषा जो प्रतीकों का समुच्चय होती है, संस्कृतियों के संकलन और सम्प्रेषण का सबसे सरल माध्यम भी होती है और सम्प्रेषण आम बोलचाल की भाषाओं से भी होता है–बल्कि अधिक सशक्त रूप से"

यहाँ सम्प्रेषण के एक और सशक्त माध्यम "वेब मीडिया" का भी उल्लेख किया जा सकता है या फिर हम कह सकते हैं कि वेब मीडिया एक ऐसा गुरुकुल है जहाँ प्रत्येक भाषा एक संकाय की भांति प्रतीत होती है।

इलेक्ट्रॉनिक संचार–माध्यम और कंप्यूटर आदि के उपयोग में हिंदी अपनी जगह बना ली है। इससे एक तरफ इन माध्यमों से हिंदी का प्रसार हो रहा है, तो दूसरी तरफ हिंदी का अपना बाजार भी बन रहा है। इससे हिंदी की अंतर्राष्ट्रीय भूमिका मजबूत हो रही है।

हिंदी भाषा में कही बात यदि अंग्रेजी अनुवाद में कही जाय तो यह निश्चित है कि इसकी स्पष्टता में कम से कम दस फीसदी की कमी जरूर आयेगी। हिंदी के विकास में ब्लॉगिंग ने निश्चित रूप से एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, इसका प्रमाण यह है कि हिंदी के कई ऐसे ब्लॉग हैं, जो रोजाना 1000 से भी ज्यादा व्यक्तियों द्वारा देखे जाते हैं और यह कोई सामान्य बात नहीं है। शैली तथा वैचारिक रूप से अलग अलग ये ब्लॉग अपनी भाषायी खुशबू को प्रतिदिन हजारों जनमानस तक पहुंचाते हैं। किसी भाषा के विकास व उत्थान के लिए इससे बेहतर क्या हो सकता है।

हिंदी के इसी स्थिति को हम मजरूह सुल्तानपुरी के इस शेर से भी जोड़ सकते हैं–

"मनचले बुनेंगे अन रंगो-बू के पैराहन
अब संवर के निकलेगा हुस्न कारखाने से"

वेब मीडिया के आने से पूर्व सभी कृतिकारों को अपनी बात आम जनमानस तक पहुँचाने में अनेक दिक्कतों का सामना करना पड़ता था। ढेरों प्रयास के बावजूद भी वे अपनी कृति को एक सीमित दायरे तक ही पंहुचा पाते थे। वेब मीडिया ने इन सभी सीमाओं को तोड़ा है। आज सभी लेखक गुमनामी की कालिमा को इस माध्यम के प्रकाश की सहायता से खत्म कर सकते हैं।

इन्टरनेट पर हिंदी में खोज आने के बाद हमारी मूल जिज्ञासा का जवाब हिंदी में ही पलक झपकते ही हमारे सामने होता है और ये सब इसी लिए सम्भव हुआ है, क्योंकि इंटरनेट के सागर में नित प्रतिदिन हिंदी ज्ञान स्वरूपी नदियाँ समाहित हो रही हैं और इसी प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ कि आज भारत से बाहर सात समन्दर पार भी हिंदी सभाएं एवं गोष्ठियां, सम्मेलन, पुरस्कार समारोह आदि आयोजित किये जा रहे हैं।

भारत की भाषायी स्थिति और उसमे हिंदी के स्थान को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि हिंदी आज भारतीय जनमानस के सम्पर्क की राष्ट्रीय भाषा है। संख्या की दृष्टि से दुनिया की इस तीसरी सबसे बड़ी भाषा के जानने वालों की यह विशाल जनसंख्या हिंदी के अंतर्राष्ट्रीय सम्पर्क का साक्षात्कार कराती है,

क्योंकि आज दुनिया के हर कोने में बसे भारतीय वेब मीडिया की सहायता से हिंदी को तवज्जो देना शुरू कर चुके हैं। उपर्युक्त तथ्यों और बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वेब मीडिया ने हिंदी समेत सभी भाषाओं को एक सामान वैश्विक मंच प्रदान किया है। चूँकि हिंदी की अपनी विशेषताएं हैं इसलिए हिंदी अन्य भाषाओं से तेज व सकारात्मक रूप से परिवर्तनशील यानि कि विकासशील है।

सोशल मीडिया एवं हिंदी

आजकल जब लगभग हर चीज को सोशल मीडिया में उसकी उपस्थिति से नापा जा रहा है। हर संस्था, व्यक्ति, सरकार, कंपनी, साहित्यकर्मी से समाजकर्मी तक और नेता से अभिनेता तक को सोशल मीडिया में उसके वजन, प्रभाव और लोकप्रियता की कसौटी पर तौला जा रहा है। यह स्वाभाविक है कि इस नई तकनीकी-सामाजिक शक्ति और भाषा के संबंध को भी हम समझने की कोशिश करें। कुछ बुनियादी बातें शुरू में। यह सोशल मीडिया भी अंततः एक तकनीकी चीज है। हर तकनीकी आविष्कार निरपेक्ष होता है यानी हर तरह के काम के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है, चाहे वह अच्छा हो या बुरा। इसलिए हर तकनीकी आविष्कार की तरह इसके दुरुपयोग पर हमें ज्यादा आश्चर्य नहीं होना चाहिए। हर वैज्ञानिक या तकनीकी आविष्कार, यदि वह एक व्यापक समाज के लिए रोचक या उपयोगी है, अपनी एक नई जगह बना लेता है और जब यह नई तकनीक संवाद और संप्रेषण से जुड़ी हो तो स्वाभाविक है कि वह अपनी विशिष्टताओं के साथ संवाद और संप्रेषण के नए-पुराने तरीकों, उपकरणों और तकनीकों को कुछ विस्थापित करके ही अपनी जगह बनाती है।

जब प्रिंट आया तो वाचिक संवाद की सर्वव्याप्तता घटी। जब रेडियो आया तो उसने लिखित और मुद्रित माध्यम को थोड़ा खिसका कर अपनी जगह बनाई। जब टेलीविजन आया तो बहुत से लोगों ने मुद्रित माध्यम के अवसान की घोषणा कर दी। उसका अवसान तो नहीं हुआ, लेकिन उसके विकास, प्रभाव और राजस्व पर सीधा प्रभाव पड़ा और आज भी पड़ता ही जा रहा है। अब सोशल मीडिया नाम के इस नए प्राणी ने संचार माध्यमों की दुनिया को फिर बड़े बुनियादी ढंग से बदल दिया है। यह प्रक्रिया जारी है और कहां जाकर स्थिर होगी, यह कोई नहीं जानता। लेकिन इन नए संप्रेषण मंचों और पुरानों में एक बुनियादी अंतर है। अखबार, पुस्तकों, पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी से अलग इस

माध्यम की संवाद क्षमता इसे शायद इन सबसे ज्यादा निजी, आकर्षक, अंतरंग और इसलिए शक्तिशाली बनाती है। दूसरे माध्यम एक दिशात्मक थे। यह नया माध्यम अंत:क्रियात्मक है, आपसी संवाद संभव बनाता है। अब जब यह डेस्कटॉप कंप्यूटरों, लैपटॉपों से निकल कर मोबाइल फोन पर आ गया है तो सर्वव्यापी, सर्वसमय, सर्वत्र और सर्वसुलभ हो गया है। इसने राजनीतिक रणनीतियों, विमर्श और चुनावी नतीजों में अपनी जगह बनाई है। कंपनियों और उनके उत्पादों, सेवाओं के प्रचार-प्रसार, उपभोग, मार्केटिंग और ग्राहकों तक पहुंचने, उन्हें छूने के तौर-तरीकों को बदला है। व्यापार, उद्योग, शासन, मनोरंजन, राजनीति और मीडिया जगत के लोगों के लिए तो ये मंच महत्त्वपूर्ण है ही।

दरअसल भाषा के दो प्रमुख आयाम हैं। एक, उसका शुद्ध भाषिक आयाम जिसमें उसके शब्दों, वाक्य रचना, व्याकरण, शब्दकोश आदि पर ध्यान रहता है। दूसरा, भाषा का सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक संदर्भ जिसमें उसके इन संदर्भों में प्रयोग, परिवर्तनों, अर्थों, प्रभावों आदि पर ध्यान होता है। आज संसार की लगभग हर भाषा पर सोशल मीडिया के प्रभाव को महसूस किया जा रहा है, उसे समझने की कोशिश हो रही है और विमर्श हो रहा है। इस नए माध्यम ने हर नए माध्यम की तरह हर भाषा के प्रयोग के तौर-तरीकों, शब्दकोश, शैली, शुद्धता, व्याकरण और वाक्य रचना को प्रभावित किया है। यह असर लिखित ही नहीं, बोलने वाली भाषा पर भी दिख रहा है। जब ई-मेल आया तो कहा गया कि पत्र लिखना ही समाप्त हो जाएगा। वह तो नहीं हुआ, लेकिन हाथ या टाइपराइटर से पत्र लिखने का चलन जरूर खत्म हो गया। पर बात यहीं तक नहीं है। अब एसएमएस, ट्विटर, फेसबुक और वाट्सएप ने बहुत से लोगों के लिए ई-मेल को भी अनावश्यक और अप्रासंगिक बना दिया है। सोशल मीडिया ने अपनी एक नई भाषा गढ़ ली है। भाषा और शब्दों के सौंदर्य, मर्यादा, गरिमा और स्वरूप की चिंता करने वाले सभी इस नई भाषा के प्रभाव और भविष्य पर तो चिंतित हैं ही, इस पर भी हैं कि इस खिचड़ी, विकृत, कई बार अटपटी भाषा की खुराक पर पल-बढ़ रही किशोर और युवा पीढ़ी वयस्क होने पर किसी भी एक भाषा में सशक्त और प्रभावी संप्रेषण के योग्य बचेगी या नहीं। यह खतरा इसलिए भी गंभीर होता जा रहा है कि नई पीढ़ियां पाठ्य-पुस्तकों के अलावा कुछ भी गंभीर, स्वस्थ, विचारपूर्ण लेखन, साहित्य, वैचारिक पठन से लगातार दूर जा रही हैं। अच्छी, असरदार भाषा अच्छा पढ़ने से ही आती है। अच्छी भाषा के बिना गहरा, गंभीर विचार, विमर्श, चिंतन और ज्ञान-निर्माण संभव नहीं। वे

पीढ़ियां जो विद्यालयों की मजबूरन पढ़ाई के बाहर केवल या अधिकांशतः यह खिचड़ी और भ्रष्ट भाषा ही पढ़ लिख रही हैं, उसकी बौद्धिक क्षमताएं ठीक से विकसित होंगी कि नहीं? अगर हमारे भावी नागरिक गंभीर चिंतन और विमर्श में सक्षम ही नहीं होंगे तो उसका उनके विकास के अवसरों और व्यापक सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, बौद्धिक, राजनीतिक विकास पर कैसा असर पड़ेगा, इस पर अभी हमारे बौद्धिक समाज, सरकार और नीति-निर्माताओं का ध्यान बहुत कम गया है।

सोशल मीडिया का असर बस नकारात्मक ही नहीं है। ट्विटर जैसे मंचों की शब्दसीमा ने अपनी बात को चुस्त और कम से कम शब्दों में कहने के अभ्यास को संभव बनाया है। सोशल मीडिया ने सार्वजनिक अभिव्यक्ति और एक बड़े समुदाय तक निडर और बिना रोक-टोक और नियंत्रण के अपनी बात, अपनी सोच और अनुभव पहुंचाना संभव बनाकर करोड़ों लोगों को एक नई ताकत, छोटी-बड़ी बहसों में भागीदारी का नया स्वाद और हिम्मत दी है। इस नई ताकत ने सरकारों और शासकों को ज्यादा पारदर्शी, संवादमुखी और जवाबदेह बनाया है, जनता के मन और नब्ज को जानने का नया माध्यम दिया है। सोशल मीडिया की ताकत ने सरकारों को अपने फैसलों, नीतियों और व्यवहारों को बदलने पर भी मजबूर किया है। पर क्या इस मीडिया ने लोक-विमर्श को ज्यादा गंभीर, गहरा, व्यापक, उदार बनाया है? क्या जब करोड़ों लोग एक साथ इतना लिख–बोल रहे हैं तो इन मंचों पर सार्वजनिक विमर्श की गुणवत्ता बढ़ी है, स्तर बेहतर हुआ है? इस पर दो टूक राय देना संभव नहीं, क्योंकि संसार में कुछ भी एकांगी, एकदिशात्मक नहीं होता।

7

हिंदी साहित्य का बदलता स्वरूप

हिन्दी साहित्य पर अगर समुचित परिप्रेक्ष्य में विचार किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी साहित्य का इतिहास अत्यन्त विस्तृत व प्राचीन है। सुप्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ. हरदेव बाहरी के शब्दों में, हिन्दी साहित्य का इतिहास वस्तुतः वैदिक काल से आरम्भ होता है। यह कहना ही ठीक होगा कि वैदिक भाषा ही हिन्दी है। इस भाषा का दुर्भाग्य रहा है कि युग-युग में इसका नाम परिवर्तित होता रहा है। कभी 'वैदिक', कभी 'संस्कृत', कभी 'प्राकृत', कभी 'अपभ्रंश' और अब–हिन्दी। आलोचक कह सकते हैं कि 'वैदिक संस्कृत' और 'हिन्दी' में तो जमीन-आसमान का अन्तर है। पर ध्यान देने योग्य है कि हिब्रू, रूसी, चीनी, जर्मन और तमिल आदि जिन भाषाओं को 'बहुत पुरानी' बताया जाता है, उनके भी प्राचीन और वर्तमान रूपों में जमीन-आसमान का अन्तर है, पर लोगों ने उन भाषाओं के नाम नहीं बदले और उनके परिवर्तित स्वरूपों को 'प्राचीन', 'मध्यकालीन', 'आधुनिक' आदि कहा गया, जबकि 'हिन्दी' के सन्दर्भ में प्रत्येक युग की भाषा का नया नाम रखा जाता रहा।

हिन्दी भाषा के उद्‌भव और विकास के सम्बन्ध में प्रचलित धारणाओं पर विचार करते समय हमारे सामने हिन्दी भाषा की उत्पत्ति का प्रश्न दसवीं शताब्दी के आस-पास की प्राकृताभास भाषा तथा अपभ्रंश भाषाओं की ओर जाता है।

अपभ्रंश शब्द की व्युत्पत्ति और जैन रचनाकारों की अपभ्रंश कृतियों का हिन्दी से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए जो तर्क और प्रमाण हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थों में प्रस्तुत किये गये हैं उन पर विचार करना भी आवश्यक है। सामान्यत: प्राकृत की अन्तिम अपभ्रंश-अवस्था से ही हिन्दी साहित्य का आविर्भाव स्वीकार किया जाता है। उस समय अपभ्रंश के कई रूप थे और उनमें सातवीं-आठवीं शताब्दी से ही पद्य-रचना प्रारम्भ हो गयी थी।

साहित्य की दृष्टि से पद्यबद्ध जो रचनाएँ मिलती हैं वे दोहा रूप में ही हैं और उनके विषय, धर्म, नीति, उपदेश आदि प्रमुख हैं। राजाश्रित कवि और चारण नीति,श्रृंगार, शौर्य, पराक्रम आदि के वर्णन से अपनी साहित्य-रुचि का परिचय दिया करते थे। यह रचना-परम्परा आगे चलकर शौरसेनी अपभ्रंश या 'प्राकृताभास हिन्दी' में कई वर्षों तक चलती रही। पुरानी अपभ्रंश भाषा और बोलचाल की देशी भाषा का प्रयोग निरन्तर बढ़ता गया। इस भाषा को विद्यापति ने देशी भाषा कहा है, किन्तु यह निर्णय करना सरल नहीं है कि हिन्दी शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिए कब और किस देश में प्रारम्भ हुआ।

हिन्दी साहित्य के विकास के विभिन्न काल

हिन्दी साहित्य का आरम्भ आठवीं शताब्दी से माना जाता है। यह वह समय है जब सम्राट् हर्ष की मृत्यु के बाद देश में अनेक छोटे-छोटे शासन केन्द्र स्थापित हो गए थे जो परस्पर संघर्षरत रहा करते थे। विदेशी मुसलमानों से भी इनकी टक्कर होती रहती थी। धार्मिक क्षेत्र अस्त-व्यस्त थे। इन दिनों उत्तर भारत के अनेक भागों में बौद्ध पन्थ का प्रचार था। बौद्ध पन्थ का विकास कई रूपों में हुआ जिनमें से एक वज्रयान कहलाया। वज्रयानी तान्त्रिक थे और सिद्ध कहलाते थे। इन्होंने जनता के बीच उस समय की लोकभाषा में अपने मत का प्रचार किया। हिन्दी का प्राचीनतम साहित्य इन्हीं वज्रयानी सिद्धों द्वारा तत्कालीन लोकभाषा पुरानी हिन्दी में लिखा गया। इसके बाद नाथपन्थी साधुओं का समय आता है। इन्होंने बौद्ध, शांकर, तन्त्र, योग और शैव मतों के मिश्रण से अपना नया पन्थ चलाया जिसमें सभी वर्गों और वर्णों के लिए धर्म का एक सामान्य मत प्रतिपादित किया गया था। लोक प्रचलित पुरानी हिन्दी में लिखी इनकी अनेक धार्मिक रचनाएँ उपलब्ध हैं। इसके बाद जैनियों की रचनाएँ मिलती हैं। स्वयम्भू का "पउमचरिउ' अथवा रामायण आठवीं शताब्दी की रचना है। बौद्धों और नाथपंथियों की रचनाएँ मुक्तक और केवल धार्मिक हैं पर जैनियों की अनेक

रचनाएँ जीवन की सामान्य अनुभूतियों से भी संबद्ध हैं। इनमें से कई प्रबंधकाव्य हैं। इसी काल में अब्दुर्रहमान का काव्य "सन्देशरासक' भी लिखा गया जिसमें परवर्ती बोलचाल के निकट की भाषा मिलती है। इस प्रकार ग्यारहवीं शताब्दी तक पुरानी हिन्दी का रूप निर्मित और विकसित होता रहा।

आदिकाल (1050 ई. से 1375 ई.)

ग्यारहवीं सदी के लगभग देशभाषा हिन्दी का रूप अधिक स्फुट होने लगा। उस समय पश्चिमी हिन्दी प्रदेश में अनेक छोटे-छोटे राजपूत राज्य स्थापित हो गए थे। ये परस्पर अथवा विदेशी आक्रमणकारियों से प्रायः युद्धरत रहा करते थे। इन्हीं राजाओं के संरक्षण में रहने वाले चारणों और भाटों का राजप्रशस्तिमूलक काव्य वीरगाथा के नाम से अभिहित किया गया। इन वीरगाथाओं को रासो कहा जाता है। इनमें आश्रयदाता राजाओं के शौर्य और पराक्रम का ओजस्वी वर्णन करने के साथ ही उनके प्रेम-प्रसंगों का भी उल्लेख है। रासो ग्रन्थों में संघर्ष का कारण प्रायः प्रेम दिखाया गया है। इन रचनाओं में इतिहास और कल्पना का मिश्रण है। रासो वीरगीत (बीसलदेवरासो और आल्हा आदि) और प्रबंधकाव्य (पृथ्वीराजरासो, खुमानरासो आदि)—इन दो रूपों में लिखे गये। इन रासो ग्रन्थों में से अनेक की उपलब्ध प्रतियाँ चाहे ऐतिहासिक दृष्टि से सन्दिग्ध हों पर इन वीरगाथाओं की मौखिक परम्परा असंदिग्ध है। इनमें शौर्य और प्रेम की ओजस्वी और सरस अभिव्यक्ति हुई है।

इसी कालावधि में मैथिल कोकिल विद्यापति हुए जिनकी पदावली में मानवीय सौंदर्य ओर प्रेम की अनुपम व्यंजना मिलती है। कीर्तिलता और कीर्तिपताका इनके दो अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। अमीर खुसरो का भी यही समय है। इन्होंने ठेठ खड़ी बोली में अनेक पहेलियाँ, मुकरियाँ और दो सखुन रचे हैं। इनके गीतों, दोहों की भाषा ब्रजभाषा है। आदिकाल के प्रमुख कवि और उनकी रचनाएँ अक्तूबर 02, 2009 आज हम आदिकालीन कवियों की प्रमुख कृतियों का विवरण प्रस्तुत कर रहें हैं—1. अब्दुर्रहमान—संदेश रासक, 2. नरपति नाल्ह—बीसलदेव रासो (अपभ्रंश हिन्दी), 3. चन्दबरदायी—पृथ्वीराज रासो (डिंगल-पिंगल हिंदी), 4. दलपति विजय—खुमान रासो (राजस्थानी हिंदी), 5. जगनिक—परमाल रासो, 6. शार्गधर—हम्मीर रासो, 7. नल्ह सिंह—विजयपाल रासो, 8. जल्ह कवि—बुद्धि रासो, 9. माधवदास चारण—राम रासो, 10. देल्हण—गद्य सुकुमाल रासो, 11. श्रीधर—रणमल छन्द, पीरीछत रायसा, 12. जिनधर्मसूरि—स्थूलिभद्र रास, 13.

गुलाब कवि–करहिया कौ रायसो, 14. शालिभद्रसूरि–भरतेश्वर बाहुअलिरास, 15. जोइन्दु–परमात्म प्रकाश, 16. केदार–जयचन्द प्रकाश, 17. मधुकर कवि–जसमयंक चन्द्रिका, 18. स्वयम्भू–पउम चरिउ, 19. योगसार रूसानयधम्म दोहा, 20. हरप्रसाद शास्त्री–बौद्धगान और दोहा, 21. धनपाल–भवियत्त कहा, 22. लक्ष्मीधर–प्राकृत पैंगलम, 23. अमीर खुसरो–किस्सा चाहा दरवेश, खालिक बारी, 24. विद्यापति–कीर्तिलता, कीर्तिपताका, विद्यापति पदावली (मैथिली)।

भक्तिकाल (1375 से 1700 ई.)

तेरहवीं सदी तक धर्म के क्षेत्र में बड़ी अस्तव्यस्तता आ गई। जनता में सिद्धों और योगियों आदि द्वारा प्रचलित अन्धविश्वास फैल रहे थे, शास्त्रज्ञानसंपन्न वर्ग में भी रूढ़ियों और आडम्बर की प्रधानता हो चली थी। मायावाद के प्रभाव से लोकविमुखता और निष्क्रियता के भाव समाज में पनपने लगे थे। ऐसे समय में भक्ति आन्दोलन के रूप में ऐसा भारतव्यापी विशाल सांस्कृतिक आंदोलन उठा जिसने समाज में उत्कर्ष विधायक सामाजिक और वैयक्तिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की।

भक्ति आन्दोलन का आरम्भ दक्षिण के आलवार सन्तों द्वारा दसवीं सदी के लगभग हुआ। वहाँ शंकराचार्य के अद्वैतमत और मायावाद के विरोध में चार वैष्णव सम्प्रदाय खड़े हुए। इन चारों सम्प्रदायों ने उत्तर भारत में विष्णु के अवतारों का प्रचार-प्रसार किया। इनमें से एक के प्रवर्तक रामानुजाचार्य थे, जिनकी शिष्य परम्परा में आनेवाले रामानंद ने (पन्द्रहवीं सदी) उत्तर भारत में रामभक्ति का प्रचार किया। रामानन्द के राम ब्रह्म के स्थानापन्न थे जो राक्षसों का विनाश और अपनी लीला का विस्तार करने के लिए संसार में अवतीर्ण होते हैं। भक्ति के क्षेत्र में रामानन्द ने ऊँच-नीच का भेदभाव मिटाने पर विशेष बल दिया। राम के सगुण और निर्गुण दो रूपों को माननेवाले दो भक्तों–कबीर और तुलसी को इन्होंने प्रभावित किया। विष्णुस्वामी के शुद्धाद्वैत मत का आधार लेकर इसी समय वल्लभाचार्य ने अपना पुष्टिमार्ग चलाया। बारहवीं से सोलहवीं सदी तक पूरे देश में पुराणसम्मत कृष्णचरित्र के आधार पर कई सम्प्रदाय प्रतिष्ठित हुए, जिनमें सबसे ज्यादा प्रभावशाली वल्लभ का पुष्टिमार्ग था। उन्होंने शांकर मत के विरुद्ध ब्रह्म के सगुण रूप को ही वास्तविक कहा। उनके मत से यह संसार मिथ्या या माया का प्रसार नहीं है बल्कि ब्रह्म का ही प्रसार है, अतः सत्य है। उन्होंने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार माना और उसकी प्राप्ति के लिए भक्त का पूर्ण आत्मसमर्पण

आवश्यक बतलाया। भगवान् के अनुग्रह या पुष्टि के द्वारा ही भक्ति सुलभ हो सकती है। इस संप्रदाय में उपासना के लिए गोपीजनवल्लभ, लीलापुरुषोत्तम कृष्ण का मधुर रूप स्वीकृत हुआ। इस प्रकार उत्तर भारत में विष्णु के राम और कृष्ण अवतारों प्रतिष्ठा हुई।

इस प्रकार इन विभिन्न मतों का आधार लेकर हिन्दी में निर्गुण और सगुण के नाम से भक्ति काव्य की दो शाखाएँ साथ-साथ चलीं। निर्गुणमत के दो उपविभाग हुए–ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी। पहले के प्रतिनिधि कबीर और दूसरे के जायसी हैं। सगुणमत भी दो उपधाराओं में प्रवाहित हुआ–रामभक्ति और कृष्णभक्ति। पहले के प्रतिनिधि तुलसी हैं और दूसरे के सूरदास।

ज्ञानश्रयी शाखा के प्रमुख कवि कबीर पर तात्कालिक विभिन्न धार्मिक प्रवृत्तियों और दार्शनिक मतों का सम्मिलित प्रभाव है। उनकी रचनाओं में धर्मसुधारक और समाज सुधारक का रूप विशेष प्रखर है। उन्होंने आचरण की शुद्धता पर बल दिया। बाह्याडम्बर, रूढ़ियों और अंधविश्वासों पर उन्होंने तीव्र कशाघात किया। मनुष्य की क्षमता का उद्घोष कर उन्होंने निम्नश्रेणी की जनता में आत्मगौरव का भाव जगाया। इस शाखा के अन्य कवि रैदास, दादू हैं।

प्रेमाश्रयी धारा के सर्वप्रमुख कवि जायसी हैं जिनका "पदमावत' अपनी मार्मिक प्रेमव्यंजना, कथारस और सहज कला विन्यास के कारण विशेष प्रशंसित हुआ है। इनकी अन्य रचनाओं में "अखरावट' और "आखिरी कलाम' आदि हैं, जिनमें सूफी संप्रदायसंगत बातें हैं। इस धारा के अन्य कवि हैं कुतुबन, मंझन, उसमान, शेख नबी और नूर मुहम्मद आदि।

आज की दृष्टि से इस सम्पूर्ण भक्तिकाव्य का महत्त्व उसकी धार्मिकता से अधिक लोकजीवनगत मानवीय अनुभूतियों और भावों के कारण है। इसी विचार से भक्तिकाल को हिन्दी काव्य का स्वर्ण युग कहा जा सकता है।

रीतिकाल (1700 से 1900 ई.)

1700 ई. के आस-पास हिन्दी कविता में एक नया मोड़ आया। इसे विशेषत: तात्कालिक दरबारी संस्कृति और संस्कृत साहित्य से उत्तेजना मिली। संस्कृत साहित्य शास्त्र के कतिपय अंशों ने उसे शास्त्रीय अनुशासन की ओर प्रवृत्त किया। हिन्दी में 'रीति' या 'काव्य रीति' शब्द का प्रयोग काव्य शास्त्र के लिए हुआ था। इसलिए काव्य शास्त्रबद्ध सामान्य सृजन प्रवृत्ति और रस, अलंकार आदि के निरूपक बहुसंख्यक लक्षण ग्रन्थों को ध्यान में रखते हुए इस समय के

काव्य को 'रीति काव्य' कहा गया। इस काव्य कीशृंगारी प्रवृत्तियों की पुरानी परम्परा के स्पष्ट संकेत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, फारसी और हिन्दी के आदिकाव्य तथा कृष्णकाव्य कीशृंगारी प्रवृत्तियों में मिलते हैं।

रीतिकाव्य रचना का आरम्भ एक संस्कृतज्ञ ने किया। ये थे आचार्य केशवदास, जिनकी सर्वप्रसिद्ध रचनाएँ कविप्रिया, रसिकप्रिया और रामचंद्रिका हैं। केशव के कई दशक बाद चिन्तामणि से लेकर अठारहवीं सदी तक हिन्दी में रीतिकाव्य का अजस्र स्रोत प्रवाहित हुआ जिसमें नर-नारी-जीवन के रमणीय पक्षों और तत्सम्बन्धी सरस संवेदनाओं की अत्यन्त कलात्मक अभिव्यक्ति व्यापक रूप में हुई।

रीतिकाल के कवि राजाओं और रईसों के आश्रय में रहते थे। वहाँ मनोरंजन और कलाविलास का वातावरण स्वाभाविक था। बौद्धिक आनन्द का मुख्य साधन वहाँ उक्तिवैचित्र्य समझा जाता था। ऐसे वातावरण में लिखा गया साहित्य अधिकतर शृंगारमूलक और कलावैचित्र्य से युक्त था। पर इसी समय प्रेम के स्वच्छन्द गायक भी हुए जिन्होंने प्रेम की गहराइयों का स्पर्श किया है। मात्रा और काव्यगुण दोनों ही दृष्टियों से इस समय का नर-नारी-प्रेम और सौंदर्य की मार्मिक व्यंजना करनेवाला काव्य साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

रीति काव्य मुख्यत: मांसलशृंगार का काव्य है। इसमें नर-नारीजीवन के स्मरणीय पक्षों का सुंदर उद्घाटन हुआ है। अधिक काव्य मुक्तक शैली में है, पर प्रबन्ध काव्य भी हैं। इन दो सौ वर्षों में शृंगार काव्य का अपूर्व उत्कर्ष हुआ। पर धीरे-धीरे रीति की जकड़ बढ़ती गई और हिन्दी काव्य का भावक्षेत्र संकीर्ण होता गया। आधुनिक युग तक आते-आते इन दोनों कमियों की ओर साहित्यकारों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।

उन्नीसवीं शताब्दी

यह आधुनिक युग का आरम्भ काल है जब भारतीयों का यूरोपीय संस्कृति से सम्पर्क हुआ। भारत में अपनी जड़ें जमाने के काम में अंग्रेजी शासन ने भारतीय जीवन को विभिन्न स्तरों पर प्रभावित और आन्दोलित किया। नई परिस्थितियों के धक्के से स्थितिशील जीवनविधि का ढाँचा टूटने लगा। एक नए युग की चेतना का आरम्भ हुआ। संघर्ष और सामंजस्य के नए आयाम सामने आए।

नये युग के साहित्य सृजन की सर्वोच्च सम्भावनाएँ खड़ी बोली गद्य में निहित थीं, इसलिए इसे गद्य-युग भी कहा गया है। हिन्दी का प्राचीन गद्य

राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा में मिलता है पर वह साहित्य का व्यापक माध्यम बनने में अशक्त था। खड़ीबोली की परम्परा प्राचीन है। अमीर खुसरो से लेकर मध्यकालीन भूषण तक के काव्य में इसके उदाहरण बिखरे पड़े हैं। खड़ी बोली गद्य के भी पुराने नमूने मिले हैं। इस तरह का बहुत सा गद्य फारसी और गुरुमुखी लिपि में लिखा गया है। दक्षिण की मुसलमान रियासतों में "दक्खिनी' के नाम से इसका विकास हुआ। अठारहवीं सदी में लिखा गया रामप्रसाद निरंजनी और दौलतराम का गद्य उपलब्ध है। पर नयी युगचेतना के संवाहक रूप में हिन्दी के खड़ी बोली गद्य का व्यापक प्रसार उन्नीसवीं सदी से ही हुआ। कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज में, नवागत अंग्रेज अफसरों के उपयोग के लिए, लल्लू लाल तथा सदल मिश्र ने गद्य की पुस्तकें लिखकर हिन्दी के खड़ी बोली गद्य की पूर्वपरम्परा के विकास में कुछ सहायता दी। मुंशी सदासुखलाल और इंशा अल्ला खाँ की गद्य रचनाएँ इसी समय लिखी गई। आगे चलकर प्रेस, पत्रपत्रिकाओं, ईसाई पन्थप्रचारकों तथा नवीन शिक्षा संस्थाओं से हिन्दी गद्य के विकास में सहायता मिली। बंगाल, पंजाब, गुजरात आदि विभिन्न प्रान्तों के निवासियों ने भी इसकी उन्नति और प्रसार में योग दिया। हिन्दी का पहला समाचारपत्र "उदन्त मार्तण्ड' 1826 ई. में कलकत्ते से प्रकाशित हुआ। राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मण सिंह हिन्दी गद्य के निर्माण और प्रसार में अपने अपने ढंग से सहायक हुए। आर्यसमाज और अन्य सांस्कृतिक आन्दोलनों ने भी आधुनिक गद्य को आगे बढ़ाया।

गद्य साहित्य की विकासमान परम्परा उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध से अग्रसर हुई। इसके प्रवर्तक आधुनिक युग के प्रवर्तक और पथप्रदर्शक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे जिन्होंने साहित्य का समकालीन जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया। यह संक्रान्ति और नवजागरण का युग था। अँगरेजों की कूटनीतिक चालों और आर्थिक शोषण से जनता संत्रस्त और क्षुब्ध थी। समाज का एक वर्ग पाश्चात्य संस्कारों से आक्रान्त हो रहा था तो दूसरा वर्ग रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था। इसी समय नई शिक्षा का आरम्भ हुआ और सामाजिक सुधार के आन्दोलन चले। नवीन ज्ञान विज्ञान के प्रभाव से नवशिक्षितों में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित हुआ जो अतीत की अपेक्षा वर्तमान और भविष्य की ओर विशेष उन्मुख था। सामाजिक विकास में उत्पन्न आस्था और जाग्रत समुदायचेतना ने भारतीयों में जीवन के प्रति नया उत्साह उत्पन्न किया। भारतेन्दु के समकालीन साहित्य में विशेषत: गद्य साहित्य में तत्कालीन वैचारिक और भौतिक परिवेश की विभिन्न

अवस्थाओं की स्पष्ट और जीवन्त अभिव्यक्ति हुई। इस युग की नवीन रचनाएँ देशभक्ति और समाज सुधार की भावना से परिपूर्ण हैं। अनेक नई परिस्थितियों की टकराहट से राजनीतिक और सामाजिक व्यंग की प्रवृत्ति भी उद्‌बुद्ध हुई। इस समय के गद्य में बोलचाल की सजीवता है। लेखकों के व्यक्तित्व से सम्पृक्त होने के कारण उसमें पर्याप्त रोचकता आ गई है। सबसे अधिक निबन्ध लिखे गए जो व्यक्ति प्रधान और विचार प्रधान तथा वर्णनात्मक भी थे। अनेक शैलियों में कथा साहित्य भी लिखा गया, अधिकतर शिक्षा प्रधान। पर यथार्थवादी दृष्टि और नए शिल्प की विशिष्टता श्रीनिवास दास के "परीक्षागुरु' में ही है। देवकीनन्दन खत्री का तिलस्मी उपन्यास 'चंद्रकांता' इसी समय प्रकाशित हुआ। पर्याप्त परिमाण में नाटकों और सामाजिक प्रहसनों की रचना हुई। भारतेंदु, प्रताप नारायण मिश्र, श्रीनिवास दास, आदि प्रमुख नाटककार हैं। साथ ही भक्ति और शृंगार की बहुत सी सरस कविताएँ भी निर्मित हुई। पर जिन कविताओं में सामाजिक भावों की अभिव्यक्ति हुई वे ही नये युग की सृजनशीलता का आरम्भिक आभास देती हैं। खड़ी बोली के छिटफुट प्रयोगों को छोड़ शेष कविताएँ ब्रजभाषा में लिखी गयीं। वास्तव में नया युग इस समय के गद्य में ही अधिक प्रतिफलित हो सका।

बीसवीं शताब्दी

इस कालावधि की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ दो हैं–एक तो सामान्य काव्यभाषा के रूप में खड़ी बोली की स्वीकृति और दूसरे हिन्दी गद्य का नियमन और परिमार्जन। इस कार्य में सर्वाधिक सशक्त योग सरस्वती सम्पादक महावीर प्रसाद द्विवेदी का था। द्विवेदी जी और उनके सहकर्मियों ने हिन्दी गद्य की अभिव्यक्ति क्षमता को विकसित किया। निबन्ध के क्षेत्र में द्विवेदी जी के अतिरिक्त बालमुकुन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पूर्णसिंह, पद्‌मसिंह शर्मा जैसे एक से एक सावधान, सशक्त और जीवन्त गद्यशैलीकार सामने आए। उपन्यास अनेक लिखे गए पर उसकी यथार्थवादी परम्परा का उल्लेखनीय विकास न हो सका। यथार्थपरक आधुनिक कहानियाँ इसी काल में जनमी और विकासमान हुई। गुलेरी, कौशिक आदि के अतिरिक्त प्रेमचन्द और प्रसाद की भी आरम्भिक कहानियाँ इसी समय प्रकाश में आई। नाटक का क्षेत्र अवश्य सूना सा रहा। इस समय के सबसे प्रभावशाली समीक्षक द्विवेदी जी थे जिनकी संशोधनवादी और मर्यादानिष्ठ आलोचना ने अनेक समकालीन साहित्य को पर्याप्त प्रभावित किया।

मिश्रबन्धु, कृष्णबिहारी मिश्र और पद्मसिंह शर्मा इस समय के अन्य समीक्षक हैं पर कुल मिलाकर इस समय की समीक्षा बाह्यपक्षप्रधान ही रही।

सुधारवादी आदर्शों से प्रेरित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने "प्रियप्रवास' में राधा का लोकसेविका रूप प्रस्तुत किया और खड़ीबोली के विभिन्न रूपों के प्रयोग में निपुणता भी प्रदर्शित की। मैथिलीशरण गुप्त ने "भारत भारती' में राष्ट्रीयता और समाज सुधार का स्वर ऊँचा किया और "साकेत' में उर्मिला की प्रतिष्ठा की। इस समय के अन्य कवि द्विवेदी जी, श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त, नाथूराम शर्मा 'शंकर', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' आदि हैं। ब्रजभाषा काव्य परंपरा के प्रतिनिधि रत्नाकर और सत्यनारायण कविरत्न हैं। इस समय खड़ी बोली काव्यभाषा के परिमार्जन और सामयिक परिवेश के अनुरूप रचना का कार्य सम्पन्न हुआ। नए काव्य का अधिकांश विचारपरक और वर्णनात्मक है।

सन् 1920-40 के दो दशकों में आधुनिक साहित्य के अन्तर्गत वैचारिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का अनेक रूप उत्कर्ष दिखाई पड़ा। सर्वाधिक लोकप्रियता उपन्यास और कहानी को मिली। कथासाहित्य में घटनावैचित्य की जगह जीते जागते स्मरणीय चरित्रों की सृष्टि हुई। निम्न और मध्यवर्गीय समाज के यथार्थपरक चित्र व्यापक रूप में प्रस्तुत किए गए। वर्णन की सजीव शैलियों का विकास हुआ। इस समय के सर्वप्रमुख कथाकार प्रेमचन्द हैं। वृन्दावनलाल वर्मा के ऐतिहासिक उपन्यास भी उल्लेख्य है। हिन्दी नाटक इस समय जयशंकर प्रसाद के साथ सृजन के नवीन स्तर पर आरोहण करता है। उनके रोमांटिक ऐतिहासिक नाटक अपनी जीवन्त चारित्र्यसृष्टि, नाटकीय संघर्षों की योजना और संवेदनीयता के कारण विशेष महत्त्व के अधिकारी हुए। कई अन्य नाटककार भी सक्रिय दिखाई पड़े। हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में रामचन्द्र शुक्ल ने सूर, तुलसी और जायसी की सूक्ष्म भावस्थितियों और कलात्मक विशेषताओं का मार्मिक उद्घाटन किया और साहित्य के सामाजिक मूल्यों पर बल दिया। अन्य आलोचक है श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र तथा डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी।

काव्य के क्षेत्र में यह छायावाद के विकास का युग है। पूर्ववर्ती काव्य वस्तुनिष्ठ था, छायावादी काव्य भावनिष्ठ है। इसमें व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों का प्राधान्य है। स्थूल वर्णन विवरण के स्थान पर छायावादी काव्य में व्यक्ति की स्वच्छन्द भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति हुई। स्थूल तथ्य और वस्तु की अपेक्षा बिम्बविधायक कल्पना छायावादियों को अधिक प्रिय है। उनकी सौंदर्यचेतना विशेष विकसित है। प्रकृति सौंदर्य ने उन्हें विशेष आकृष्ट किया।

वैयक्तिक संवेगों की प्रमुखता के कारण छायावादी काव्य मूलतः प्रगीतात्मक है। इस समय खड़ी बोली काव्यभाषा की अभिव्यक्ति क्षमता का अपूर्व विकास हुआ। जयशंकर प्रसाद, माखनलाल, सुमित्रानन्दन पन्त, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला', महादेवी, नवीन और दिनकर छायावाद के उत्कृष्ट कवि हैं।

सन् 1940 के बाद छायावाद की संवेगनिष्ठ, सौंदर्यमूलक और कल्पनाप्रिय व्यक्तिवाद प्रवृत्तियों के विरोध में प्रगतिवाद का संघबद्ध आन्दोलन चला जिसकी दृष्टि समाजबद्ध, यथार्थवादी और उपयोगितावादी है। सामाजिक वैषम्य और वर्ग संघर्ष का भाव इसमें विशेष मुखर हुआ। इसने साहित्य को सामाजिक क्रांति के अस्त्र के रूप में ग्रहण किया। अपनी उपयोगितावादी दृष्टि की सीमाओं के कारण प्रगतिवादी साहित्य, विशेषतः कविता में कलात्मक उत्कर्ष की सम्भावनाएँ अधिक नहीं थीं, फिर भी उसने साहित्य के सामाजिक पक्ष पर बल देकर एक नई चेतना जाग्रत की।

प्रगतिवादी आंदोलन के आरम्भ के कुछ ही दिन बाद नए मनोविज्ञान या मनोविश्लेषणशास्त्र से प्रभावित एक और व्यक्तिवादी प्रवृत्ति साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय हुई थी जिसे सन् 1943 के बाद प्रयोगवाद नाम दिया गया। इसी का संशोधित रूप वर्तमानकालीन नई कविता और नई कहानियाँ हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि द्वितीय महायुद्ध और उसके उत्तरकालीन साहित्य में जीवन की विभीषिका, कुरूपता और असंगतियों के प्रति असन्तोष तथा क्षोभ ने कुछ आगे पीछे दो प्रकार की प्रवृत्तियों को जन्म दिया। एक का नाम प्रगतिवाद है, जो मार्क्स के भौतिकवादी जीवनदर्शन से प्रेरणा लेकर चला, दूसरा प्रयोगवाद है, जिसने परंपरागत आदर्शों और संस्थाओं के प्रति अपने असंतोष की तीव्र प्रतिक्रियाओं को साहित्य के नवीन रूपगत प्रयोगों के माध्यम से व्यक्त किया। इसपर नए मनोविज्ञान का गहरा प्रभाव पड़ा।

प्रगतिवाद से प्रभावित कथाकारों में यशपाल, उपेंद्रनाथ अश्क, अमृतलाल नागर और नागार्जुन आदि विशिष्ट हैं। आलोचकों में रामविलास शर्मा, नामवर सिंह, विजयदेव नारायण साही प्रमुख हैं। कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि के नाम प्रसिद्ध हैं। निबन्ध विधा में इस दौर में आछार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, विद्या निवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने विशेष ख्याति अर्जित की।

नए मनोविज्ञान से प्रभावित प्रयोगों के लिए सचेष्ट कथाकारों में अज्ञेय प्रमुख हैं। मनोविज्ञान से गंभीर रूप में प्रभावित इलाचंद्र जोशी और जैनेंद्र हैं। इन

लेखकों ने व्यक्तिमन के अवचेतन का उद्‌घाटन कर नया नैतिक बोध जगाने का प्रयत्न किया। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने कथा के परम्परागत ढाँचे को तोड़कर शैलीशिल्प सम्बन्धी नए प्रयोग किए। परवर्ती लेखकों और कवियों में वैयक्तिक प्रतिक्रियाएँ अधिक प्रखर हुईं। समकालीन परिवेश से वे पूर्णतः संसक्त हैं। उन्होंने समाज और साहित्य की मान्यताओं पर गहरा प्रश्नचिह्न लगा दिया है। व्यक्तिजीवन की लाचारी, कुण्ठा, आक्रोश आदि व्यक्त करने के साथ ही वे वैयक्तिक स्तर पर नए जीवनमूल्यों के अन्वेषण में लगे हुए हैं। उनकी रचनाओं में एक ओर सार्वभौम संत्रास और विभीषिका की छटपटाहट है तो दूसरी ओर व्यक्ति के अस्तित्व की अनिवार्यता और जीवन की संभावनाओं को रेखांकित करने का उपक्रम भी। हमारा समकालीन साहित्य आत्यंतिक व्यक्तिवाद से ग्रस्त है और यह उसकी सीमा है। पर उसका सबसे बड़ा बल उसकी जीवनमयता है जिसमें भविष्य की सशक्त संभावनाएँ निहित हैं।

हिन्दी की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

द्विवेदीयुगीन काव्यधारा

भारतेंदुयुग के अंत में (1886-87) यह काव्यभाषा खड़ी हो या ब्रज, इस विवाद में श्रीधर पाठक के एकांतवासी योगी (1886 ई.) ने खड़ी बोली की काव्योपयुक्तता सिद्ध कर दी। अतः द्विवेदीयुगीन द्वितीय काव्यधारा में (1900-1920) खड़ी बोली में मुक्तक और प्रबंधकाव्यों की रचना हुई। रंग में भंग, जयद्रथवध, (1912), प्रियप्रवास (1912), रामचरितचिंतामणि, पथिक (1917), मिलन (1925) आदि प्रबंध काव्यों में प्राचीन, नवीन वीरों का चरित गायन हुआ। "प्रियप्रवास" में भगवान कृष्ण को जननायक रूप में चित्रित किया गया और पथिक में देशभक्ति की अनुपम झाँकी प्रस्तुत की गई। रीतिकालीन नायिका भेद, उद्दाम शृंगार, उद्दीपनपरक प्रकृति चित्रण और कवित्त, सवैयों के स्थान पर, आर्यसमाज और नवराष्ट्र जागरण के कारण मर्यादामय प्रेम, प्रकृति के आलंबनगत चित्रण, नवीन गीतिका, हरगीतिका आदि छंदों, संस्कृत के वर्णवृत्तों का प्रयोग, समाज सुधारात्मक तथा इतिवृत्तात्मक पद्यों की रचना, इस युग की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय, बालमुकुंद गुप्त, सियारामशरण गुप्त, नाथूराम शर्मा "शंकर", अयोध्यासिंह उपाध्याय, रूपनारायण पांडेय, लोचन प्रसाद पांडेय और श्रीधर पाठक के प्रयत्न

से खड़ी बोली की काव्योपयुक्तता का निर्णय हो गया। प्रियप्रवास और भारतभारती इस युग की विशिष्ट कृतियाँ मानी जाती हैं। शैली की दृष्टि से यह युग अभिधावादी ही रहा, उद्‌गार और उद्‌बोधनात्मक काव्य में सूक्ष्म कला का विकास संभव न हो सका।

छायावाद तथा रहस्यवाद

छायावाद और रहस्यवाद (1920-35) तृतीय काव्यधारा है। 19वीं और 20वीं शताब्दी में अंग्रेजी शिक्षा संस्थाओं के कारण अंग्रेजी के स्वच्छंदतवादी काव्य का प्रभाव प्रत्यक्षत: और अप्रत्यक्षत: बँगला के माध्यम से हिंदी काव्य पर पड़ा। अत: तृतीय धारा के छायावादी तथा रहस्यवादी काव्य में द्विवेदीयुगीन स्थूल मर्यादावाद, प्रवचनात्मकता और विवरणात्मक प्रकृति चित्रण के स्थान पर स्वच्छंद प्रेम की पुकार, प्रेयसी का देवीकरण, अंतर्राष्ट्रीयता और विश्व मानववाद, प्रकृति और प्रेयसी के माध्यम से निजी आशा निराशाओं का वर्णन, प्रकृति पर चेतना का आरोप, सौंदर्य अनुसंधान, अलौकिक से प्रेम के कारण द्विवेदीयुगीन स्थूल संघर्ष से पलायन, गीतात्मकता, लक्षण, विशेषणविपर्यय तथा भाषा का कोमलीकरण प्रत्यक्ष और प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। प्रसाद (आँसू, लहर, झरना, कामायनी), सुमित्रानंदन पंत (पल्लव, गुंजन), निराला (जुही की कली, गीतिका के गीत आदि) और महादेवी ने परोक्ष सत्ता को प्रेम का विषय बनाकर प्रकृति में उसके आभास, आत्म-निवेदन और संयोग-वियोग की कलात्मक अभिव्यक्तियों द्वारा काव्य को अलंकृत, लाक्षणिक, गीत्यात्मक और सूक्ष्म बनाया। द्विवेदीयुगीन राष्ट्रीयता की गूँज इन कवियों में यत्र-तत्र मिलती है, विशेषकर निराला के बादल राग, जागो फिर एक बार आदि कृतियों में। पुनर्जागरण का पौरुषपरक रूप निराला में (राम की शक्तिपूजा) और सांस्कृतिक रूप उपनिषदों के ब्रह्मवादी दर्शन में मिला। कामायनी तृतीय धारा की सर्वोत्कृष्ट कृति है जिसमें रहस्यमय सत्ता की प्राप्ति के आवरण में पुरुष नारी, राजा प्रजा, प्रकृति पुरुष और मानवीय वृत्तियों में सामरस्य स्थापित करने का संदेश प्रस्तुत किया गया। तृतीय धारा में निराला ने मुक्त छंदों, पंत ने संस्कृत वर्णवृत्तों के स्थान पर हिंदी के छंदों, महादेवी और प्रसाद ने गेय गीतों का प्रयोग किया। प्रकृति और प्रेम के भव्य, मार्मिक चित्रण इस युग की विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। अंग्रेजी के शैली, कीट्स और बँगला के कवींद्र रवींद्र से प्रभावित होने पर हिंदी का छायावादी रहस्यवादी काव्य अपनी विशिष्टता की दृष्टि से मौलिक और मार्मिक है। कामायनी में

चिंता, आशा, वासनादि मनोवृत्तियों, निराला के तुलसीदास और राम की शक्तिपूजा में मानसिक अंतर्द्वंद्वों, महादेवी के गीतों में मीरा जैसी विरह वेदना और पंत के प्रकृति चित्रण में सौंदर्य-विधान इतना आकर्षक हुआ है कि यह युग हिंदी काव्य का स्वर्णयुग कहा जाता है। भाषा काशृंगार और सांकेतिक शक्ति का विकास अपनी चरम सीमा पर इसी युग में पहुँचा।

हालावाद तथा मांसलवाद

छायावाद के उत्तरकाल (1930 के पश्चात्) में छायावादी सूक्ष्म, लाक्षणिक रहस्यवादी अभिव्यक्ति के विरुद्ध हालावाद (बच्चन की मधुशाला, मधुबाला 1933-35) और मांसलवाद (अंचल की अपराजिता 1930, मधूलिका आदि) का प्रवर्तन हुआ। बच्चन की हालावादी रचनाओं में फारसी उर्दू के सूफियाना काव्य की मस्ती, दीवानगी, मर्यादावाद का विरोध और भोगवादी दृष्टिकोण व्यंजित हुआ है। मांसलवाद में वासना की घोषणा ही प्रधान होती गई। नरेंद्र शर्मा (प्रवासी के गीत) में क्षयी रोमांसवाद की निराशा और भगवतीचरण वर्मा में आत्मविज्ञप्ति अधिक मिलती है। हालावाद और मांसलवाद एक ओर तो द्विवेदीयुगीन संयमवाद और परंपरागत नैतिकतावाद के विरुद्ध था और दूसरी ओर इसमें छायावाद की अस्पष्ट, धूमिल, गहन प्रेमानुभूति के स्थान पर अभिधामय आत्मविज्ञान अधिक था। उर्दू की "तरजे अदायगी" की ये रचनाएँ युवकों में अधिक प्रिय हुई।

प्रगतिवाद

खड़ी बोली की चतुर्थ धारा प्रगतिवाद (1936 के पश्चात्) है। छायावादयुग में ही रूसी राज्यक्रांति के प्रभाववश साम्यवादी धारणाओं का प्रचार हो चुका था। 1935-36 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना हुई। प्रगतिवाद कवि मार्क्सवाद से प्रभावित कवि थे। पंत जी के युगांत, युगवाणी, निराला की "वह तोड़ती पत्थर," "बादलरांग", "कुकुरमुत्ता", "अणिमा", "नए पत्ते" आदि द्वारा इसका रूप स्पष्ट हुआ। यह आंदोलन सामंतवादी–पूँजीवादी तत्वों और साहित्य क्षेत्र में प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध क्रांति लेकर उपस्थित हुआ। जनता के दारिद्र्य, पूँजीपतियों के विरुद्ध आक्रोश, इतिहास, धर्म, संस्कृति, कला की भौतिकवादी व्याख्या, ब्रह्मवाद का विरोध तथा छायावादी अलंकृत शैली के विरुद्ध अभिधावादी शैली का प्रयोग इस धारा की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

छायावाद में शृंगार तथा प्रगतिवाद में करुण, वीर, रौद्र रसों को अधिक अभिव्यक्ति मिली। किंतु द्विवेदीयुग के सदृश इस युग में पुनः स्थूलता का आगमन हुआ, इसमें कला कम गर्जन तर्जन, उद्‌गार अधिक मिलते हैं। रांगेय राघव (पिघलते पत्थर, आक्रमण), दिनकर (हुंकार), केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगल सिंह सुमन (जीवन के गान), नागार्जुन, भगवतीचरण वर्मा (भैंसागाड़ी) शमशेर, पंत जी (ग्राम्या), गजानन, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, उदयशंकर भट्ट, अंचल, नरेंद्र शर्मा आदि ने प्रगतिवादी काव्य की सृष्टि की। प्रेमचंद का "हंस" इस साहित्य का मुखपत्र था। प्रगतिवादियों ने छायावादियों के विरुद्ध जीवन के यथार्थ को वाणी दी। प्रकृति को रेमानी दृष्टि से न देखकर उसे जीवन की वास्तविकता के संदर्भ में रखकर देखा है। प्रगतिवादी काव्य में व्यंग्य का सर्वाधिक विकास हुआ है। प्रगतिवाद आज भी एक जीवंत काव्यधारा है, उसने अब हुंकारात्मक रूप छोड़कर अधिक सूक्ष्म और कलामय रूप अपनाया है।

प्रयोगवाद

खड़ी बोली काव्य की पंचम धारा प्रयोगवाद कहलाती है (1943 ई. के पश्चात्)। स. ही. वा. अज्ञेय ने, जो प्रगतिवादी भी रह चुके थे, 1943 में प्रथम तारसप्तक में मुख्यतः प्रगतिवादी कवियों की नए ढंग की प्रयोगात्मक रचनाएँ प्रकाशित की। 1951 में द्वितीय सप्तक प्रकाशित हुआ। इसके पश्चात् इस धारा को "नई कविता" नाम मिला। प्रयाग की "नई कविता", हैदराबाद की "कल्पना" और दिल्ली की "कृति" नामक पत्रिकाओं के अतिरिक्त अज्ञेय, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, प्रभाकर माचवे, डा. देवराज, शंभुनाथ सिंह, जगदीश गुप्त, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, शमशेर, बालकृष्ण राव, लक्ष्मीकांत वर्मा आदि के काव्य संग्रहों और स्फुट रचनाओं से प्रयोगवाद या नई कविता का रूप स्पष्ट हुआ। यह काव्य मुख्यतः छायावादी रोमानी दृष्टि और अलंकृति तथा प्रगतिवादी अनगढ़ता के विरुद्ध "रूपवादी आंदोलन है। छायावाद का प्रेरणा स्रोत अंग्रेजी का रोमांटिक काव्य और प्रयोगवाद का प्रेरणा स्रोत यूरोप का प्रतीकवाद (फ्रांस), अतियथार्थवाद, अस्तित्ववाद तथा आधुनिक चित्रकलावाद था।

प्रगतिशील प्रयोगवादियों पर यूरोपीय प्रभाव केवल शिल्प की दृष्टि से ही है किंतु प्रयोगवादी कथ्य के विरोधी प्रयोगवादियों पर उक्त प्रभाव अधिक घनीभूत है, इसमें व्यक्ति की अस्तित्व आशंका, अनास्था, अवसाद, निराशा, भ्रमनाश, सामाजिकता के विरुद्ध व्यक्तिवाद, महत्ता के स्थान पर "लघुतावाद"

अवचेतन स्थित कुंठा, आदि को प्रतीकात्मक और बिंबात्मक शैली में व्यक्त किया गया है। "रस" के स्थान पर बुद्धिवाद, कथ्य को प्रतीकों और बिंबों द्वारा यथावत् प्रस्तुत करने की चेष्टा, भाषा के नवीन प्रयोग, वार्तालापात्मक और वक्तव्यपरक शैली पर बल, गूढ़ और अब तक अछूते विषयों की अभिव्यक्ति इस धारा की विशेषताएँ हैं। प्राचीन आख्यानों का नवीन प्रश्नों को प्रस्तुत करने के लिए प्रयोग किया गया है। छंदों की दृष्टि से यह धारा पूर्ण स्वच्छंद है। "छंदगंध" मात्र ही इस नए काव्य में अधिक है। शब्दलय के स्थान पर अर्थलय के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है, यद्यपि बहुत से कवि गद्यात्मकता के साथ-साथ मुक्त छंदों का भी प्रयोग करते हैं। चित्रकला के प्रभाववाद, भविष्यवाद, यथादृश्यवाद तथा टी. एस. इलियट, एजरा पौंड, बॅदलेयर, मलामें, रिल्के, रिंबों आदि कवियों की कला से नई कविता अत्यधिक प्रभावित है। लोकजीवन से प्रभावित कविताएँ भी लिखी गई हैं। घोर व्यक्तिवाद, क्षण में अनुभूत अनुभूतियों की बिंबात्मक अभिव्यक्ति से जहाँ नवीनता की सृष्टि अधिक हुई हैं–विशेषकर नूतन अप्रस्तुत विधान के क्षेत्र में, वहीं भाषा की अव्यवस्थता, अभिव्यक्ति की अस्पष्टता, धूमिल संकेतात्मकता, भावदारिर्द्य, छंदद्रोह और बौद्धिक आग्रह इस काव्य के दोष हैं।

नवगीतवाद

खड़ी बोली की षष्ठ धारा है नवगीतवाद। बच्चन, नीरज, वीरेंद्र मिश्र, शंभुनाथ सिंह, रंग, रमानाथ अवस्थी, ठाकुर प्रसाद सिह, अंचल, सुरेंद्र तिवारी, सोम, कमलेश, केदारनाथ सिंह, गिरधर गोपाल, रामावतार त्यागी, गिरजाकुमार माथुर, कैलाश वाजपेयी, राही, सुमन और नेपाली आदि गीतकारों ने प्रेम, प्रकृति और समाज के विषय में नूतन अप्रस्तुत विधान द्वारा पदार्थ छवियों और भावनाओं को वाणी दी है। अपेक्षाकृत सरल और स्पष्ट भाषा का प्रयोग, अहंसापेक्ष अनुभूतियों को अहंनिरपेक्ष करने का चाव और कवि सम्मेलनों में अधिकाधिक जनप्रियता पाने की इच्छा, इन कवियों की विशेषता है। नई कविता की परिपाटी पर "नए गीत" भी आज के काव्य की उपलब्धि है।

इन नवीन धाराओं के अतिरिक्त परंपरागत शैली में प्रबंध काव्य भी लिखे जाते हैं। तक्षशिला (उदयशंकर भट्ट), नूरजहाँ, (गुरुभक्त सिंह), उर्मिला (नवीन), सिद्धार्थ और वर्द्धमान (अनूप शर्मा), दैत्यवंश (हरदयालु सिंह), छत्रसाल (लालधर त्रिपाठी "प्रवासी") पार्वती (रामानंद तिवारी) आदि ऐसे ही

काव्य हैं। इधर गांधी, प्रेमचंद, मीरा आदि पर भी प्रबंध काव्य लिखे गए हैं। दिनकर की "उर्वशी" पुरानी शैली में एक उल्लेखनीय उपलब्धि है जिसमें कामायनी और पार्वती के समान मानवमन के शाश्वत अंतर्विरोध का आकर्षक वर्णन है। किंतु नवीनतावादियों की तुलना में परंपरागत प्रबंध काव्यों का सम्मान कम हो रहा है।

आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास

हिंदी गद्य के आरंभ के संबंध में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। कुछ 10वीं शताब्दी मानते हैं तो कुछ 11 वीं शताब्दी, कुछ 13 शताब्दी। राजस्थानी एवं ब्रज भाषा में हमें गद्य के प्राचीनतम प्रयोग मिलते हैं। राजस्थानी गद्य की समय सीमा 11वीं शताब्दी से 14वीं शताब्दी तथा ब्रज गद्य की सीमा 14वीं शताब्दी से 16वीं शताब्दी तक मानी जाती है। ऐसा माना जाता है कि 10वीं शताब्दी से 13वीं शताब्दी के मध्य ही हिंदी गद्य की शुरुआत हुई थी। खड़ी बोली के प्रथम दर्शन अकबर के दरबारी कवि गंग द्वारा रचित चंद छंद बरनन की महिमा में होते हैं। अध्ययन की दृष्टि से हिंदी गद्य साहित्य के विकास को इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है।

(1) पूर्व भारतेंदु युग(प्राचीन युग)– 13 वीं शताब्दी से 1868 ईस्वी तक।

(2) भारतेंदु युग(नवजागरण काल)– 1868ईस्वी से 1900 ईस्वी तक।

(3) द्विवेदी युग– 1900 ईस्वी से 1922 ईस्वी तक।

(4) शुक्ल युग(छायावादी युग)– 1922 ईस्वी से 1938 ईस्वी तक

(5) शुक्लोत्तर युग(छायावादोत्तर युग)– 1938 ईस्वी से अब तक।

19वीं सदी से पहले का हिन्दी गद्य

हिन्दी गद्य के उद्‌भव को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान हिन्दी गद्य की शुरुआत 19वीं सदी से ही मानते हैं, जबकि कुछ अन्य हिन्दी गद्य की परम्परा को 11वीं-12वीं सदी तक ले जाते हैं। आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी गद्य की निम्न परम्पराएं मिलती हैं-

(1) राजस्थानी में हिन्दी गद्य–राजस्थानी गद्य के प्राचीनतम रुप 10 वीं शताब्दी के दान पत्रों, पट्टे-परवानों, टीकाओं व अनुवाद ग्रंथों में देखने को मिलता है।आराधना, अतियार, बाल शिक्षा, तत्त्व विचार, धनपाल कथा आदि रचनाओं में राजस्थानी गद्य के प्राचीनतम प्रयोग दृष्टिगत होते हैं।

(2) मैथिली में हिन्दी गद्य–कालक्रम की दृष्टि से राजस्थानी के बाद मैथिली में हिन्दी गद्य के प्रयोग दृष्टिगत होते हैं। मैथिली में प्राचीन हिन्दी गद्य ग्रन्थ ज्योतिरिश्वर की रचना वर्ण रत्नाकर है। इसका रचना काल 1324 ईस्वी सन् है।

(3) ब्रजभाषा में हिन्दी गद्य–ब्रजभाषा में हिन्दी गद्य की प्राचीनतम रचनाएँ 1513 ईस्वी से पूर्व की प्रतीत नहीं होती। इनमें गोस्वामी विट्ठलनाथ कृत " श्रृंगार रस मंडन", "यमुनाष्टाक", "नवरत्न सटीक", चतुर्भुज दास कृत षड्ऋतु वार्ता", गोकुल नाथ कृत "चौरासी वैष्णवन की वार्ता", "दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता "गोस्वामी हरिराम कृत "कृष्णावतार स्वरूप निर्णय", "सातों स्वरूपों की भावना", "द्वादश निकुंज की भावना", नाभादास कृत "अष्टयाम", बैकुंठ मणि शुक्ल कृत "अगहन माहात्म्य", "वैशाख माहात्म्य" तथा लल्लू लाल कृत "माधव विलास" विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(4) दक्खिनी में हिन्दी गद्य–गेसुदराज कृतष्मेराजुलआशिकीन" तथा मूल्ला वजही कृत "सबरस" में प्राचीन दक्खिनी हिन्दी गद्य रुप को देखा जा सकता है।

भारतेंदु पूर्व युग

खड़ी बोली हिन्दी में गद्य का विकास 19वीं शताब्दी के आस-पास हुआ। इस विकास में कोलकाता के फोर्ट विलियम कॉलेज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। इस कॉलेज के दो विद्वानों लल्लूलाल जी तथा सदल मिश्र ने गिलक्राइस्ट के निर्देशन में क्रमशः प्रेमसागर तथा नासिकेतोपाख्यान नामक पुस्तकें तैयार कीं। इसी समय सदासुखलाल ने सुखसागर तथा मुंशी इंशा अल्ला खां ने 'रानी केतकी की कहानी' की रचना की। इन सभी ग्रंथों की भाषा में उस समय प्रयोग में आनेवाली खड़ी बोली को स्थान मिला। ये सभी कृतियाँ सन् 1803 में रची गयी थीं।

आधुनिक खड़ी बोली के गद्य के विकास में विभिन्न धर्मों की परिचयात्मक पुस्तकों का खूब सहयोग रहा जिसमें ईसाई धर्म का भी योगदान रहा। बंगाल के राजा राम मोहन राय ने 1815 ईस्वी में वेदांत सूत्र का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित करवाया। इसके बाद उन्होंने 1829 में बंगदूत नामक पत्र हिन्दी में निकाला। इसके पहले ही 1826 में कानपुर के पं जुगल किशोर ने हिन्दी का पहला समाचार पत्र उदंतमार्तंड कलकत्ता से निकाला। इसी समय गुजराती भाषी आर्य समाज संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपना प्रसिद्ध ग्रंथ सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी में लिखा।

भारतेंदु युग

भारतेंदु हरिश्चंद्र (1850-1885) को हिन्दी-साहित्य के आधुनिक युग का प्रतिनिधि माना जाता है। उन्होंने कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र मैग्जीन और हरिश्चंद्र पत्रिका निकाली। साथ ही अनेक नाटकों की रचना की। उनके प्रसिद्ध नाटक हैं–चंद्रावली, भारत दुर्दशा, अंधेर नगरी। ये नाटक रंगमंच पर भी बहुत लोकप्रिय हुए। इस काल में निबंध नाटक उपन्यास तथा कहानियों की रचना हुई। इस काल के लेखकों में बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, राधा चरण गोस्वामी, उपाध्याय बदरीनाथ चौधरी प्रेमघन, लाला श्रीनिवास दास, बाबू देवकी नंदन खत्री और किशोरी लाल गोस्वामी आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें से अधिकांश लेखक होने के साथ-साथ पत्रकार भी थे।

श्रीनिवासदास के उपन्यास परीक्षागुरू को हिन्दी का पहला उपन्यास कहा जाता है। कुछ विद्वान श्रद्धाराम फुल्लौरी के उपन्यास भाग्यवती को हिन्दी का पहला उपन्यास मानते हैं। बाबू देवकीनंदन खत्री का चंद्रकांता तथा चंद्रकांता संतति आदि इस युग के प्रमुख उपन्यास हैं। ये उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए कि इनको पढ़ने के लिये बहुत से अहिंदी भाषियों ने हिंदी सीखी। इस युग की कहानियों में शिवप्रसाद सितारे हिन्द की राजा भोज का सपना महत्त्वपूर्ण है।

बलदेव अग्रहरि की सन् 1887 में प्रकाशित नाट्य पुस्तक 'सुलोचना सती' में सुलोचना की कथा के साथ आधुनिक कथा को भी स्थान दिया गया हैं, जिसमें संपादकों और देश सुधारकों पर व्यंग्य किया गया है। कई नाटकों में मुख्य कथानक ही यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हैं। बलदेव अग्रहरि की सुलोचना सती में भिन्नतुकांत छंद का आग्रह भी दिखाई देता हैं।

द्विवेदी युग

पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर ही इस युग का नाम द्विवेदी युग रखा गया। सन 1903 ईस्वी में द्विवेदी जी ने सरस्वती पत्रिका के संपादन का भार संभाला। उन्होंने खड़ी बोली गद्य के स्वरूप को स्थिर किया और पत्रिका के माध्यम से रचनाकारों के एक बड़े समुदाय को खड़ी बोली में लिखने को प्रेरित किया। इस काल में निबंध, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं समालोचना का अच्छा विकास हुआ।

इस युग के निबंधकारों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, माधव प्रसाद मिश्र, श्याम सुंदर दास, चंद्रधर शर्मा गुलेरी, बाल मुकुंद गुप्त और अध्यापक पूर्ण सिंह

आदि उल्लेखनीय हैं। इनके निबंध गंभीर, ललित एवं विचारात्मक हैं। किशोरीलाल गोस्वामी और बाबू गोपाल राम गहमरी के उपन्यासों में मनोरंजन और घटनाओं की रोचकता है।

हिंदी कहानी का वास्तविक विकास द्विवेदी युग से ही शुरू हुआ। किशोरी लाल गोस्वामी की इंदुमती कहानी को कुछ विद्वान हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। अन्य कहानियों में बंग महिला की दुलाई वाली, शुक्ल जी की ग्यारह वर्ष का समय, प्रसाद जी की ग्राम और चंद्रधर शर्मा गुलेरी की उसने कहा था, महत्त्वपूर्ण हैं। समालोचना के क्षेत्र में पद्मसिंह शर्मा उल्लेखनीय हैं। हरिऔध, शिवनंदन सहाय तथा राय देवीप्रसाद पूर्ण द्वारा कुछ नाटक लिखे गए। इस युग ने कई सम्पादकों को जन्म दिया। पन्डित ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने आधा दर्जन से अधिक पत्रों का सम्पादन किया। शिव पूजन सहाय उनके योग्य शिष्यों में शुमार हुए। इस युग में हिन्दी आलोचना को एक दिशा मिली। इस युग ने हिन्दी के विकास की नींव रखी। यह कई मायनों में नई मान्यताओं की स्थापना करने वाला युग रहा।

शुक्ल युग

गद्य के विकास में इस युग का विशेष महत्त्व है। पं. रामचंद्र शुक्ल (1884–1941) ने निबंध, हिन्दी साहित्य के इतिहास और समालोचना के क्षेत्र में गंभीर लेखन किया। उन्होंने मनोविकारों पर हिंदी में पहली बार निबंध लेखन किया। साहित्य समीक्षा से संबंधित निबंधों की भी रचना की। उनके निबंधों में भाव और विचार अर्थात् बुद्धि और हृदय दोनों का समन्वय है। हिंदी शब्दसागर की भूमिका के रूप में लिखा गया उनका इतिहास आज भी अपनी सार्थकता बनाए हुए है। जायसी, तुलसीदास और सूरदास पर लिखी गयी उनकी आलोचनाओं ने भावी आलोचकों का मार्गदर्शन किया। इस काल के अन्य निबंधकारों में जैनेन्द्र कुमार जैन, सियारामशरण गुप्त, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी और जयशंकर प्रसाद आदि उल्लेखनीय हैं।

कथा साहित्य के क्षेत्र में प्रेमचंद ने क्रांति ही कर डाली। सेवा सदन, रंगभूमि, निर्मला, गबन एवं गोदान आदि उपन्यासों की रचना की। उनकी तीन सौ से अधिक कहानियां मानसरोवर के आठ भागों में तथा गुप्तधन के दो भागों में संग्रहित हैं। पूस की रात, कफन, शतरंज के खिलाडी, पंच परमेश्वर, नमक का दरोगा तथा ईदगाह आदि उनकी कहानियां खूब लोकप्रिय हुई। इस काल के

अन्य कथाकारों में विश्वंभर शर्मा कौशिक, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, पांडेय बेचन शर्मा उग्र, उपेन्द्रनाथ अश्क, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा आदि के नाम उल्लेखनीय है।

नाटक के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद का विशेष स्थान है। इनके चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त, ध्रुवस्वामिनी जैसे ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास और कल्पना तथा भारतीय और पाश्चात्य नाट्य पद्धतियों का समन्वय हुआ है। लक्ष्मीनारायण मिश्र, हरिकृष्ण प्रेमी, जगदीशचंद्र माथुर आदि इस काल के उल्लेखनीय नाटककार हैं।

शुक्लोत्तर युग

इस काल में गद्य का चहुंमुखी विकास हुआ। पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, जैनेंद्र कुमार, अज्ञेय, यशपाल, नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेंद्र, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा डॉ. रामविलास शर्मा आदि ने विचारात्मक निबंधों की रचना की है। हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, विवेकी राय, ने ललित निबंधों की रचना की है। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवींन्द्रनाथ त्यागी, तथा के.पी सक्सेना, के व्यंग्य आज के जीवन की विद्रूपताओं के उद्घाटन में सफल हुए हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, इलाचंद्र जोशी, अमृतलाल नागर, रांगेय राघव और भगवती चरण वर्मा ने उल्लेखनीय उपन्यासों की रचना की। नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, अमृतराय, तथा राही मासूम रजा ने लोकप्रिय आंचलिक उपन्यास लिखे हैं। मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, भैरव प्रसाद गुप्त, आदि ने आधुनिक भाव बोध वाले अनेक उपन्यासों और कहानियों की रचना की है। अमरकांत, निर्मल वर्मा तथा ज्ञानरंजन आदि भी नए कथा साहित्य के महत्त्वपूर्ण स्तंभ हैं।

प्रसादोत्तर नाटकों के क्षेत्र में लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीकांत वर्मा, मोहन राकेश तथा कमलेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, रामवृक्ष बेनीपुरी तथा बनारसीदास चतुर्वेदी आदि ने संस्मरण रेखाचित्र व जीवनी आदि की रचना की है। शुक्ल जी के बाद पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नंद दुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा तथा नामवर सिंह ने हिंदी समालोचना को समृद्ध किया। आज गद्य की अनेक नई विधाओं जैसे यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक, आलेख आदि में विपुल साहित्य की रचना हो रही है और गद्य की विधाएं एक-दूसरे से मिल रही हैं।

आधुनिक हिंदी पद्य का इतिहास

आधुनिक काल 1850 से हिंदी साहित्य के इस युग को भारत में राष्ट्रीयता के बीज अंकुरित होने लगे थे। स्वतंत्रता संग्राम लड़ा और जीता गया। छापेखाने का आविष्कार हुआ, आवागमन के साधन आम आदमी के जीवन का हिस्सा बने, जन संचार के विभिन्न साधनों का विकास हुआ, रेडियो, टी. वी व समाचार पत्र हर घर का हिस्सा बने और शिक्षा हर व्यक्ति का मौलिक अधिकार। इन सब परिस्थितियों का प्रभाव हिंदी साहित्य पर अनिवार्यत: पड़ा। आधुनिक काल का हिंदी पद्य साहित्य पिछली सदी में विकास के अनेक पड़ावों से गुजरा। जिसमें अनेक विचारधाराओं का बहुत तेजी से विकास हुआ। जहाँ काव्य में इसे छायावादी युग, प्रगतिवादी युग, प्रयोगवादी युग, नई कविता युग और साठोत्तरी कविता इन नामों से जाना गया, छायावाद से पहले के पद्य को भारतेंदु हरिश्चंद्र युग और महावीर प्रसाद द्विवेदी युग के दो और युगों में बाँटा गया। इसके विशेष कारण भी हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र युग की कविता (1850-1900)

ईस्वी सन 1850 से 1900 तक की कविताओं पर भारतेंदु हरिश्चंद्र का गहरा प्रभाव पड़ा है। वे ही आधुनिक हिंदी साहित्य के पितामह हैं। उन्होंने भाषा को एक चलता हुआ रूप देने की कोशिश की। आपके काव्य-साहित्य में प्राचीन एवं नवीन का मेल लक्षित होता है। भक्तिकालीन, रीतिकालीन परंपराएं आपके काव्य में देखी जा सकती हैं तो आधुनिक नूतन विचार और भाव भी आपकी कविताओं में पाए जाते हैं। आपने भक्ति-प्रधान, शृंगार-प्रधान, देश-प्रेम-प्रधान तथा सामाजिक-समस्या-प्रधान कविताएं की हैं। आपने ब्रजभाषा से खड़ीबोली की ओर हिंदी-कविता को ले जाने का प्रयास किया। आपके युग में अन्य कई महानुभाव ऐसे हैं जिन्होंने विविध प्रकार हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। इस काल के प्रमुख कवि हैं-

1. भार्तेन्दु हरिश्चन्द्र,
2. प्रताप नारायण मिश्र,
3. बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन',
4. राधाचरण गोस्वामी,
5. अम्बिका दत्त व्यास।

पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी युग की कविता (1900-1920)

सन् 1900 के बाद दो दशकों पर पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी का पूरा प्रभाव पड़ा। इस युग को इसीलिए द्विवेदी-युग कहते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में आप उस समय पूरे हिंदी साहित्य पर छाए रहे। आपकी प्रेरणा से ब्रज-भाषा हिंदी कविता से हटती गई और खड़ी बोली ने उसका स्थान ले लिया। भाषा को स्थिर, परिष्कृत एवं व्याकरण-सम्मत बनाने में आपने बहुत परिश्रम किया। कविता की दृष्टि से वह इतिवृत्तात्मक युग था। आदर्शवाद का बोलबाला रहा। भारत का उज्ज्वल अतीत, देश-भक्ति, सामाजिक सुधार, स्वभाषा-प्रेम वगैरह कविता के मुख्य विषय थे। नीतिवादी विचारधारा के कारणश्रृंगार का वर्णन मर्यादित हो गया। कथा-काव्य का विकास इस युग की विशेषता है। भाषा खुरदरी और सरल रही। मधुरता एवं सरलता के गुण अभी खड़ी-बोली में आ नहीं पाए थे। सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी आदि इस युग के यशस्वी कवि हैं। जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ने इसी युग में ब्रज भाषा में सरस रचनाएं प्रस्तुत कीं। इस युग के प्रमुख कवि-

1. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध',
2. रामचरित उपध्याय,
3. जगन्नाथ दास रत्नाकर,
4. गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही',
5. श्रीधर पाठक,
6. राम नरेश त्रिपाठी,
7. मैथिलीशरण गुप्त,
8. लोचन प्रसाद पाण्डेय,
9. सियारामशरण गुप्त।

छायावादी युग की कविता (1920-1936)

सन 1920 के आस-पास हिंदी में कल्पनापूर्ण स्वछंद और भावुक कविताओं की एक बाढ़ आई। यह यूरोप के रोमांटिसिज्म से प्रभावित थी। भाव, शैली, छंद, अलंकार सब दृष्टियों से इसमें नयापन था। भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद लोकप्रिय हुई इस कविता को आलोचकों ने छायावादी युग का नाम दिया। छायावादी कवियों की उस समय भारी कटु आलोचना हुई परंतु आज

यह निर्विवाद तथ्य है कि आधुनिक हिंदी कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि इसी समय के कवियों द्वारा हुई। जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा इस युग के प्रधान कवि हैं।

उत्तर-छायावाद युग-(1936-1943)

यह काल भारतीय राजनीति में भारी उथल-पुथल का काल रहा है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय, कई विचारधाराओं और आन्दोलनों का प्रभाव इस काल की कविता पर पड़ा। द्वितीय विश्वयुद्ध के भयावह परिणामों के प्रभाव से भी इस काल की कविता बहुत हद तक प्रभावित है। निष्कर्षत:राष्ट्रवादी, गांधीवादी, विप्लववादी, प्रगतिवादी, यथार्थवादी, हालावादी आदि विविध प्रकार की कवितायें इस काल में लिखी गई। इस काल के प्रमुख कवि हैं–

1. माखनलाल चतुर्वेदी,
2. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
3. सुभद्रा कुमारी चौहान,
4. रामधारी सिंह 'दिनकर'
5. हरिवंश राय 'बच्चन'
6. भगवतीचरण वर्मा,
7. नरेन्द्र शर्मा,
8. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'
9. शिवमंगल सिंह 'सुमन'
10. नागार्जुन,
11. केदारनाथ अग्रवाल,
12. त्रिलोचन,
13. रांगेयराघव।

प्रगतिवादी युग की कविता (1936)

छायावादी काव्य बुद्धिजीवियों के मध्य ही रहा। जन-जन की वाणी यह नहीं बन सका। सामाजिक एवं राजनैतिक आंदोलनों का सीधा प्रभाव इस युग की कविता पर सामान्यत: नहीं पड़ा। संसार में समाजवादी विचारधारा तेजी से फैल रही थी। सर्वहारा वर्ग के शोषण के विरुद्ध जनमत तैयार होने लगा। इसकी प्रतिच्छाया हिंदी कविता पर भी पड़ी और हिंदी साहित्य के प्रगतिवादी युग का

जन्म हुआ। 1930 के बाद की हिंदी कविता ऐसी प्रगतिशील विचारधारा से प्रभावित है। 1936 में "प्रगतिशील लेखक संघ" के गठन के साथ हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा से प्रेरित प्रगतिवादी आन्दोलन की शुरुआत हुई। इसका सबसे अधिक दूरगामी प्रभाव हिन्दी आलोचना पर पड़ा। मार्क्सवादी आलोचकों ने हिन्दी साहित्य के समूचे इतिहास को वर्ग-संघर्ष के दृष्टिकोण से पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयास आरंभ किया। प्रगतिवादी कवियों में नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन के साथ नई कविता के कवि मुक्तिबोध और शमशेर को भी रखा जाता है।

प्रयोगवाद-नयी कविता युग की कविता (1943-1960)

दूसरे विश्व युद्ध के पश्चात् संसार भर में घोर निराशा तथा अवसाद की लहर फैल गई। साहित्य पर भी इसका प्रभाव पड़ा। 'अज्ञेय' के संपादन में 1943 में 'तार सप्तक' का प्रकाशन हुआ। तब से हिंदी कविता में प्रयोगवादी युग का जन्म हुआ ऐसी मान्यता है। इसी का विकसित रूप नयी कविता कहलाता है। दुर्बोधता, निराशा, कुंठा, वैयक्तिकता, छंदहीनता के आक्षेप इस कविता पर भी किए गए हैं। वास्तव में नई कविता नई रुचि का प्रतिबिंब है। इस धारा के मुख्य कवि हैं-

1. अज्ञेय,
2. गिरिजाकुमार माथुर,
3. प्रभाकर माचवे,
4. भारतभूषण अग्रवाल,
5. बिहारी लाल हरित,
6. मुक्तिबोध,
7. शमशेर बहादुर सिंह,
8. धर्मवीर भारती,
9. नरेश मेहता,
10. रघुवीर सहाय,
11. जगदीश गुप्त,
12. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना,
13. कुंवर नारायण,
14. केदार नाथ सिंह।

इस प्रकार आधुनिक हिंदी खड़ी बोली कविता ने भी अल्प समय में उपलब्धि के उच्च शिखर सर किए हैं। क्या प्रबंध काव्य, क्या मुक्तक काव्य, दोनों में हिंदी कविता ने सुंदर रचनाएं प्राप्त की हैं। गीति-काव्य के क्षेत्र में भी कई सुंदर रचनाएं हिंदी को मिली हैं। आकार और प्रकार का वैविध्य बरबस हमारा ध्यान आकर्षित करता है। संगीत-रूपक, गीत-नाटय वगैरह क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय कार्य हुआ है। कविता के बाह्य एवं अंतरंग रूपों में युगानुरूप जो नये-नये प्रयोग नित्य-प्रति होते रहते हैं, वे हिंदी कविता की जीवनी-शक्ति एवं स्फूर्ति के परिचायक हैं।

हिन्दी साहित्य और सामासिक संस्कृति

सामान्यत: संस्कृति के संबन्ध में जब बात की जाती है तब एक गौरव का भाव हमारे मन में उदित होता है। इस गौरव के बोध में जातीय अस्मिता की भावना पीठिका के रूप में सक्रिय होने के कारण एक तरह की विशुद्ध सार्थकता एवं संतोष की तीव्र अनुभूति हम करते हैं। चूँकि भारतीय संस्कृति हजारों वर्ष पुरानी है और काल के प्रवाह में जब अनेक समृद्ध संस्कृतियाँ भी विनष्ट हो चुकी हैं और भारतीय संस्कृति टिकी हुई तब यह गौरवबोध अधिक युक्तियुक्त भी लगने लगता है और यह धारण जाने अनजाने हमें सांस्कृतिक परिवेश, ऐतिहासिक विकासक्रम, सांस्कृतिक जिजीविषा और टिकाऊपन की स्थायी विशेषताएँ काल प्रवाह में विचलित सांस्कृतिक वैशिष्ट्य, चुनौतियों का स्वरूप, आंतरिक तनाव और अंतविरोध आदि के बारे में सोचने से विमुख करती है। वैसे भी संस्कृति से एक जीवंत और दीर्घ परंपरा का बोध जुड़ा हुआ है और इस कारण सामान्यत: हम अतीत से प्राप्त संस्कारों के विचार में अधिक उलझ जातें हैं और सांस्कृतिक प्रक्रिया के वर्तमान स्वरूप को और उसके विभिन्न स्तरों परचल रहे संघर्ष को कुछ नजरअंदाज करते हैं। वस्तुत: अतीत के सांस्कृतिक स्वरूप को पर्याप्त गहराई से देखा और सोचा गया है–आवश्यकता वर्तमान संदर्भ में सांस्कृतिक स्वरूप को देखने की है। यद्यपि विषय संस्कृति विश्लेषण न होकर हिन्दी साहित्य से संदर्भित करता है कि फिर भी सांस्कृतिक विचार का कुल परिदृश्य देखना आवश्यक जान पड़ता है।

इसमें सामान्यत: सांस्कृतिक विषयों पर चिंतन करने वाले मनीषी एकमत हैं कि भारतीय संस्कृति एक सामासिक संस्कृति है और उसने विभिन्न

संस्कृतियों को पचाने में और अपने स्वभाव से समन्वित करने में अद्‌भुत प्रतिभा और लचीनेपन का परिचय दिया है।

आर्यावर्त में जिन वैदिक-अवैदिक सभ्यताओं और संस्कृतियों का संपर्क संघर्ष समन्वय हुआ उसने लंबे अर्से तक भारतीय मानस के आचरण, व्यवहार, जीवन के आदर्शों और मूल्यों को प्रेरित किया तथा उसे दिशा और आकार दिया। ऐसी सांस्कृतिक का प्रवाहमान किया जो भौतिक सुविधाओं को महत्त्व देती हुई भी आध्यात्मिक संस्कृति से अनुशासित होती रही। यह आध्यात्मिक मूल्यों को चरम महत्त्व विभिन्न सामाजिक और वैयक्तिक आचरणों के आदर्शों में देखा जा सकता है। अधिकार या हक से अधिक कर्तव्य की वरीयता, परिवार, जाति और समाज के प्रति व्यक्ति की उत्संगशील उन्मुखता, बड़ों के प्रति आदर अर्थात अनुभव और ज्ञान के सम्मुख विनम्रता, छोटों और समवयस्कों के प्रति वात्सल्यमय प्रेम, भाव, परिवार जाति और समाज के माध्यम से सामूहिक जीवनाभिव्यक्ति, अर्थ और काम जैसे दो महत्त्वपूर्ण पुरुषार्थों की स्वीकृति और गृहस्थ धर्म के रूप में उनकी संतुलित परिपूर्ति पुरुषार्थों का धर्म के द्वारा नियंत्रण और मोक्ष की ओर उन्मुखता का चरम लक्ष्य (जीवन की ऐषणाओं को त्याग कर नहीं उनकी संयत परितृप्ति के माध्यम से उनके ऊपर उठने की, निरंतर जीवन में जड़ स्थितियों को अतिक्रमित करने की एवं गत्यात्मकता की बात इसमें अंतर्निहित है।) ये इसी आध्यात्मिक वरीयता के तत्व हैं। भारतीय संस्कृति का यह समन्वित रूप संस्कृत भाषा के माध्यम से रामायण, महाभारत, गीता, कालिदास, भवभूति, भास के काव्यों और नाटकों के माध्यम से बार-बार व्यक्त हुआ है। गेटे ने 'शांकुतल' को पढ़कर उल्लसित मनोभाव में कहा था कि उसमें स्वर्ग और धरा का उदात्त सम्मिलिन है। यह समूची भारतीय संस्कृति और साहित्य के संबंध में कहा जा सकता है। भारतीय पुराचीन संस्कृति का एक समादेशक सामाजिक रूप वहाँ मिलता है जहाँ नाट्य को नाट्यवेद कहकर वह सबके लिए-शूद्रों के लिए भी खुला रखा गया है। असल में नाट्यवेद ही नहीं एक प्रकार से जीवन की भावनात्मक अभिव्यक्ति के महत्त्वपूर्ण स्रोत ही खुले थे। ज्ञान के क्षेत्र में कठोर वर्ण व्यवस्था का बंधन शायद इसलिए आवश्यक हो गया कि वह केवल उच्चारण और स्मरण के आधारों पर ही स्थित थी जिसके लिए कठोर अनुशासन, परंपरा की सशक्त पृष्ठभूमि और निर्मम अभ्यास की आवश्यकता थी। आगे चलकर जैसा कि हर अच्छे बंधन का विकासमान रूप खत्म होकर सड़ियन रूप ही बच जाता है, इसी प्रकार इन बंधनों का भी हुआ।

साहित्य सत्य के साथ शिव और सौंदर्य का भी समन्वय करता है। हमारे संस्कृत साहित्य में उपर्युक्त सांस्कृतिक स्थिति का परिमार्जन और सौष्ठवयुक्त रूप संस्कृत भाषा और प्राकृत भाषाओं के माध्यम से प्रकट हुआ। यह धरोहर के रूप में हिन्दी साहित्य को भी प्राप्त हुआ। हिन्दी के आदिकाल और मध्यकाल का स्वरूप देखा जाए तो सांस्कृतिक दृष्टि से आमूलचूल परिवर्तन दृष्टिगत नहीं होता। यह आक्रमण इस्लाम धर्म को अपने साथ लेता आया। इससे हमारी संस्कृति में कुछ तबदीलियाँ अवश्यक हुई। मध्ययुग में इस्लाम के राजनैतिक आक्रमण के सामने हमारी भौतिक सभ्यता नहीं टिक पाई जिसके लिए प्रदेश की प्राकृतिक स्थितियाँ भी आंशिक रूप में जिम्मेदार हैं, जो मनुष्य को संघर्षशील कम और शांतिप्रिय अधिक बना देती है। साथ-साथ आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति लगाव ने भौतिक शक्ति के प्रति कुछ अनास्था भी उत्पन्न कर दी थी। आपसी फूट और वैयक्तिक संकीर्ण महत्त्वाकांक्षा भी भारतीयों वीरों की हार का कारण बनी। हमारी सामासिक संस्कृतिक पर इससे कुछ अच्छे और कुछ बरे प्रभाव भी पड़े। ध्यान में रखने की बात है कि हिन्दी का साहित्य भी प्राकृत अपभ्रंश का दामन छोड़कर अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व इसी समय ग्रहण कर रहा था।

इस्लाम के आक्रमण से निश्चित रूप से भारतीय बहुदेववादी आस्था पर आघात हुआ और इस्लाम की 'अल्ला हो अकबर' की एकेश्वरवाद की घोषणा ने हमें सभी देवी-देवताओं को कहीं न कहीं एक भगवान से जोड़ने के लिए बाध्य किया। एकेश्वरवाद, ईश्वर के निर्गुण सगुण रूपों के स्वीकार के लिए भारतीय आध्यात्मिक चिंतन प्रणाली में स्रोत नहीं था ऐसी बात नहीं है परंतु तुलसी जैसे समन्वयवादी महाकवि में यह प्रयत्न अधिक सजग रूप में दिखाई पड़ता है। ऐसा लगता है कि सभी देवताओं को एक भगवान के रूप में देखने का विशेष प्रयास किया जा रहा है। आक्रामक इस्लाम सभ्यता ने निर्गुण के प्रति अधिक उन्मुख किया हो तो आश्चर्य नहीं। उधर भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल पहलुओं को आत्मसात करने का इस्लाम का प्रयास भी चल रहा था। आक्रमण के कारण अपनी जात विरादरी में समा जाने का हिन्दुओं को स्वभाव चरमोत्कर्ष पर था और उसका विरोध नाथपंथ से लेकर सिख धर्म तक पाया जाता है। साहित्यिक रूप में उसका सशक्त प्रभाव कबीर में देखा जा सकता है। जायसी जैसे सूफी महाकवि ने भी इस्लाम से भारतीय सांस्कृतिक श्रेय को मिलाने का प्रयास किया। राजनीतिक स्थितियां चाहे जैसी रहीं हो इन महाकवियों के काव्य में भारतीय सामासिक संस्कृति का उज्ज्वल अंश प्रकट हो रहा था। आध्यात्मिक

मूल्यों की भौतिक सुख-सुविधाओं पर वरीयता, मनुष्य और मनुष्य के बीच प्रेम-भाव पर आधारित स्नेह संबंधों की उत्कट आकांक्षा (जो सूरदास के काव्य में चरमोत्कर्ष पर है और जायसी ने जिसे दार्शनिक आधार दिया है,) बहुदेववाद के परे सगुण-निर्गुण, इस सत्य को शिव और सौदर्य से समन्वित कर देखने में आस्थ, गृहस्थ जीवन को एक धर्म और कर्तव्य के रूप में ग्रहण करने की कोशिश, राजसत्ता या शक्ति को शील से समन्वित करने के अपेक्षा आदि सांस्कृतिक मूल्य हिन्दी के साहित्य में प्रकट होते हैं। एक छोर पर इस्लाम की आक्रामकता कबीर के माध्यम से धार्मिक रूढ़ियों पर प्रहार कर रहीं थी और सिखधर्म के माध्यम से वीरधर्म की तलाश कर रही थी तो दूसरे छोर पर समाज से कटकर रहने वाले योगियों नाथपंथियों सिद्धों की अतिवादिता की तीव्र धार को सूर की माधुर्यभक्ति कुंठित कर रही थी और इस सबके बीच महाकवि तुलसी की प्रज्ञा विराट समन्वय का प्रयास कर रही थी। असल में मध्ययुगीन सांस्कृति की समग्रता 'रामचरितमानस' में प्रकट हुई।

साहित्य की ओर स्थूल उपयोगितावादी दृष्टि से अथवा इस हाथ ले उस हाथ दे वाली फायदावादी मनोवृत्ति से देखने वालों की दृष्टि से यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि रामचरितमानस जैसी रचनाओं ने भारतीय मानस को राजनीतिक आक्रमण के प्रति कहां तक सजग किया और अगर किया तो बाद के अंग्रेजों के आक्रमण के विरोध में हम क्यों नहीं तैयार रहे। असल में यह कहकर, कि साहित्य और परिवेश की चुनौतियों का सीधा संबंध नहीं होता, प्रश्न को टालना नहीं चाहिए। इनके अखाड़े में ही उतरकर प्रश्न का उत्तर दिया जा सकता है।

अंग्रेजों के आक्रमण ने फिर से यह प्रमाणित किया कि सांस्कृतिक संस्कारों से वंचित हमारी राजनीतिक शक्ति, आपसी फूट, वैयक्तिक महत्त्वाकांक्षा, भौतिक शक्ति के साधन उपार्जित करने में अक्षमता आदि हमारे दोष दूर नहीं कर पाई राम के चरित्र ने हमारे क्षत्रिय धर्म का वांछित संस्कार नहीं किया। परंतु जरा अधिक गहरे उतरना होगा। अंग्रेजों ने हमें भौतिक धरातल पर परास्त अवश्य किया किंतु क्या वे हमारे सांस्कृतिक उत्सों को उखाड़ने में सफल हुए। यद्यपि अंग्रेजों के विरोध में डटकर खड़ी रहने वाली प्रतिरोधी शक्तियों का तेजस्वी आविष्कार लोकमान्य देन नहीं है फिर भी इन दोनों ने अंग्रजों का मुकाबला करने की सामर्थ्य गीता में पाई थी, इससे कैसे इंकार किया जा सकता हे। दोनों को 'रामचरितमानस' एवं तदृश सांस्कृतिक साहित्यिक ग्रंथों ने और संस्कारों ने जो प्रेरणा प्रदान की थी, इससे इंकार कैसे किया जा सकता है। 'रामचरितमानस' के

संस्कारों से संयुक्त उत्तर भारतीय जनता ने तिलक में भगवान को देखा, महात्मा गांधी में राम और कृष्ण के संयुक्त रूप को देखा और इस विराट जनता ने दोनों का अनुगमन किया, यह तथ्य कैसे नकारा जा सकता है। अगर तुलसी, कबीर, सूर, जायसी, नानक के जनमानस पर पड़े व्यापक प्रभाव को (जो मौखिक परंपरा के रूप में अधिक शक्तिशाली बना रहा) अनदेखा कर दिया जाए तो तिलक और महात्मा गांधी के पीछे सांस्कृतिक अस्मिता से युक्त जनमानस खड़ा रहा। उसका स्पष्टीकरण कैसे दिया जा सकता है। ध्यान में रहे कि अंग्रेजों के सांस्कृतिक संपर्क से जो दो महत्त्वपूर्ण प्रवाह उत्पन्न हुए उनमें एक था मुट्ठीभर शिक्षित लोगों का जो अंग्रेजों को ही देवता मानकर अनुकरण कर रहे थे। दूसरा सांस्कृतिक पुनरुत्थान का प्रवाह था जो राजा राममोहन राय से लेकर महात्मा गांधी तक एक भारतीय संस्कृतिक के मूल रूप से जुड़कर विकसित होना चाहता था। जन मानस ने दूसरे का ही साथ दिया। स्वाधीनता के लिए उत्सर्ग और सेवा की भूमिका निभानेवालों के संस्कारों में क्या मध्ययुगीन सांस्कृतिक संस्कारों का स्थान नगण्य है और यह संस्कार कहां से हुए। ध्यान में रहे कि राजनीतिक सत्ता के पीछे भारतीय जनमानस मध्ययुग में अपवादात्मक रूप में ही रहा परंतु जब अंग्रेजों का विरोध धर्म और कर्तव्य के रूप में प्रस्तुत किया गया, स्वाधीनता सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा के हेतु आवश्यक मान ली गई तभी राजनीतिक दृष्टि से उदासीन जनता स्वाधीनता आंदोलन में बड़े पैमाने पर उतरी और पहली बार भौतिक शक्ति से प्रबलतर अंग्रेजी सत्ता सांस्कृतिक विरोध के आगे परास्त हुई। इस हार में हिंसा कितनी थी अंहिसा कितनी थी, यह विवादास्पद विषय है किंतु भारतीय जनमानस की वह ऐसी अभिव्यक्ति थी जिसमें स्वार्थ दब गए थे और भौतिक सुख सुविधा की आकांक्षाएं धूमिल हो गई थी और सांस्कृतिक उर्जस्विता को चरम महत्त्व मिलता था। इसमें हिन्दी साहित्य के संस्कार प्रभूत यात्रा में थे।

लेकिन अंग्रेजों के चले जाने के बाद जब हम नए देश के सर्वांगीण विकास के लिए कटिबद्ध हुए तब नई चुनौतियाँ आई, नई समस्याएँ आई। हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक योगदान क्या है। क्या हमारी सांस्कृतिक का सामासिक रूप इस चुनौती को पचा सका। साहित्य के माध्यम से यह प्रक्रिया कैसे सिद्ध हुई? एक तथ्य यह है कि इस्लाम संस्कृति भारतीय संस्कृति से समन्वित हो सकी थी। इसका कारण यह था कि मूलभूत धारणाओं में कुछ साम्यविंदु थे। ईश्वरीय अस्तित्व में आस्था और भौतिकता से परे किसी उच्चतम तत्व की स्वीकृत का अहसास दोनों में था। दोनों को एक-दूसरे के साथ समझौता करना ही पड़ा।

अंग्रेजी में संस्कृति के साथ यह बाध्यता नहीं थी। धर्म प्रचार के रूप उसने अवश्य प्रभाव डाला। चूँकि धर्म प्रचार और राजनीतिक साम्राज्य दोनों को यथासंभव अलग रखने को अंग्रेज शासक विवश हुए। टकराहट की स्थितियाँ भी कम नहीं पैदा हुई। ईसा मसीह के विचारों और आचारों में जो प्रेमतत्व पर बल था, पड़ोसियों को प्यार करने पर जोर था, आपसी व्यवहार में अंहिसक और शांतिपूर्ण स्नेह संबंधों का अनुरोध था, दुखियों और पीड़ितों की सेवा में धार्मिक भावना की अभिव्यक्ति का अन्वेषण था, उसके कारण भी सामान्यत: परस्पर सौमनस्य का वातावरण ही रहा। आश्चर्य की बात यही है कि ईसाई समाज ने हिन्दी को सर्जनशील सात्यिकार स्वाधीनता प्राप्ति तक लगभग नहीं दिए।

पश्चिमी सभ्यता निश्चित रूप से भारतीय सभ्यता से अधिक प्रगतिशीत थी और ऐहिकता का महत्त्व, मनुष्य के ऐहिक जीवन को सुखमय बनाने की उसकी आकांक्षा, वैज्ञानिक दृष्टि से ज्ञान के विविध क्षेत्रों को जीतने की महत्त्वाकांक्षा, समता, बंधुत्व और स्वातंत्रय का इसी जीवन को सामने रखकर विचार करने की दृष्टि आदि सांस्कृतिक तत्वों का हमारी सांस्कृतिक विचार धारा पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। विजयी जाति होने के कारण अपनी श्रेष्ठता को मनवाना आसान हो गया। भारत की लुप्तप्राय सांस्कृतिक गरिमा को–संस्कृत ग्रंथों के पुन: जीवित करने का अधिकांश श्रेय इन्हीं को जाता है। इन स्थितियों को देखा जाए जो अंग्रेजों के आगमन पर यहाँ प्रतिष्ठा तो पैदा हुई लेकिन भारतीय मनीषा की सराहना इसलिए की जानी चाहिए कि उसने अपना सांस्कृतिक सत्व खोकर पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृतिक के प्रति समपर्ण नहीं किया। राजा राममोहन राय, विवेकानंद, दयानंद सरस्वती, रानेडा, तिलक, महात्मा गांधी आदि महान् व्यक्तियों ने अंग्रेजों से काफी कुछ लिया किंतु अपनी अस्मिता नहीं खोई। जातिवाद, संकीर्ण धर्माभिमान, मनुष्य की सृजनधर्मिता का अवरोध करने वाले भौतिक और धार्मिक बंधन, मनुष्य की स्वाधीनता को संकुचित करने वाली भौतिक एवं अन्य प्रकार की मान्यता, प्रेम और सहानुभूति का दायरा सीमित करने वाली सामाजिक रूढ़ियाँ इन सबके प्रति हमें सावधान करने का श्रेय पश्चिमी संस्कृति को जाता है। परंतु उनको स्वीकार करने के बाद भी 'भारतीय' के रूप में बने रहने का जो अस्तित्व–संघर्ष हमने किया वह नवोत्थान की धारा का उज्ज्वल पक्ष है।

निस्संदेह इसमें राष्ट्रीयता की भावना का काफी योगदान है जिसका मूल्यांकन अभी भली-भांति नहीं हुई। अंग्रेज संस्कृति ने, जो ईसाई धर्म और

सेक्यूलेरिज्म में समन्वय करने का प्रयास स्वयं कर रही थी, हमारी साहित्य को सेक्यूलर बनाने में काफी हाथ बंटाया। आचरण की ऊपरी कुत्सितता में खोया हमारा धर्म साहित्यकारों को विशेष गतिशील, विकोसान्मुख और आर्दश नहीं लगा। हिन्दू और इस्लाम दोनों को एक नए संश्लेषण के लिए तैयार होना पड़ा। राष्ट्रीयता की तीव्र भावना ने इस संश्लेषण के लिए समान बिंदुओं के अन्वेषण में काफी सहायता की। हिन्दी का राष्ट्रीय भाव धारा से प्रेरित समूचा साहित्य सामान्यत: धर्मातीत का परिचय देता है। भारतीय गौरव की पीठिका की खोज में हमारे राष्ट्रीय हिन्दी कवियों ने सामान्यत: ऐसे प्रसंगों को जहां धार्मिक कुटता के पैदा होने की स्थितियाँ थी, वहाँ धर्म को अधिक मूलगामी एवं व्यापक सिद्धांतों पर खड़ा कर देखा है।

मतलब यह है कि हिन्दू मुसलमान वैमनस्य के प्रसंगों को अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया गया है। दूसरे शब्दों में हमारे राष्ट्रीय काव्य के अतीत के गौरवमय आख्यान की पड़तान की जाए तो एक तरह की धर्मातीत मानवीयता का उदार स्रोत वहाँ प्रवाहित मिलेगा। मैथिलीशरण गुप्त की निरंतर उदारता की ओर उन्मुखता और 'राम' में किसी विशिष्ट धर्म एवं संप्रदाय को न देखकर व्यापक मानवीय रूप को देखना सामान्यत: हिन्दी साहित्य की राष्ट्रीयता के विकास का उदाहरण है। आगे चल कर दिन कर जैसे कवियों में राष्ट्रीयता को पूर्णत: धर्मातीत आधार मिला है।

आश्चर्य तो हिन्दी साहित्यकारों की सामासिकता को देखकर तब होता है जब छायावादी काव्य में, प्रसाद के नाटकों में हिन्दू धर्म के ऐसे उदात्त रूप के प्रति समरसता है, जो धर्मातीत अध्यात्म की छाया में पलती है। निराला के काव्य का चरमोत्कर्ष 'तुलसीदास' और 'राम की शक्तिपूजा' में हुआ है। दोनों के विषय हिन्दू मन को प्रभावित करने वाले हैं परंतु क्या किसी भी धर्म के व्यक्ति के लिए अगर वह सहृदय होने की आवश्यक शर्त पूरी करता है तो ये कविताएँ सम्मोहित नहीं करती। महादेवी की कविता के आस्वादन के लिए हिन्दू होना आवश्यक नहीं है। कालिदास के बाद शायद पहली बार जो प्रकृति संवेदना हिन्दी काव्य में वैभवशाली रूप में अवतरित हुई उसके समृद्ध अनुभव के लिए न किसी धार्मिक संवेदना की जरूरत है, न किसी विशिष्ट विचार की। किसी भी अनुभव का साहित्य के रूप में चरम सफलता के बिंदु तक व्यंजित होना इस बात का द्योतक है कि उस साहित्य के रचयिता और आस्वादक दोनों उस अनुभव को अपने व्यक्तित्व के गहरे धरातल तक ले जाने

में सफल हुए हैं। मतलब यह है कि एक सांस्कृतिक सामासिकता की प्रक्रिया पूर्ण हो चुकी है।

पश्चिमी संस्कृति ने जो बहुत बड़ी चुनौती भारतीय मानव को दी थी, वह विज्ञान और तकनीकि विकास की थी। वैसे वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव भारतीय बुद्धिजीवियों में नहीं था। जिस समाज में नाट्टयशास्त्र जैसे विश्वकोषीय ग्रंथ दो हजार वर्ष पूर्व पैदा हुआ, महाभारत के शांतिपर्व जैसा अध्याय रचा गया, दर्शन की सूक्ष्मतम चर्चाएँ हुई पाणिनि जैसे भाषाविद् ने भाषा को सूत्रमय बनाने की अद्‌भुत क्षमता दिखाई, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष और गणित क्षेत्रों में विलक्षण प्रगति हुई, उस समाज के बुद्धिजीवियों में वैज्ञानिक दृष्टि नहीं थी यह कहना सत्य अपलाफ होगा। परंतु यह भी सही है कि पिछले हजार वर्षों में यह सारा विकास हमारी प्रत्यक्ष जीवन की ठोस अनुभूति से परे की चीज हो गई थी। दूसरी बात यह भी थी कि यह सारा ज्ञान जो अधिकांश रूप में मौखिस परंपरा पर निर्भर था एक छोटे से वर्ग तक सीमित रहा और जीवन के व्यवहार के साथ नाता टूट जाने के कारण वह केवल अनुपयोगी संचय की तरह कुछ लोगों के दिमाग में लगभग बंद रहा।

पश्चिम के संपर्क से विशेषत: लिखित परंपरा के आगमन से, प्रयोगशाला जैसी संस्था की अनिवार्यता से हमारी दृष्टि चौंधिया गई। ज्ञान के व्यापक समाज के प्रसृत होने के साधन भी पैदा हुए और विचारों का ठोस आधार भी पैदा हुआ। जो ज्ञान भारतीय मनीषियों के अंत: करण में अंत: प्रज्ञा के रूप में स्फुरित होता था। वह अब प्रयोग शालाओं के उपकरणों में पकड़ा जाने लगा। भारतीय मानव को निश्चित ही नया लगने लगा। वह कभी मुग्ध नहीं हुआ, सम्मोहित भी हुआ तो कभी चकित भी। विशेषत: विज्ञान की भौतिक सुविधाएँ प्रदान करने की क्षमता से वह कहीं हर्षित हुआ तो कही भयभीत भी। भौतिक सुविधाओं के साथ विज्ञान का सिक्का जम गया और उससे उत्पन्न होने वाली सुखवादी जीवनदृष्टि, तर्क की कर्कशता, भावना जगत् का उपहास, प्रत्यक्ष के परे किसी महान् मल्य या सत्ता के अस्तित्व के प्रति संदेह आदि कुछ ऐसी बातें थी जो संवेदनशील मन को संशयग्रस्त कर रही थी।

विज्ञान और तकनीक के विकास में एक अप्रतिहत गति थी, मात्र गति जिसमें मानवीय जीवन को सार्थक बनाने वाले मूल्यों की या श्रेय और शुभ की अवमानना थी। भारतीय मानस इससे चिंताक्रांत अवश्य हुआ और उसकी सशक्त अभिव्यक्ति प्रसाद के महाकाव्य 'कामायनी' में हुई यद्यपि प्रसाद जी ने अपनी

वैयक्तिक आस्था के बल पर विज्ञान और भाव की समन्विति में आनंद का 'विजन' देखा। फिर भी विचक्षण पाठक को उसमें विश्वसनीयता का सार्वजनीन आधार नहीं प्राप्त हुआ। उधर मानव जीवन की चिंता से व्याकुल महात्मा गांधी ने भी इसके संबंध में संदेह की भूमिका ग्रहण की। वैज्ञानिक और तकनीकि विकास के कारण जो समस्याएँ मानव जीवन में उत्पन्न हुई है, उनमें मानसिक और बौद्धिक स्तर पर चिंताकुल कोई समर्थ लेखक प्रसाद के बाद हिन्दी में नहीं दिखा।

कदाचित् विज्ञान को लेकर हम ऐसी स्थिति में है कि कोई निर्णयात्मक भूमिका पर नहीं पहुँचा जा सकता। शायद इस संबंध में हम जगगति के साथ ही रहे हैं। चूंकि वैज्ञानिक सभ्यता का सांस्कृतिक धरातल पर किसी प्रकार समन्वय करें यह प्रश्न समूचे विश्व में अनसुलझा है। हमारी सृजनशील साहित्यकारों ने भी उसके संबंध में 'क्राइसिस' के सवान पूछना समीचीन नहीं समझा। यहाँ हमें उन सनसनीखेज पुस्तकों का विचार नहीं करना है, जो वैज्ञानिक कथाओं के नाम से प्रकाशित होती है, न यांत्रिक जीवन की प्रतिक्रिया के रूप में लिखी जाने वाली कथाओं का। वैज्ञानिक प्रगति और मानवीय जीवन की भवितव्यता की समस्या से गंभीर रचनात्मक धरातल पर जूझने वाले साहित्यकारों का यहाँ अपेक्षित है।

पश्चिम सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित होकर 'मॉडर्निटी' को ही एक मूल्य मानने वाले साहित्यकारों को हिन्दी साहित्य में कमी नहीं है। 'मार्डनिटी' के साथ आने वाले गंभी वैचारिक अनुषंगों को हिन्दी साहित्यकारों ने निश्चय ही बड़े लगाव के साथ अभिव्यक्त किया। स्त्री पुरुष संबंधों के नए आयाम इसी का परिणाम है, जो आधुनिक कथा साहित्य एवं काव्य के महत्त्वपूर्ण उपजीव्य है। नारी के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, इसके विकास के सभी रास्तों की जाँच पड़ताल, उसकी स्वाधीनता की स्वीकृति, पुरुष के समकक्ष उसको मानने की तैयारी आधुनिक साहित्य में अब विचारार्थ विषय नहीं रहा है। भले ही कुछ निम्नस्तर पर व्यंग्य और मजाक के लिए नारी की प्रगति का उपयोग किया जाता हो परंतु गंभीर धरातल पर साहित्य में नारी पुरुष की समानता सभी क्षेत्रों में स्वीकृत है। मतलब है कि उसे अपनी इच्छा के अनुसार किसी पुरुष से प्रेम करने की, किसी के साथ शारीरिक संबंध रखने की या संबंधों को तोड़ने की बात सैद्धांतिक धरातल पर स्वीकृत हो गई है। देह की पवित्रता या यौन के इर्द-गिर्द बनने वाली नैतिकता का दायरा अब संकुचित नहीं रहा।

प्रेमचंद से लेकर कृष्णा सोबती तक हिन्दी उपन्यासकारों ने नारी-पुरुष की समानता को सभी स्तरों पर स्वीकारा है। आधुनिक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह है कि यहां नारी-पुरुष का प्रणय अब अर्थ में उपभोक्ता-उपभोग्य का संबंध न रहकर दोनों के सहयोग के रूप में चित्रांकित होता है। यह पुरुष का शृंगार न रहकर एक समृद्ध जीवनानुभव के रूप में व्यक्त होता है। इसके विविध पहलुओं को जैनेंद्र और अज्ञेय से लेकर निरूपता सेवती तक के कभी साहित्य में उभारा गया है।

पश्चिमी संस्कृति की चकाचौंध से उसमें मिली उन्मुक्तता से प्रभावित होकर भारतीय समाज का ऐसा उच्चवर्गीय तबका केवल दैहिक सुख, भौतिक सुविधाएँ, अधिकार का निरंकुश व्यवहार और इन सबका आधार अर्थ-संचय आदि बातों को महत्त्व देता आ रहा है। इसकी अबाध गति में भारतीय घर टूट रहे हैं, बेघर होकर मनुष्य 'थ्रिल' के क्षणों को भोगकर जीवन काटना चाहता है। दिनकर ने 'उर्वशी' के माध्यम से घर टूटने की, मनुष्य के अति अकेले पड़ने की ट्रेजिडी को संकेतिक किया है और गृहस्थ धर्म की प्रतिष्ठा का सुझाव दिया है। कतिपय हिन्दी साहित्यकार इस स्थिति का सामना करने वाले स्त्री-पुरुषों का चित्रण कर जिंदगी के अंधेरे बंद कमरों में छिपी नरक यातना का इजहार कर रहे हैं। निर्मल वर्मा के दुखी जीवों की वेदना का कारण भी उनका 'घर' से उखड़ना है। हमारी संस्कृति में यह एक भयावह वास्तविकता पैदा हुई है। असल में घर से टूटे-उखड़े व्यक्तियों का अकेलापन और दर्द चिरंतन दर्द मानकर चित्रित करने की रूढ़ि भी हिन्दी साहित्य में स्थायी होती जा रही है।

यह घर टूटने की स्थिति नागर जीवन में अधिक तीव्र रूप में दिखती है। घर जिसमें व्यक्ति न केवल अधिकार से बल्कि कर्तव्य से भी बंधा है और जिसमें अति व्यक्तिवादी स्वातंत्रय की उच्छंृखल कल्पनाओं को स्थान न दिया गया तो व्यक्ति के विकास की संभावना भी असीम है, एक महत्त्वपूर्ण समस्या के रूप में हमारी संस्कृति में और साहित्य में स्थान पा रहा है। यह प्रश्न बुद्धिजीवी व्यक्ति के सामने है कि वह 'व्यक्ति' के रूप में जीना चाहता है या 'गृहस्थ' के रूप में। अमेरिका के चिंतक इस पर पुनः विचार कर रहे हैं। प्रेम और घर की-गृहस्थ जीवन की आवश्यकता को महसूस कर रहे हैं। एक अति वह भी जब भारतीय मनुष्य अपने को समर्पित कर दूसरों के लिए जीने में आदर्श मानता था और एक अति यह है कि जब गति के पीछे सबसे रिश्ता तोड़कर

अलग द्वीप के रूप में जीना चाहता है और दुखी भी होता है। दोनों अतिवादों को टालकर घर को बचाने का विकल्प हमारी पास है। मजे की बात यह है कि घर के लिए व्याकुल व्यक्ति भी 'मॉडर्निटी' के गलत चक्कर में आकर साहित्य में व्यक्तिवादी भूमिका ग्रहण करता है।

भारतीय संस्कृति को एवं भारतीय समाज की व्यवस्था को एक गहरा धक्का मार्क्सवादी विचारधारा ने दिया है। यह विचारधारा किसी प्रकार के आध्यात्मिक मूल्यों के विपरीत है। किंतु इसमें जो वर्गहीन, विषमताहीन श्रममूल्य पर आधारित आदर्श समाज व्यवस्था का यूटोपिया व्यक्त है वह आखिर उसी रामराज्य के आस-पास आ जाता है। इस विचारधारा ने सामान्य मनुष्य के प्रति समवेदना ही नहीं जगाई बल्कि व्यवस्था क विविध रूपों में चल रहे शोषण के रूपों को खोलकर सामने रखा। एक तरह से जहाँ तक मार्क्सवाद की 'स्पिरिट' का प्रश्न है किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को उससे विरोध करने काकोई कारण नहीं है। हिन्दी साहित्य में मार्क्सवादी विचारधारा के अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हुई है। जहाँ तक जातिभेदविहीन वर्गभेदरहित समाज व्यवस्था की ओर उन्मुखता का प्रश्न है, विषमता और शोषण के विरोध की बात है भारतीय संस्कृति से उसका विरोध नहीं है। यही कारण है कि स्वतंत्र भारत ने इसी उद्देश्य को अपने सामने रखा है और एक जनतंत्र के माध्यम से उस दिशा में हम जाना चाहते हैं। कुछ प्रांतों में कम्युनिस्ट पार्टियों में इसे निष्ठा के साथ स्वीकारा भी है और वे सत्ता पर आई भी है। यह भारतीय सांस्कृतिक सामासिकता ही है, जो इन भिन्नभिन्न दृष्टियों को पचा रही है।

असल में हिन्दी साहित्य जिस भाषा में लिखा जा रहा है उसकी क्षमता का अनेकमुखी विकास आवश्यक है। दिल और दिमाग की भाषा हिन्दी और रोजी रोटी की भाषा अंग्रेजी का विभाजन हमारी संस्कृति को ही गहरे धरातल तक विभाजित कर रहा है और परिणामतः एक नकली, ऊपरी और दिलदिमाग की ताकत से विहीन ऊपरी सभ्यता का शिकार हमारा ऊपर का तबका हो रहा है। यह खतरनाम स्थिति है। हमें भाषा के रास्ते से सशक्त बनाने का मतलब यह है कि हमारी संस्कृति की भाषा में सभ्यता की भाषा की शक्ति भी समाविष्ट करनी होगी। जब तक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं (समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, नृविज्ञान, प्राणि विज्ञान, रसायन और पदार्थ विज्ञान, गणित विज्ञान आदि) का व्यवहार हिन्दी के माध्यम में नहीं होगा तब तक सही रूप में न हिन्दी विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होगी न संस्कृति की सामासिकता की प्रक्रिया सही रूप में

गतिमान और सशक्त होगी। इस संदर्भ में अधिक खतरनाम वर्ग हमारे देश का वह उच्च वर्ग है, जो सुविधा भोगी रहा है और अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को भी सुविधा भोगी बना रहा है और अंग्रेजी उसका अधिकार कायम रखने में एक औजार बन गई है। इस वर्ग की खतरनाम चाल कितनी शक्तिशाली है यह इस बात से स्पष्ट होता है कि स्वाधीनता के बाद 'इंडियन अंग्रेजी' नामक नई भाषा को स्थापित करने के प्रयास में है और ऐसे सब मुद्दों को जो वे हिन्दी के खिलाफ उठाते हैं, अंग्रेजी के संबंध में से सुविधापूर्ण ढंग से भूल जाते हैं। यह देशी भाषाओं का अपमान है कि एक नकटी और कुलक्षणी सौत उनके अधिकारों पर आक्रमण कर नाच रही है। क्या हमारी संस्कृति में इससे मुकाबला करने की क्षमता है? यह अलग से कहने की जरूरत नहीं है कि यह मुकाबला हमारी संस्कृति को बचाने के लिए और उसे निरंतर विकासमान रखने की लिए है। असल में हमें इस तथ्य को भली-भांति जानना होगा कि हिन्दी के स्वीकार एवं अस्वीकार का प्रश्न अहिन्दीभाषी जनता के स्वीकार पर निर्भर है किंतु जबतक हिन्दी विज्ञान की सभ्यता को पचाकर अपनी सामासिक शक्ति का सही परिचय नहीं देगी तब तक भारतीय संपर्क भाषा के रूप में भारत में और एक शक्तिशाली भाषा के रूप में विश्व में समादृत नहीं होगी। संस्कृति केवल अतीत की ओर और परंपरा से प्राप्त जड़ वस्तु नहीं होती, उसे वर्तमान में गतिशील बनाने का कार्य बुद्धिजीवियों का ऐतिहासिक दायित्व है। क्या हमारा बुद्धिजीवी वर्ग अंग्रेजी से बुरी तरह प्रभावित सुखवादी उच्चवर्ग का भाषा के माध्यम से सामना कर सकेगा?

हिन्दी को अपनी उदार सामासिक शक्ति का परिचय एक और दिशा में देना है। हिन्दी साहित्य केवल हिन्दी भाषा-भाषियों का साहित्य नहीं रहा। अहिन्दी भाषी भारतीय एवं अभारतीय भी साहित्य की सेवा कर रहे हैं। कुछ विद्वानों ने तो ऐसा काम किया है या कर रहे है कि उनके कृत्तिव को देखकर आश्चर्य होता है। इनके कार्य की जाने अनजाने अगर उपेक्षा हो रही हो तो हिन्दी उज्ज्वल भविष्य की दृष्टि से न वर्तमान से उचित है, न भविष्य में वह समीचीन माना जाएगा। हिन्दी भाषियों को इस सेवा के प्रति विशेष रूप से सजग रहना चाहिए। भारतीय भाषाओं की अत्युत्तम सामग्री को रूपांतरित कर हिन्दी में लाने के लिए जो प्रयास चल रहे हैं वे सचमुच सराहनीय है, जो कार्य आज अंग्रेजी में विश्व साहित्य के संदर्भ में हो रहे हैं वही हिन्दी को भारतीय भाषाओं के संबन्ध में विशेषत: और विश्व की भाषाओं के संबंध में सामान्यत:

करना होगा। आज रूसी, फ्रेच, जापानी, चीनी लेखकों की अच्छी पुस्तकें अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ने को मिलती हैं। वह दिन कब आएगा जब हिन्दी यह कार्य करने लगेगी और अंग्रेजी की जरूरत हमारे लिए नहीं रहेगी? इसके दुनिया की प्रगत भाषाओं को एक व्रत के रूप में हिन्दी प्रेमियों को सीखना होगा। अगर हिन्दी प्रेमी प्राध्यापक अपने विषय की एक बहुत अच्छी पुस्तक अनूदित कर लाने की प्रतिज्ञा करेगा तो हिन्दी की सामासिक शक्ति अद्‌भुत प्रभाव पैदा कर सकती है।

❐❐❐